CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

n Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

दंडी स्वामी विमलानन्द सरस्वती

राजगुरुमठ,
शिवालाघाट,
वाराणसी
२१.८.७८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

❀ ॐ ❀

पंचकोष विवेक

कर्ता—

परमहंस स्वामी योगानन्द,

(आलू वाले बाबा)

वेदान्त केसरी कार्यालय,

लालघाट--आगरा ।

सर्व अधिकार सुरक्षित ।

१००० प्रथम संस्करण } संवत् १९८८ { मूल्य
१००० द्वितीय संस्करण } संवत् २०२२ { १-५०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वितीय संस्करण प्रकाशक :—
श्री योगानन्द आश्रम,
सत्संग सभा रजि०
लालघाट, आगरा।

मुद्रक :—रामा प्रिंटिंग प्रेस,
रावतपाड़ा, आगरा।
फोन २७३९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुक्रमणिका।

गुरु स्तुति १
सुख की खोज ३
दृष्टान्तः—पथिक का सुख की खोज में घूमना।
आत्मा ३४
दृष्टान्तः—एक भिखमंगी का कथन। ४१
,, अगम्य पुरुष ४३
,, खुदीराम और बुद्धा ४५
माया ४६
दृष्टान्तः—राजा और जादूगर ५५
स्थूल शरार ६०
दृष्टान्तः—सनातन नगर का राजा सबलसिंह ६०
,, साहूकार की दो स्त्री के दो लड़के ७५
अन्नमय कोष ७८
दृष्टान्तः—पांच मित्र ८०
,, संत को प्रणाम ८६
सूक्ष्म शरीर ६४
दृष्टान्तः—राजा का न्यायालय १०५
,, अलखपुर का राजा और कौवा १०६
प्राणमय कोष ११६
दृष्टान्तः—आत्माराम के दो लड़के १२५
मनोमय कोष १३२
दृष्टान्तः—आत्माराम ने भूत मोल लिया १३७
विज्ञानमय कोष १४८
दृष्टान्तः—शृङ्गी ऋषि का संसार १५०
,, गुरु का शिष्योपदेश १६०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारण शरीर १६५
दृष्टान्तः—गुरु मल्लाह का कथन १७०
आनन्दमय कोष १८१
दृष्टान्तः—एक साहूकार के यहां मेरा भोजन १८६
तीन अवस्थायें और आत्मा १९७
दृष्टान्तः—कंचनसिंह सरदार २०३
तू कौन है ? २३०
दृष्टान्तः—शिवशंकर और उमाशंकर २३०
सच्चिदानन्द २४६
दृष्टान्तः—सत्यवती नगरी का निर्मलचंद्र २५६
„ रुई के तीन व्यापारी २६०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ ॐ ॥

पंचकोश विवेक

गुरुस्तुति

त्रिभंगी छन्द ।

(१)

जय जय गुरु स्वामी, अन्तर्यामी, सच्चित् आनन्द राशी ।
सचराचर नायक, जन सुखदायक, माया पर अविनाशी ॥
जय करुणा सागर, सब विधि नागर, शरणपाल भगवाना ।
भक्तन हितकारी, नर तनु धारी, गावत वेद पुराणा ॥

(२)

जय भव भय भंजन, नित्य निरंजन, गुणातीत गुणखानी ।
जय अचल अकामा, पूरण कामा, मानद आप अमानी ॥
जय कमल विलोचन, संशय मोचन, ब्रह्म रूप जग त्राता ।
परिपूरण त्यागी, जन अनुरागी, चारि पदारथ दाता ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(३)

जानत सब विद्या, हरत अविद्या, अकल सकल कल पंडित।
नहिं लेश विषमता, अविचल समता, यकरस ज्ञान अखंडित॥
कोमल चित योगी, विषय वियोगी, सुखकर चिंता हर्ता।
निज सेवक संगी, सदा असंगी, कर्ता महा अकर्ता॥

(४)

निर्भय भय नाशक, ज्ञान प्रकाशक, सेवत नर बड़ भागी।
ब्रह्मादिक देवा, करते सेवा, चरण कमल अनुरागी॥
प्रभु निश दिन ध्याऊँ, गुणगण गाऊँ, कामादिक हर लीना।
यह मन क्रम वाचा, सेवक साँचा, जन अपना कर लीना॥

(५)

पामर अविचारी, मिथ्याचारी, सत्य असत्य न जाने।
सुत वित लिपटाने, निपट अयाने, कि सद्गुरु पहचाने॥
नहिं सद्गुरु चीन्हा, अति ही दीना, लख चौरासि भटकते।
गुरुपद चित दीना, परम प्रवीणा, नहिं कौशल्य ! अटकते॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुख की खोज

गंगा जी का निर्मल जल गम्भीर स्वभाव से बह रहा है, भूमि समतल होने से जल का शब्द नहीं होता, प्रातःकाल का समय है, संसार भर में शान्ति है, तो भी पक्षी दिन होने के आनन्द में कोलाहल कर रहे हैं। इस स्थान से बस्ती कुछ दूर है। इस प्रातःसंध्या के समय में भी गंगा तट पर संध्योपासक दिखाई नहीं देते। एक पथिक जो कुछ रात्रि शेष रहने पर ही शहर से चल दिया था यहां आया और शान्ति दायक स्थान देखकर उसने चारों दिशाओं में दृष्टि डाली तो कोई मनुष्य दिखाई न दिया। थोड़ी दूर पर उसने सघन वृक्षों से घिरा हुआ एक दिव्य स्थान देखा। उसको देख कर उस के अन्तःकरण में स्वाभाविक प्रेम का आविर्वभ हुआ और वह गंगा तट को छोड़ कर दिव्य स्थान की तरफ चला। ज्यों ज्यों वह स्थान समीप आता था त्यों त्यों उसका हृदय प्रफुल्लित होता जाता था। दूर से कोई मनुष्य तो दिखाई नहीं दिया परन्तु ऊँचे वृक्ष में बांधी हुई भगवां ध्वजा फहराती दिखाई दी जिससे उसने अनुमान किया कि यह अवश्य ही साधुओं का स्थान है। तुरन्त उसने कषाय वस्त्र धारण किये हुए कुछ सन्यासी देखे और समीप जानें से मालूम हुआ कि-जगदेश्वरी शक्ति (कुदरत) वहां साइनबोर्ड (Sign Board) का काम कर रही है ! आने वालों को शान्तिआश्रम बता रही है। पथिक विचारने लगा "बहुत दिनों से जिस परिश्रम में मैं लग रहा हूं और जो आज तक सफल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं हुआ, इस स्थान पर उसके सफल होने की सम्भावना है।" स्थान के चारों तरफ थूहड़ की घनी बाड़ लगी हुई थी, केवल एक फाटक भीतर जाने को था, उसमें होकर पथिक भीतर गया। भीतर घुस कर उसने एक छोटा सा रमणीक बगीचा देखा। उसको देखता हुआ वह आगे बढ़ा तो देखा कि कषाय वस्त्र धारण किये हुए एक मनुष्य बगीचे के वृक्षों से सूख कर गिरे हुए पत्तों को एकत्र कर रहा है। पथिक ने उससे ॐ नमो नारायण कर के पूछा "स्थानाधीश्वर महाराज कहां विराजते हैं?" स्वामी ने कहा "आप सींधे चले जाइये, सामने के बंगले में आपको महाराज के दर्शन होंगे।" पथिक आगे बढ़ा और बंगले के द्वार पर पहुंच कर उसने देखा कि एक तख़्त के ऊपर बाघांबर बिछा हुआ है, पीछे एक मखमल का गदेला रक्खा है, तख़्त पर दिव्य श्वेत रंग के शरीर वाला, देखने में चालीस पैंतालीस वर्ष की आयु वाला, भव्य आकृति वाला, भगवां वस्त्र धारी एक सन्यासी बैठा हुआ है, और तख्त के नीचे बिछी हुई चटाई पर दो सन्यासी और बैठे हुए पुस्तक पढ़ रहे हैं। पथिक ने भीतर जा कर ॐ नमो नारायण का उच्चारण किया और साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके वह भी पड़ी हुई चटाई पर बैठ गया। पाव घड़ी तक तो संत पढ़ने वाले शिष्यों को समझाते रहे। पाठ पूर्ण होने के पश्चात् उन्होंने पथिक से कहा "आप का आना इस स्थान पर किस प्रकार हुआ? आप दूर देश के रहने वाले जान पड़ते हैं।" पथिक ने कहा "महाराज! आपका कहना सत्य है, मैं देश देशान्तरों में बारह वर्ष से घूम रहा हूँ,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बन, ग्राम, शहर अनेक प्रकार के स्थानों और देशों में मैं घूमा हूं, परन्तु जिस वस्तु को मुझे खोज है वह मुझे कहीं नहीं मिली। मिलना तो एक तरफ रहा, वह वस्तु कहाँ है इसका भी पता नहीं लगा। उसी की खोज में मैं यहाँ आया हूं।" सँत ने कहा "वह ऐसी कौन सी वस्तु है?" पथिक ने कहा, "आप संत महात्मा हैं, इस स्थान पर आपके समीप आने से मुझे ऐसा भास होता है कि मेरी वस्तु का पता आपके पास मिल जायगा। मेरी वस्तु सुख है, मैं सुख की खोज में हूँ। सुख सम्बन्धी मुख्य चार बातें हैं:—(१) सुख क्या वस्तु है? (२) सुख किसमें है? (३) सुख का स्थान कौन सा है? और (४) सुखी कौन है?" संत ने स्मितहास्य से कहा "वाह! आपने वस्तु भी अच्छी निकाली! बारह वर्ष खोजने पर भी आपको उसका पता न लगा! बारह वर्षं में जो जो प्रयत्न आप कर चुके हैं वह सुनाइये।"

पथिक कहने लगा, "महाराज! मैं जाति का ब्राह्मण हूँ, ब्राह्मण आज कल जिस प्रकार अपनी जीविका चला रहे हैं, उस प्रकार के व्यवहार चलाने में बाल्यावस्था से ही मुझको घृणा है। मैंने देखा कि यजमान वृत्ति में बहुत कष्ट है, हर किसी को सेठजी सेठ साहब, लाला जी, बाबू साहब, अन्नदाता कहना पड़ता है, हर एक के सामने हाथ फैलाना पड़ता है, दीनता दिखानी पड़ती है। यह सब करने पर भी इस समय में योग्यतानुसार व्यवहार चलना कठिन है, धन की पूर्ति नहीं होती। मृतक के निमित्त का दान लेना मुझे बहुत बुरा लगता है, ब्राह्मणों में होने वाले ब्राह्म-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

णत्व से हम रहित हैं। जिस ब्राह्मणत्व से ब्राह्मण अग्निमुख वाला—सब प्रकार के दान की आपत्तियाँ जलाने वाला होता है वह हमसें कहाँ है ? सामर्थ्य रहित होकर दान लेने से दान लेने वाला ही दग्ध होता है! मेरे पिता ने मुझको यजमान वृत्ति के कार्य में नियुक्त करने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु मैंने उस कार्य को न किया। संस्कृत पढ़कर पंडिताई से व्यवहार चलाना भी ठीक नहीं समझा, संस्कृत पढ़े हुए पंडितों को मैंने देखा है, वे प्रायः कंगाल ही देखने में आये हैं। जो कोई धनवान पाये तो वे विद्या से धनवान नहीं हुए, परन्तु छल प्रपंच से धनवान हुए जाने गये। आज कल विद्या के निमित्त विद्या नहीं पढ़ी जाती। छल से लोगों को ठग कर मैं धनवान् होना नहीं चाहता। मैं भाषा और कुछ संस्कृत भी पढ़ा हूँ परन्तु पंडिताई से व्यवहार चलाना उचित नहीं समझता। सच्ची पंडिताई और ब्राह्मणत्व की इस काल में पूछ नहीं है। पिता माँग जांच कर कुटुम्ब का पालन पोषण करते थे, उन्होंने मेरा विवाह कर दिया था। माता और पिता के देहान्त होने से मैं और मेरी स्त्री दो प्राणी रह गये। किसी प्रकार के उद्यम बिना काम न चलता देखकर एक बजाजकी दुकान पर मैंने नौकरी कर ली। स्त्री नित्य प्रति कलह किया करती थी। मैंने सोच रक्खा था कि खर्च की तंगी के कारण वह कलह किया करती है, कुछ वेतन बढ़ जाने से शान्त हो जावेगी। दूकान का काम मैं भली प्रकार प्रमाणिकता से करने लगा। कुछ ही मास में मालिक ने मेरीयोग्यता जानकर वेतन दूनाकरके मुझे मुख्य मुनीम बना दिया। अब मुझे ५०) रु० मिलने लगे थे परन्तु इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर भी स्त्री का कलह न मिटा ! बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणों की मांग बढ़ती गई। यदि मैं स्त्री को कोई बात न मानता अथवा कुछ विलम्ब करता तो वह मुझसे दिन रात झगड़ा करती। मैंने सोचा कि एकाध लड़का होने से इसकी लड़कबुद्धि चली जायगी। लड़का भी हो गया परन्तु वह न सुधरी। लड़का बारम्बार बीमार पड़ जाता था, उसकी चिन्ता भी मुझे दुःख देने लगी। स्त्री पुत्रों के बोच में मैं एक दिन भी सुखी न रहा। मालिक बारम्बार मुझ पर हुक्म चलाता, मेरा दोष हो अथवा न हो वह कुछ न कुछ मेरा दोष निकाल देता और कटुवचन सुनाया करता। यहसब मुझे सहन करना पड़ता था। ऊपर मुख से तो मैं कुछ न बोलता, भीतर चिन्ता से जला करता था। नौकरी छोड़ नहीं सकता था क्योंकि और व्यवहार करने की कोई सूरत नहीं दीखती थी। इस प्रकार घर पर दुकान पर कहीं भी मुझे चैन न था। इसके पश्चात् दैवयोग से ऐसा हुआ कि ताऊन (प्लेग) की बीमारी चली और उसमें मेरी स्त्री और लड़का दोनों मर गये। मालिक के यहाँ भी सब मर खप गये। दुकान बंद हो गई। मैं स्त्री, पुत्र और नौकरी रहित हुआ। मेरा दूसरा विवाह होना सम्भव न था कदाचित् होता तो भी मेरा दृढ़ निश्चय था कि मैं अब विवाह न करूँगा विवाह करके दहकती हुई अग्नि में न पडूँगा। इसी प्रकार नौकरी की तरफ से भी मैं उदास था। इसलिये मैंने निश्चय कर लिया कि न तो विवाह करूँगा और न नौकरी करूँगा, प्रसंगोपात कुछ भी कार्य करके उदर निर्वाह करूँगा। परन्तु क्या करूँ क्या न करूँ इस चिन्ता में कई दिन बीत गये, शान्ति न रही। अंत में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैंने सुख की खोज करने का निश्चय किया और जो मुझे सुखी मालूम होता, उसीसे मैं मेल करके उसके अंतःकरण का हाल जानने लगा। 'ब्राह्मणों की आयु सुखमय नहीं है' यह तो मैं प्रथम ही जानता था, बनिये की दुकान पर नौकरी करके देख लिया, वहाँ भी सुख न पाया क्योंकि बनिये लोग सच, झूठ तथा अधर्म से अपना धंधा चलाते हैं। मैंने अपने मालिक के हृदय में शांति कभी न देखी। 'क्षत्रियों को सुख होगा' यह जानने के लिये मैं एक सेना के जमादार के यहाँ कुछ दिन के लिये रसोई बनाने पर नौकर हो गया। दो दिन तक तो वह सुखी हो ऐसा मालूम हुआ, तीसरे दिन जब जमादार भोजन कर रहा था, आधा भोजन कर चुका था कि इतने में ही एक सिपाही ने आकर समाचार दिया कि केप्टिन (Captain) साहब नीचे खड़े हैं। जमादार ने सुनते ही खाना छोड़ दिया, हाथ धोकर नीचे चल दिया, शांति से भोजन भी न कर सका। दो घंटे बाद लड़ाई का हुक्म मिला, उसका घर वहाँ से पाँच कोस दूर था, विचारे को बाल बच्चों से मिले बिना ही जाना पड़ा। यह देख कर मुझे पूर्ण निश्चय हो गया कि वह सुखी नहीं है। 'शूद्र वर्ण को सुख है या नहीं' यह विचार कर मैंने जमादार के कहार से एक दिन एकान्त में कहा :—मित्र नथिया, जमादार इतने बड़े हैं परन्तु उन्हें सुख नहीं दीखता, समय पर कुटुम्ब को तथा खाने पीने को भी छोड़ना पड़ता है, तू सुखी है, अपना काम करता है, बना बनाया तैयार खाना मिलता है, तनख़्वाह अलग लेता है, कपड़ा लत्ता भी मोल लेना नहीं पड़ता।' नथिया ठंडी सांस भर कर कहने लगा 'वाह !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वोहरे जी मुझे सुख कहाँ ? तुम देखते नहीं हो ! गाली गलौज, धौल धप्पड़ मिला ही करता है। थोड़ी सी तनख्वाह मिलती है, मंहगा सम्बत है, बाल बच्चों का पेट भी नहीं भरता। नंगी क्या नहाय, क्या निचोड़े, तुम तो मेरे मित्र हो, तुमसे सच कहता हूँ कि अवसर मिलने पर कोई न कोई वस्तु बिहारी कर ही देता हूँ। चुराते समय और पीछे भी चित्त दुःख पाता है। अनेक प्रकार की चीजें और तनख्वाह घर पर भेजता रहता हूँ, तो भी जब घर जाता हूँ तब स्त्री बच्चे चील के समान मुझे नोच नोच खाते हैं। मेरे दिल की बात मैं ही जानता हूँ, सुखी तो तुम्हीं दीखते हो, बाल नही, बच्चा नहीं, अकेला शरीर है, अच्छा मनमाना खाते हो, तनख्वाह अंटी में लगाते हो, सब महाराज महाराज कहते हैं।' कहार की बातों से मैंने जान लिया कि शूद्र भी सुखी नहीं हैं। पश्चात् मैंने वह नौकरी छोड़ दी, कुछ रुपया मैंने एकत्र कर लिया था उससे गुज़र करने लगा और सुख ढूँढने लगा। एक दिन मैंने विचार किया 'बाल्यावस्था में सुख होगा। मुझे तो बालपने में सुख न था क्योंकि पिता से मेरा मेल न था। जो पुत्र माता पिता के अनुकूल होंगे उन्हें अवश्य सुख होगा' ऐसा विचार कर थोड़ी सी मिठाई बाजार से मोल ले मैं गली कूचों में घूमने लगा। एक गली में एक लड़के को रोता हुआ देख कर मैं उसके पास गया और उसे आश्वासन देकर थोड़ी सी बरफी खाने को दी। जब लड़का बरफ़ी खा चुका तब मैंने उससे कहा 'लल्ला ! तू क्यों रो रहा था ?' वह रोकर कहने लगा 'लड़के मुझे मारते हैं, जब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनके साथ खेलने को जाता हूं तब वे मुझे भगा देते हैं, गालियाँ देते हैं, न भागूँ तो मारते हैं। कई बार मैं रोता २ माता पिता के पास भी जा चुका हूँ, वे कुछ नहीं कहते।' मैंने कहा 'लड़के तुझे बिना दोष मारते हैं तब भी तेरे माता पिता कुछ नहीं कहते?' लड़के ने कहा 'नहीं! मैं उन लड़कों के माता पिता के पास भी गया हूँ और शिकायत कर चुका हूँ तो भी वे अपने लड़कों से कुछ नहीं कहते उलटा मुझे ही फटकार देते हैं।' मैंने पूछा 'तेरे माता पिता कुछ क्यों नहीं कहते?' लड़के ने कहा 'जो लड़के मुझे मारते हैं उनका बाप साहूकार है, मेरा पिता उसका गुमाश्ता है।' मैं थोड़ी सी बरफी और देकर वहाँ से चल दिया और थोड़ी दूर चलकर मैंने एक छोटी लड़की रोती हुई देखी, मेरी और उसकी ये बातें हुईं:-मैं:—लल्ली! क्यों रोती है? लड़की-(चुप, कुछ न बोली)।:—(पुचकार कर और बरफी देकर) बोल लल्ली! क्यों रोती है? लड़की:—मेरी मां मुझे मारती है, आज रोटी खाने को नहीं दी, घर से निकाल दिया है। मैं:—दूसरी (सौतेली) मां होगी? लड़की:—हां, मुझे रोज मारती है, कभी कभी खाने को भी नहीं देती, दिन भर काम कराती है, मैं थक जाती हूँ तब भी उसे दया नहीं आती, रोऊँ तो रोने भी नहीं देती, कभी मैं बाबू (पिता) से मारने की बात कहूँ तो धमकाती है और विशेष मारती है, खाने को नहीं देती। कहीं मेरी माँ से मत कह देना। मेरे बाबू भी मेरी बात नहीं सुनते, मैं बहुत ही दुःखी हूँ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैं आगे बढ़ा तो एक उदास मुख वाला लड़का बैठा हुआ मिला। उसकी और मेरी ये बातें हुई:—मैं:-मुन्ना ! उदास क्यों है ? लड़का:-मेरी उदासी से तुमको क्या ? मैं:—(बरफी दिखा कर) लो। लड़के ने प्रसन्न होकर बरफी ले ली। मैं:—बच्चा ! सच कह तू क्यों उदास है ? लड़का:—सब लड़के कभी बरफी, कभी इमरती, कभी अंगूर, बेर,ककड़ी आदि अनेक चीजें मोलले ले कर खाया करते हैं, प्रथम वे मुझे दे दिया करते थे परन्तु अब मुझे नहीं देते, मुझ से छुपा कर खा जाते हैं। कारण यह है कि मेरा बाप मुझे कभी पैसा नहीं देता। यदि मेरा बाप भी मुझे पैसा देता होता तो मैं भी कुछ लेकर खाया करता और उन लड़कों को भी दिया करता तो कैसा अच्छा होता ! वे मुझे बुलाया करते !

मैं वहाँ से चल दिया, मार्ग में विचारता जाता था:–'बाल्यावस्था भी दुःख रूप है, प्रथम तो विशेष बुद्धि नहीं होती, परतन्त्र होते हैं, घर में माता पिता का त्रास रहता है। पढ़ने का त्रास, शिक्षक का त्रास, और बड़े लड़कों का त्रास रहता है। सारांश यह है कि बाल्यावस्था सुख रूप नहीं है। लड़कों को किसी न किसी प्रकार का दुःख अवश्य रहता है, युवावस्था में जो-जो दुःख होते हैं, उनका अनुभव मैंने स्वयं किया है। जब तक मेरा विवाह नहीं हुआ था तब तक विवाह न होने का दुःख मानता था। अंत में विवाह होने के पश्चात् स्त्री पुत्रों के कारण दुःखी रहा। मैं तो गरीब था इसलिये दुःखी रहा परन्तु जो गरीब नहीं हैं और युवावस्था व्यतीत कर चुके हैं उनसे मिलकर जानना चाहिये कि वे सुखी थे अथवा न थे और अब भी सुखी हैं या नहीं ?' ऐसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विचार कर शहर के सब श्रीमानों के ऊपर मैंने क्रम क्रम से दृष्टि डाली और एक एक के गुण दोष विचारे तो हर एक में कुछ न कुछ दुःख जान पड़ा । एक साहूकार ऐसा विचार में आया कि जिस को प्रत्यक्ष में कोई दुःख मालूम नहीं होता था । जब मैं बजाज के यहाँ नौकरी करता था तब मालिक के काम के लिये कभी २ उस के यहाँ जाना पड़ता था, उसका नाम सुन्दरलाल था । एक दिन मैं उसके घर पर गया, उस समय उसके सिवाय और कोई दूसरा मनुष्य उसके पास न था । उसने प्रसन्नता पूर्वक मुझे बैठाया और हम दोनों में ये बातें हुईं । सुन्दरलालः—बहुत दिनों बाद तुम्हारे दर्शन हुए । मैंः—बजाज के यहाँ से नौकरी छूट जाने के बाद मिलना नहीं हुआ । सुन्दरलालः—आज कल क्या काम करते हो ? मैंः—अभी तो मैं कुछ नहीं करता हूँ । सुन्दरलालः- जो नौकरी करने की इच्छा हो तो मैं बड़ी खुशी से तुमको रख लूँगा । मैंः—आपकी दया है, मैं आपका हूं, अभी तो मैं भी स्त्री बच्चे के शोक से दुःखी हूँ, थोड़े दिन बाद नौकरी आदिक करने का विचार है । सुन्दरलालः–जैसी तुम्हारी मरजी, परन्तु नौकरी के लिये चिन्ता मत करना, जब तुम चाहो तुम्हारे लिये नौकरी तैयार है । भला खाली बैठे क्या किया करते हो, समय समय पर मिलते रहा करो, इधर उधर घूमने से भी दिल बहल जाता है ।

सेठ जी से आज्ञा लेकर मैं घर लौट आया, मुझे उनके अव-काश (फुरसत) का समय मालूम हो गया था, मैं नित्य प्रति उनके पास जाने लगा । कभी धन्धे की बातें, कभी राज्य चर्चा,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कभी देश सुधार इत्यादि की बातें हुआ करती, । दस दिन के भीतर ही मैं सेठ जी का परम मित्र हो गया । बहुत सी गुप्त बातें भी वे मुझ से दिल खोल कर कहने लगे । एक दिन मैंने सेठ जी से इस प्रकार बात छेड़ी :—

मैं :–सेठजी ! दुनियां में मैं जिसको देखता हूँ उसको दुःखी ही देखता हूँ । कितने ही दिनों से मैं सुखी मनुष्य की खोज कर कर रहा हूं । मेरी दृष्टि में हमारे देश में तो कोई सुखी नहीं दिखाई देता । आपही सुखी मालूम होते हैं, देखने में आपको सब प्रकार का सुख प्राप्त है । शहर भर में आपकी मान प्रतिष्ठा है, धन भी आपके पास पूरा है, स्त्री भी अनुकूल है, ईश्वर ने पुत्र दे रक्खे हैं, आपका स्वभाव सरल और आस्तिक भाव वाला है, जो कार्य आप करते हैं, विवेक विचार से करते हैं, दान पुण्य और शास्त्रीय क्रियायें भी आप करते हैं, नियमित रीति से ईश्वर भजन भी किया करते हैं, इस शहर में तो एक आप ही सुखी हैं ।
सेठजी :–(उदास मुख से ठंडी सांस लेकर) मैं ? नहीं ऐसा नहीं है । जैसा तुम कहते हो ऐसा सुखी मैं नहीं हूं । संसार की दृष्टि में मैं सुखी दिखाई देता हूं परन्तु आंतर भाव से जैसा दुःखी मैं हूँ ऐसा दुःखी इस शहर में क्या पृथ्वी पर भी कोई न होगा ।

मैं :—(जी में) कैसे आश्चर्य की बात है । जिसको मैं संपूर्ण सुखी समझता था, वह अपने को महान् दुःखी बताता है । (सेठ जी से) सेठ जी ! आप अपने को दुःखी बताते हैं ! देखने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में तो कोई ऐसा चिन्ह मालूम नहीं होता आंतर में ऐसा भारी दुःख कौन सा है ? यदि आपको बताने में कुछ हानि न हो तो कृपा करके बताइये।

सेठ जी :— बात बताने योग्य नहीं है, उस बात को गुप्त रखने की आवश्यकता भी है, क्योंकि बात प्रत्यक्ष होने से मेरी प्रतिष्ठा भंग होगी। लोग मुझे मूर्ख बतावेंगे, दुष्ट समझेंगे। शरीर छूटने पर ही उस दुःख की निवृत्ति होगी फिर हंसी भी क्यों करानी ? तुम मेरे मित्र हो इसलिये न कहने की बात भी तुम से कहे देता हूँ यह बात दूसरे से न कहना जिससे मेरा फजीता हो। किवाड़ बन्द करदो, यहां कोई आने न पावे। (मैं उठ कर किवाड़ बन्द करके पास आ बैठा) सुनो ! मेरे बाप दादा इस शहर के रहने वाले थे, वे कुछ धन छोड़ कर मरे थे। जब मैं जवान था एक समय धन्धे में बड़ा भारी टोटा पड़ा, युवावस्था का जोश कुछ और ही होता है, युवावस्था की गदहा पच्चीसी में मैंने सब रंग खेले हैं। मुंबई की विशेष शोभा सुनकर वहां की मौज मज़ा भोगने को धन्धे के बहाने से यहां का काम मुनीम को सौंप कर मैं वहां गया और थोड़े दिन पीछे मैंने स्त्री को भी वहीं बुला लिया। नाच, रंग, खेल तमाशों में और वारांगनाओं के यहां बहुधा मैं जाया करता था परन्तु स्त्री के प्रेम में किंचित् मात्र भी न्यूनता न थी। मेरी प्रीति स्त्री के ऊपर विशेष थी, मेले तमाशों में उसको साथ रखता था। वह भी मुझ पर बहुत प्रेम रखती थी और अन्य स्त्रियों से मेरा अयुक्त व्यवहार देखकर भी वह किंचित् बुरा नहीं मानती थी, मुझको ईश्वर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समान पूजती थीं। मैं भी उसे देवी समान समझ कर उसका आदर करता था। उस समय मेरी उम्र बीस वर्ष की और उसकी उम्र सोलह वर्ष की थी।

अन्य स्त्रियों से अमुक व्यवहार का जिक्र तो मैंने कर ही दिया है, उन्ही में से मेरे एक मित्र की स्त्री थी। हमारी मित्रता वास्तविक मित्रता तो यह ही थी परन्तु स्वार्थयुक्त होने से ऊपर से सच्ची मित्रता से भी बढ़ी चढ़ी थी। मित्र महोदय भी व्यापारी थे और बड़े धनी थे और संयोग से मेरे ऐसे ही घर के अकेले और युवक थे। अभी कोई सन्तान नहीं थी, भिन्नता थी तो इतनी ही कि वे स्नेही तबियत के थे, मुझसे मनचले नहीं थे। मेरा उनकी स्त्री से गुप्त प्रेम होगया और हम दोनों एक दूसरे को वहुत चाहते थे। वह स्त्री भी उन्हें मनचला न जान-कर उनसे ऊब रही थी और मेरे ही पास रहना चाहती थी, परन्तु भय वश ऐसा न कर सकती थी, मैं भी शान्त था।

उन्ही दिनों में मुंबई में बड़े ज़ोर का प्लेग फैला, लाशों पर लाशें पड़ने लगीं हमें भी अच्छा अवसर हाथ लगा। हमारे मित्र महोदय को एक दिन ज्वर आया था बस हमने प्लेग प्रकाश करके अपना नीच स्वार्थ साधा और विष प्रयोग से उनकी हत्या कर डाली। मेरा मित्रता का वरताव सभी जानते थे अत: उनका काम काज उनकी स्त्री के लिये संभालने में मुझे कोई कठिनाई न पड़ी। सब धन समेट कर और उस स्त्री को लेकर मैं धनी बन बैठा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अकस्मात् मेरी स्त्री भी बीमार हुई और उसे प्लेग होगया। इस स्त्री की राय पर चल कर मैंने अपनी साध्वी देवी का इलाज करना तो दूर रहा पानी तक न दिया। बेचारी पानी और दवा को तड़प २ कर और अन्त में मेरे दर्शनों को तरस कर मर गई पर मुझ अन्धे को तरस न आया। मैं उस बेचारी के पास तक न गया जिससे बेचारी मुझे अन्तिम समय में देखकर शान्ति से तो मरती।

अब यह वही स्त्री है और उसी धन से मैं इतना धनी बना हूं। हम दोनों में आपस में प्रेम भी है पर भीतरी नहीं। कम से कम मुझमें तो नहीं। हम दोनों मुंबई से यहाँ आकर रहने लगे हैं, संतानें भी होगई हैं पर इन सब से युक्त होने पर भी सुखी नहीं हूं। संसार इस भेद को नहीं जानता वह हमें सुखी भले ही मान ले। मेरे सामने तो मित्र घात तथा सती पत्नी की हत्या के दृश्य नाचते हैं। उनके भूत मुझे खाये डालते हैं। दान, पुण्य, व्रत आदि सब करता हूं पर चित्त को शान्ति नहीं होती, भीतर ही भीतर जला करता हूं, ऊपर से सुखी दीखता हूं।

मेरे बाह्य आचरण से तुमने भी धोखा खाकर मुझे सुखी समझा। अब बोलिये, जैसा आपने मुझे सब से अधिक सुखी समझा था वैसा ही मैं सब से ज्यादा दुःखी हूं या नहीं ? जब यह वृत्तांत सुना तो मैं भयभीत हो गया और ऐसा दुःख किसी और को होना असम्भव जानकर मैंने कहा 'सेठजी ! सचमुच मुझ से भूल हुई। आपने अपना गुप्त हाल मुझसे कहा है मैं उसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गुप्त रखने का प्रयत्न करूंगा। आपका आभार मानता हूं कि मुझ जैसे मनुष्य को आपने अपना भेद बताया है। सेठजी इससे तो मुझे यह निश्चय होता है कि इस जगत् में वास्तविक सुखी कोई नहीं है। देश देशान्तर में घूम कर मैं इसका निर्णय करूंगा' ऐसा कहकर, सुन्दरलाल की आज्ञा लेकर मैं घर लौट आया। विविध पंथ के साधुओं को मैंने देखा है। बहुत से साधु तो कंगले समान ही देखने में आये हैं। उन लोगों को सुख हो ऐसा नहीं जान पड़ता वे सदा अशांति में रहते हैं। अनेक इच्छाओं से भरे हुए हैं। गृहस्थियों से याचना करने वाले, रहने को घर नहीं पहननें को वस्त्र नहीं, ऐसे साधु तो प्रत्यक्ष दुःखी दीखते ही हैं, ऐसा समझ कर उनमें कौन सुखी है इस बात की खोज करनेकी मेरी वृत्ति नहीं हुई। संसार से विरक्त और योग्य साधुओं में कोई सुखी होगा यह खोज करने के लिये जो मुझे सुखी मालूम होता उसकी सूक्ष्मता से खोज करता। एक बार एक स्थानाधिपति आचार्य शहर में आया, वह बहुत अच्छा समझा जाता था। मैंने बहुतसे प्रतिष्ठित पुरुष उसके पास जाते देखे और उनके मुख से उसकी प्रशंसा भी सुनी, इसलिये मुझे उसके दर्शनों की इच्छा हुई। जब मैंने उसे जा कर देखा तो किसी प्रकार का दुःख देखने में न आया। श्रीमान् लोग सदा सेवा में रहते थे, नौकर चाकर और शिष्य वर्ग महाराज कुछ आज्ञा करें इसकी बाट देखते रहते थे। पास रहने वाले पंडित भागवत की कथा दो तीन घंटे सुनाया करते थे, मुख्य बात समझाने का काम आचार्य जी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते थे, लोगों की शंका का समाधान भी वे ही करते थे। दो चार दिन दर्शन करने और उसकी कथा सुनने से मेरी श्रद्धा दिन प्रति दिन बढ़ती गई, मैं उसके पास नियम से जाने लगा विशेष परिचय बिना सुखी है अथवा दुखी है यह नहीं जाना जाता, इसलिये उसके कामकाज में मैं सम्मिलित होनेलगा। थोड़े दिनों में वह अपनी मंडली के मनुष्यों के समान मेरे साथ बर्ताव करने लगा। आचार्य को विशेष प्रिय हो जाऊँ इसलिये मैं एक बार सुन्दरलाल के पास जाकर और उससे उसकी प्रशंसा करके उसके दर्शन कराने ले गया। इसी प्रकार और दो चार साहूकारों को भी उसके दर्शन कराये। जब मैंने मोटी मोटी रकमें आचार्य को भेंट दिलवाई तब मेरे द्वारा विशेष लाभ होता देखकर उसकी प्रीति मेरे ऊपर बढ़ती गई। थोड़े दिनों में यहां तक प्रीति बढ़ गई कि वह मुझे सब मनुष्यों से विशेष चाहने लगा। अब तो वह एकांत में घंटों तक मेरे साथ बात चीत करता रहता। किस साहूकार से किस प्रकार बर्ताव करना, विशेष भेंट किस प्रकार प्राप्त हो, इस प्रकार की उसकी युक्तियों में मैं सम्मिलित होने लगा। मेरे इस प्रकार के वर्ताव से आचार्य मुझ को पूर्ण हित-कर, विश्वासपात्र, और सन्मित्र समझने लगा। मैं उसके साथ पूज्य भाव से बर्ताव करता रहा जिससे धीरे-धीरे मुझे मालूम होने लगा कि उसको धन की इच्छा है। मैं देखा करता था कि उसके पास खर्च से अधिक भेंट आती है किन्तु इतना मिलने पर भी उसे अधिक धन प्राप्त होने की तृष्णा बनी रहती है। एक दिन मैंने विचार किया "आज तक के सहवास से मुझे इतना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मालूम हुआ है कि आचार्य को धन की तृष्णा ने दीन कर रक्खा है। यह भी आंतरिक भाव से सुखी नहीं है।" उसी दिन उसने रात्रि के समय मुझे छत के ऊपर बुला कर कहा "भाविक। तू मेरे हित में नित्य तत्पर रहता है, मुझे गुरु समझ कर निष्कामता से सहायता देता है, मैं तुझे मित्र समझ कर कहता हूँ, कदाचित् तेरे जी में शंका उठती होगी कि आचार्य जी धन की तृष्णा क्यों करते हैं ? इसका कारण सुन कि मुझे इस समय धन की बहुत आवश्यकता है, क्योंकि यदि मुझे धन न मिले तो मैं अपना मुकद्दमा जो बहुत दिनोंसे चल रहा है न चला सकूं। यदि मुकद्दमा न चलाऊँ तो मेरा बीस वर्ष का किया हुआ परिश्रम व्यर्थं जाय।" मैंने कहा "आप तो धर्माचार्य हैं, त्यागी, ज्ञानी और विद्वान् हैं। आपको मुकद्दमे से क्या वासता? मुकद्दमेबाजी तो गृहस्थियोंका काम है। लड़ाई की जड़ ज़र (धन), जमीन और जोरू इन तीन के सिवाय चौथी नहीं है।" आचार्य उदासीन मुख से कहने लगा, "हां! यह तेरा कहना सत्य है, हम लोग त्यागी, ज्ञानी और विद्वान् कहे जाते हैं, परन्तु त्यागी अथवा ज्ञानी होना कोई सहज बात नहीं है त्यागी और ज्ञानी के स्वरूप वाले हम लोग भी एक प्रकार के गृहस्थी ही हैं। हम लोगों के जोरू-स्त्री नहीं है, और ज़मीन ज़र (रुपया) हमारे पास भी है, इसलिये झगड़े, टंटे, मुकद्दमे होते ही रहते हैं। मेरे गुरु महाराज विद्वान थे उनके स्थान की जागीर की आमदनी एक लाख रुपये वार्षिक है. मेरी वृत्ति साधुओं की तरफ देख कर मेरे पिता ने यह सोच कर कि आचार्य का प्रथम शिष्य होने से मेरा पुत्र श्रीमान् हो जायगा,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुझे आचार्य का त्यागी प्रथम शिष्य बना दिया। मैंने आचार्य गुरु जी से विद्या पढ़ी। एक समय गुरुजी ने एक बात के निमित्त मुझे शासन किया यानी दंड दिया। वैराग्यके उफान में मैं गुरु की आज्ञा लेकर, सब पदार्थों का त्याग करके एक कोपीन धारण कर विचरने निकल पड़ा। वैराग्य वृत्ति में तीन चार साल घूमता रहा। इस अवस्था में मैं धन को तिरस्कार की दृष्टि से देखता था, छूता भी न था। जो कोई मुझे दो चार आने देने लगता तो मैं धन और धन के देने वाले दोनों को तिरस्कार करता था। जिस वैराग्य का मैं वर्णन कर रहा हूं वह सच्चा वैराग्य न था। थोड़े दिन पीछे झूठा वैराग्य भी रहा और मैं धन का संग्रह करने लगा। बाल्यावस्था में साधु होने से संसारी सुख नहीं देखा था, इसलिये संचित धन का इन्द्रियों के विषय भोग के निमित्त उपयोग करने लगा। कभी किसी स्थान पर और कभी किसी स्थान पर रहकर ऊपर से त्यागी दीखता हुआ वस्तु रूप से मैं रागी रहा। अनेक प्रकार के अपलक्षण मुझमें आ गये। ऐसी अवस्था में अपने स्थान पर किस प्रकार जा सकूं और गुरुदेव के सामने मेरा रहना किस प्रकार हो? इस प्रकार बारह वर्ष व्यतीत हो गये। स्थान छोड़े पंदरह वर्ष बीत गये। एक समय एक साधु से मेरी भेंट हुई, उसकी बात चीत से मालूम हुआ कि वह मेरे स्थान के समीप का रहने वाला है। मैंने उससे गुरुदेव का समाचार पूछा उसने कहा 'कोई चौदह वर्ष हुए, उनका शरीर पंचतत्व को प्राप्त हो गया। उनका बड़ा शिष्य वहाँ था नहीं। सब सेवकों और ग्राम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के प्रतिष्ठित पुरुषों ने उसकी खोज की परन्तु पता न लगा तब उन्होंने वहाँ ही रहने वाले महाराज के भोजन बनाने वाले को गद्दी का मालिक कर दिया। वह भी समाप्त हो गया अब उसका एक शिष्य वहाँ की गद्दी पर विराजमान है। वह धर्मात्मा है और पांच वर्ष से आचार्य है।' फिर मैंने उससे अपने पिता माता का हाल पूछा तो उसने कहा 'वे दोनों मर गये हैं। जब बड़े आचार्य मरे और उनका लड़का जो गद्दी का मालिक था, न मिला और दूसरा मालिक हो गया तब उन्होंने कल्पान्त करते हुये अपने प्राण छोड़दिये। यह समाचार सुनकर मैंने स्थान पर जानें का निश्चय किया और कुछ दिनों में मैं वहां पहुंचा। मुझे स्थान का मालिक होने वाला समझ कर स्थान के कर्मचारियों ने भीतर न जाने दिया। एक सामान्य साधु के समान भोजन का सत्कार कर दिया। मैं वहां से दो कोस पर एक ग्राम में टिक कर 'मैं स्थान का सच्चा मालिक हूं" ऐसा प्रकट करने लगा। बहुत से पुराने मनुष्य मर चुके थे, नये २ मनुष्य मुझे पहचानते न थे। वर्तमान आचार्य का पक्ष लोगों और सरकार में बढ़ गया था। मैंने विद्या के प्रभाव से थोड़े से अनुयायी बनाकर एक छोटा सा स्थान तैयार किया और उसमें ठाकुर जी स्थापित किये। फिर मैं बम्बई और कलकत्ते जाकर वहां के श्रीमानों से कुछ रुपया लाया और 'आचार्य की गद्दी का मैं मालिक हूं, जमीन जागीर और स्थान मेरे आधीन होना चाहिये' इस बात की मैंने अदालत में नालिश की। दावा भारी होने से अनेक मनुष्य मेरी और प्रतिपक्षी की तरफ से साक्षी देने आ चुके हैं। पांच साल तक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुकद्दमा चलता रहा, पच्चीस हजार से विशेष रुपया खर्च हुआ, अच्छे २ शहरों में से मांग जांच कर और उपदेश के सहारे, रुपया आया और मुकद्दमे में खर्च हुआ। अन्त में मेरा दावा खारिज हो गया और प्रतिपक्षी के खर्च की डिगरी मेरे ऊपर हो गई। मेरे पास देने को क्या धरा था। हार जाने से मैं रुका नहीं, ऊपर की अदालत में अपील की। कोई तीस हजार रुपया उसमें भी खर्च हुआ। गदहे के समान मेरा हाल था, बड़े बड़े शहरों में से धन ढो ढो कर लाता था और सब अदालत में स्वाहा हो जाता था। अन्त में उनमें भी मैं हार गया। फिर मैंने उससे भी ऊँची अदालत में अपील की। वह अभी चल रही है, पचास हजार रुपया अब तक खर्च हो चुका है और इतना ही और खर्च होना सम्भव है। मुझमें जो धन की तृष्णा तुझ को दीखती है वह मुकद्दमे के कारण है अब मुकदमा छोड़ देना भी नहीं बन सकता। इतना रुपया खर्च कर के बिना फल प्राप्त किये रुक जाना अच्छा नहीं है। लोगोंमेंहंसी होगी, स्थान भी नहीं मिलेगा, किया हुआ सब खर्चा और मेरा पच्चीस वर्ष का श्रम व्यर्थ जायगा।' इस प्रकार की आचार्य की बातें सुनकर मैं स्तब्ध हो गया, हाँ जी ! हां जी ! करता रहा। उसको बुरा न लगे यह सोच कर मैंने दो तीन दिन तक उसके पास जाकर पश्चात् जाना छोड़ दिया, जिस इच्छा से मैं उसके पास गया था वह मेरी इच्छा पूर्ण हुई। मैंने उसका आंतरिक भाव जान लिया, मुझे मालूम हो गया कि ऊपर से आचार्य बने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुए हैं भीतर स्थानासक्ति रूप अग्नि दिन रात लग रहा है, यह सुखी नहीं है ।

अब मैंने सोचा 'यहाँ तो मैंने अच्छी प्रकार देख लिया, इस स्थान पर मुझे कोई सुखी नहीं दिखाई दिया । यहाँ न सही ! कदाचित् किसी और देश में कोई सुखी मिल जाय इसलिये और देश देखना चाहिये ।' आज कल मुम्बई नगरी इन्द्रपुरी की शोभा को प्राप्त हो रही है, ऐसा विचार कर मैं वहाँ गया , वहाँ की बाहर की शोभा देख कर मैं चकित होगया ! एक धर्मशाला में निवास करके प्रातः संध्या बाजार आदिक में जाकर मनुष्यों का बर्ताव देखने लगा । मैंने देखा कि सब मनुष्य परतंत्रता के वश हो रहे हैं । जल लेने में परतंत्रता, दीपक बत्ती में परतंत्रता, रास्ते चलने में परतंत्रता । और क्या देखाकि बड़े-बड़े साहूकारों का शरीर फूला हुआ है, अंडकोश बढ़ गये हैं, जहाँ देखो वहाँ प्रवृत्ति ही प्रवृत्ति फैल रही है, किसी में शान्ति देखने में न आई । टट्टी जाने में पूरा नरक का अनुभव हुआ । ऐसी दुर्गंध और गंदगी अपनी उमर भर मैंने नहीं देखी थी । वहाँ भी परतंत्रता ! लोटा हाथ में लिये हुए जब पाव घंटा, आधा घंटा जाजरूर देवी की उपासना को जाय तब जाजरूर देवी-नरक द्वारखोले । यदि तब भी नम्बर न आया हो तो और तपश्चर्या करनीपड़े । कष्ट ! हाय कष्ट ! यहाँ सुख कहाँ ? यहाँसुखी कौन ? घृणायुक्त होकर, मुम्बई पुरी को नमस्कार करके मैं मदरास पहुँचा । वहाँ पहुँचते ही प्रथम यह आपत्ति पड़ी कि वहाँ की भाषा समझने में न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आवे, गुर गुर गुर करें, जिसको देखूँ वह ही काला भुजंग दिखाई दे। क्या स्त्री, क्या पुरुष, सब के शरीर में नारियल के तेल की बुरी बास मारे। इमली का पना और चांवल भोजन! बात-चीत का स्थान कोई नहीं। यह सोचकर कि देवल में शान्ति होगी मैं वहाँ गया तो दो तीन देवी के स्थान ऐसे देखने में आये कि जो कसाइयों के हलाल करने के स्थान से भी अधिक गंदे और घृणा उत्पन्न कराने वाले थे। मद्रास भी सुख का स्थान नहीं है यह सोच कर मैं सीधा सेतुबन्ध रामेश्वर पहुंचा। यह तीर्थ स्थान है, यहाँ से पंड्याओं के प्रपंच, खेंचातानी का क्या पूछना? बालू ही बालू देखने में आवे रमणीक स्थान कोई नहीं, हवा पानी भी अच्छा नहीं, सिवाय मंदिर के सब स्थानों पर खारी पानी, दूध तक नमकीन। वहाँ से भी भाग निकला। सिंगलद्वीप-कोलम्बो का रास्ता लिया, दो दो डाक्टरों की तलाशी के पश्चात् जहाज में बैठने पाया। जहाज़ में कुली लोग बच्चों कच्चों सहित भर रहे थे, वह कोलाहल मचा कि कान बहरे होगये। थोड़ी देर में लंगर उठा और जहाज़ चल पड़ा। बैठने वालों के मस्तक में चक्कर आने लगे, थोड़े मनुष्यों के सिवाय सब को कै पर कै होने लगी जहाज़ ऊँचा नीचा हो जाया करे! जहाज़ के किनारे के भीतर ही सब कै करें। कै की छीटें और जहाज़ हिलने से पानी की छीटें बैठे हुओं पर पड़ें! हाय नरक और क्या होगा? ऐसा ही होगा! राम राम करके इधर उधर खिसकता हुआ महाकष्ट से रात व्यतीत की। दूसरे दिन दोपहर को कोलम्बो में उतर वहाँ से पूछता २ तामिल धर्मशाला में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहुंचा। वहाँ के कष्ट का क्या वर्णन किया जाय तामिल लोगों के साथ रहना महा घृणा युक्त था। मुम्बई की जाजरूर की समान वहाँ भी नरकवास था। दुकान पर चीज वस्तु लेने गया तो क्या देखता हूँ कि चांवलों के साथ मछलियाँ रक्खी हैं चांवल की टोकरी में भी मछली पड़ी हुई है ! क्या वस्तु लूँ ! कैसे बनाऊँ ? कैसे खाऊँ ? जो वस्तु लेना चाहूँ वही घृणायुक्त वस्तु के साथ में रक्खी हुई। मेरा भाग्य अच्छा था, एक हिन्दुस्तानी की दुकान मिल गई वहाँ से दाल, चांवल, आटा और मसाला खरीद कर, लकड़ियाँ लेकर धर्मशाला में आया। अब रसोई बने किस प्रकार ? वहाँ के कर्मचारी ने दया करके एक कोठरी दे दी थी। वह इतनी गंदी थी कि दिन भर उसके साफ करने में ही लग गया। थोड़ा दूध पीकर वह दिन काट दिया दूसरे दिन रसोई बनाई। तीसरे दिन मैं शहर का निरीक्षण करने निकला, सड़क ऊपर से अच्छी दीखती थी उसके एक तरफ एक मनुष्य हाथ में पेशाब करते हुए दिखाई दिया, उसने पेशाब करके सड़क पर छिड़क दिया। मैं घृणा सहित आश्चर्य करने लगा : छोटे कदके मनुष्य, काले २ रंग के लुँगी का कपड़ा बाँधे हुए, अच्छी प्रकार देखे विना स्त्री पुरुष का भेद भी नहीं मालूम पड़ता था, शरीर में नारियल की गंध, शिर पर राक्षसों के समान दो नोक निकली हुई हड्डी ! पुरुष और स्त्री दोनों एक ही प्रकार के, भाषा विलक्षण, वहाँ भी सुख और सुखी होना असम्भव जान कर मैं वहाँ से चल दिया और मार्ग में अनेक स्थान देखता हुआ द्वारिका पहुंचा। तीर्थस्थान बिगड़े हुए हैं, पूर्व के से नहीं हैं। प्रथम से ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुझे प्रेम न था, द्वारिका में सुखी और सुख का स्थान मेरी इच्छा-नुसार देखने में न आया। वहाँ से चल कर मैं मथुरा पहुंचा, वहां की भी लीला देखी। वहाँ से चल बद्रीनारायण के मार्ग में पहुँचा! वहाँ के जल ने मुझे बीमार कर दिया पहाड़ों पर चढ़ने उतरने से मेरा दम फूलने लगा, आवश्यक वस्तु मिले नहीं, सरदी का बड़ा जोर, राम २ करके वहाँ से लौटा। फिर कश-मीर में आया। वहाँ का नियम है कि मजदूर को मजदूरी करने के दाम प्रथम दिये जाते हैं। शहर में जाने को एक इक्का किराया किया जब संपूर्ण किराया दे दिया तब इक्के में बैठने पाया। लोग वहां के बदमाश हैं, देश इतना ठंडा है कि शीतकाल में दो दो महीने तक घर में से निकला नहीं जाता, घर में बैठे २ अंगीठी में आग जला कर दिन व्यतीत किया जाता है। बड़े बड़े लम्बे चौड़े एक एक थान के झंगे होते हैं और लोगों को काशमीर भले अच्छा लगता होगा, मैं तो शीत और मच्छर आदिक का जोर देख कर वहाँ से भागा। काशमीर में मुझे सुख स्थान नहीं मिला। फिर मैं घूमता २ काशीजी पहुंचा यह शिवजी की पुरी कहलाती है। काशी के गुन्डे प्रसिद्ध हैं। उनकी चालाकी से मैं बचता रहा। संन्यास रूप धारण करके मैंने उनकी अनेक प्रकार की ठग विद्या देखी जिनका वर्णन करने में कई ग्रन्थ बन जांय। छोटी २ गलियाँ, अंधेरी सीढ़ियाँ, विधवा स्त्रियाँ और साँड का उपद्रव! गंगा किनारे के लाखों रुपये के घाट टेढ़े होने से काशी की शोभा टेढ़ी कर रहे हैं। सच कहा है:—रांड, सांड, सीढी, संन्यासी; इनसे बचे सो सेवे काशी। पंडाओं की तंगी यात्रियों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

में अश्रद्धा उत्पन्न करती है ! अनेक रीति से देखा काशी में कहीं सुख नहीं पाया ! अयोध्याजी में जहां देव मंदिर है वहां चढ़ोत्री चढ़ाने में यात्री फंसाये जाते हैं और दलाल साथ लगे होते हैं। देवता की चढ़ोत्री में से दलाली खाते हैं प्रयाग देखा गंगाजी के मूर्ख पंडाओ की लीला ने हद करदी। इस प्रकार मैं सब स्थानों में घूमा हूं परन्तु किसी स्थान में मुझे शान्ति नहीं मिली, मुझे कोई सुखी नहीं मिला, सुख क्या है और कहां है यह भी जानने में न आया। सुख की ही खोज में मैं आपके पास आया हूं यदि आप इस विषय में कुछ जानते हों तो सेवक को बता कर अनुग्रहीत कीजिये। सँसार में तो मुझे सुख नहीं मिला कदाचित् संसार से बाहर सुख होगा तो संसार से अतिरिक्त वह कौन सा स्थान है, कृपा कर बताइये।''

संतने पथिक का वृतान्त ध्यान देकर श्रवण किया। फिर वे इस प्रकार बोले "तूने जो वर्णन किया वह ठीक है। तू जहां २ सुख की खोज कर चुका है वहां सुख नहीं है तेरे समान एक देवदूत ने भी इसी प्रकार खोज की थी और वह भी निराश हुआ था। तू मनुष्य है, वह देवदूत था। देवदूत विशेष सामर्थ्य वाले होते हैं वे सब लोकों में आ जा सकते हैं और भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों को एक समय में प्रत्यक्ष कर सकते हैं उसने सब स्थानों पर घूम कर जो सुख की खोज की थी उसका वृतान्त देवदूत प्रवास नामक एक बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखा गया है। उस ग्रन्थ को सूक्ष्म दृष्टि वाले ही पढ़ सकते हैं, मेरे गुरुदेव ने ग्रन्थ के कई पन्ने पढ़े थे, उनकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्मृति से मैंने थोड़ी नकल करली है वह मेरे पास है, उसे मैं तुझको देता हूं तू उसको पढ़, वह भी तेरी बात पुष्ट करता है।" ऐसा कह कर संत ने एक छोटी सी पुस्तक पथिक को दी वह उसको पढ़ने लगा:–राजा कर्ण दान करने में सबसे श्रेष्ठ है ऐसा जानकर देवदूत उसके पास गया। राजा कर्ण सुवर्णदान देनेलगा परन्तु देवदूत ने न लिया और दान प्रतिज्ञा में एक बात पूछनेको कहा। राजा ने स्वीकार कर लिया। देवदूत ने कहा "राजन्! तू सब प्रकार सुखी है या नहीं?" कर्ण ने कहा "हे महाशय! मैं सुखी नहीं हूं, लोग मुझे सूत कहते हैं इससे मैं लज्जा को प्राप्त होता हूं सूत शब्द मुझे बहुत बुरा लगता है, अन्य सब सुख ऐश्वर्य और पराक्रम होते हुए भी सूत शब्द सुन कर मैं रात दिन जला करता हूं। मैं सूत हूं या नहीं यह मैं नहीं जानता।" एक बार देवदूत ने विश्वामित्र से पूछा "हे तपस्वी आप पराक्रमी हैं आप अवश्य सुखी होंगे।" विश्वामित्र ने कहा "हे देवदूत; मैं वास्तविक सुखी नहीं हूं, वसिष्ठजी मुझसे राजर्षि कहा करते हैं इसलिये मैं रात दिन चिन्ताग्रस्त होकर जला करता हूं।" इसी प्रकार देवदूत ने राजा शांतनु से पूछा "आप ऐश्वर्य सम्पन्न चक्रवर्ती धर्मात्मा हैं, आप अवश्य सुखी होंगे?" शांतनु ने कहा "मैं सुखी नहीं हूं, रूप से मोहित होकर मैंने एक अनजान स्त्री से संगति करनी चाही, उसने मुझसे प्रथम कई प्रतिज्ञायें करालीं वह हत्यारी है, मैं उसे रोक नहीं सकता, मेरे समान संसार में दूसरा दुखी न होगा!" यह ही प्रश्न जब देवदूत ने पांडु से किया तब उसने कहा "हे देवदूत! तू जानता है कि शाप के कारण मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

पुरुषत्व का उपयोग नहीं कर सकता, दोनों स्वरूपवती तथा गुण-वती स्त्रियाँ होते हुए भी मैं उनसे पृथक रहता हूं, मैं अत्यन्त दुखी हूं।" भीम से पूछा गया तब भीम ने कहा "द्रोपदी के चीर खींचने के कारण दुर्योधन मुझे शत्रु समान दीखता है, मैं उसे मार डालना चाहता हूं परन्तु राजा युधिष्ठर की आज्ञा न होनेसे अन्तर में अत्यन्त दुखी रहता हूं।" इन्द्र से पूछागया तबवह बोला"वारम्वार दैत्योंसे लड़ना पड़ता है जब कोई तपस्वी महान् तप करता है तब मैं जलतारहता हूं, कोई बलिष्ठहोकर मुझेपदभ्रष्ट न करदे इसकी चिन्ता निशिदिन मुझे जलाती रहती है।" इसी प्रकार शुक्राचार्य ने कहा "मैं विद्वान हूं, मृत संजीवनी विद्या जानता हूं, परन्तु सुखी नहीं हूं, मैं देवलोक में विचर नहीं सकता मेरी पुत्री का कोई ब्राह्मण विवाह नहीं करता।"बृहस्पति ने कहा "मैं एक अयोग्य शिष्य का गुरु हूं, चन्द्र मेरी स्त्री को ले गया, मैं उसे फिर लौटा लाया, इस प्रकार के लाँछन से मैं दुखी हूं। शुक्राचार्य की विद्या के समान मेरी विद्या और सामर्थ्य काम नहीं देती, मैं इन्द्र का गुरु होने से भी दुखी हूं" ब्रह्मा ने कहा "मैं सृष्टिकर्ता हूं, तो भी शाप वश मेरी प्रतिमा का पूजननहीं होता। जगत् का पालन और संहार मेरे हाथ में नहोने सेस्वार्थी लोग मुझे तुच्छ समझते हैं, मेरी बुद्धि में विकार हो जाने से मैं अपनी पुत्री पर मोहित होकर उसके पीछे दौड़ा, इस कलंक के दोष से मैं नित्य दुखी रहता हूं। राजा हरिश्चन्द्र ने कहा "लोग मेरी प्रशंसा भले ही किया करें परन्तु मैंने जो जो कष्ट सहे हैं उनका जब विचार आता है तब रोमाँच खड़े हो जाते हैं, मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इतना कर्महीन हो गया कि पुत्र और स्त्री की भी रक्षा न कर सका, मेरे निमित्त विश्वामित्र कोअति परिश्रम उठाना पड़ा, यह इतिहास मेरे सामने से कभी नहीं हटता। भला मैं किस प्रकार सुखी हो सकता हूं।" भीष्म नेकहा "मैं संसारमें रहता हूं, मेरा शरीर संसारी है, जैसे विकार और शरीरोंमें होते हैं वैसे ही मेरे शरीरमेंभी हैं, पिताकेमोहके कारणमैंने व्याह न करनेकीप्रतिज्ञा की, इसलियेमैं राज्य और विवाह नहीं करसकता। इनकारणों से मैं हमेशा दुखी रहता हूं। मैं विद्वान् होकर भी कौरवों का पक्ष ग्रहण करने से दुःखी रहता हूं, वस्तिविक मैं बहुत दुखी हूं।" जब उपरोक्त सबमें से किसी ने अपने को सुखी न बताया तब देवदूत ने विचार किया "वसिष्ठजी को मैंने स्वयम् अपनें पुत्र के पीछे रोते हुए देखा है, आपघात करने को तैयार थे। विश्वामित्र की शत्रुता ने उनकी सब संतति का नाश कर दिया इसलिये वे भी सुखी नहीं हैं। रामचन्द्रजी की तरफ देखता हूं तो मेरी दृष्टि में वे भी सुखी नहीं हैं। अपर माता के वचन से वन बास भोगना पड़ा, राजकुमार होकर वन २ घूम कर कष्ट उठाना उनके शोक में उनके पिता का मरण होना, सीता को रावण का चुरा लेजाना, सीता के लाने केलिये बन्दरों से मित्रता करना परिश्रमसे सीताको लाकर फिर वनमें भेज देना, इत्यादिक वृत्तांत से प्रकट होता है कि वे अनंत दुखी हैं एक धोबी के कहने से सीताजी को वन में भेज देने का कलंक अब तक जगतमें प्रसिद्ध है। श्रीकृष्णजीकी लीलायें भले अपरम्पार हों परन्तुमैं तो उन्हेंसुखी नहीं समझता।जन्म होतेही मातापिताको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छोड़ कर भागना पड़ा, अहीर के घर बड़ा होना, गोपियों का दधि-दूध चुराकर खाना, अनेक राक्षसों का उपद्रव, इन्द्र और ब्रह्मा का उपद्रव, जरासिंधु से हार कर भागना, मथुरा छोड़ कर द्वारिका में भाग कर जाना ये सब दुख ही हैं। जब कि एक दो स्त्रियों से ही दुख होता है तब जिसके सौलह हजार एक सौ आठ स्त्रियाँ हों और उनका विस्तार हो वह किस प्रकार सुखी रह सकता है ? चाहे लोग उनको ईश्वर समझकर भक्ति के कारण उनमें दुख न माने परन्तु मैं तो उन्हें दुखी ही समझता हूँ। इस प्रकार मैंने ब्रह्माण्ड भर में किसी से मिल कर और किसी का अनुमान करके देखा तो सब दुखी निकले। इस प्रकार निश्चय होने से मैं प्रजापति के पास गया और उनके सदुपदेश से मुझे शान्ति प्राप्त हुई।"

जब पथिक इस प्रकार पढ़ चुका तब संत ने कहा, "देख ! इस प्रकार जैसा तूने निर्णय किया है वैसा ही देवदूत ने किया था। अब मैं जो कहता हूँ उसे समझ:—सुख आत्म तत्त्व है। आत्मा सत् चित् और आनन्द स्वरूप है। सुख आत्मा में है। सुख का स्थान स्वयं तू है। सुखी भी तू ही है।" पथिक ने कहा, "आपके वचन तो अत्यन्त आश्चर्य जनक है। मैं सुख रूप सुखी आदिक किस प्रकार हूँ ? जो मैं सुख रूप ही होता तो अनेक प्रकार के कष्ट कैसे भोगता ? भगवन्! आप मुझे ठीक रीति से समझाइये।" संत ने कहा, "जैसा मैं कहता हूं उसी प्रकार है। तू अपने को जानता नहीं है इसलिये अपने को सुखी भी नहीं समझ सकता।" पथिक ने कहा, "महाराज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरे को मैं न जानूँ ऐसा तो हो सकता है परन्तु आपका कहना तो यह है कि तू अपने आपको नहीं जानता। यह किस प्रकार बने ?" संत ने कहा, "तुझे माया के कारण से ऐसा भान होता है। जो मैं तुझ से पूछूँ कि तू कौन है तो तू कहेगा कि मैं अमुक गोत्र वाला, अमुक नाम वाला, अमुक ग्राम में रहने वाला, अमुक का पुत्र आदिक हूँ। परन्तु तू विचार कर कि तेरा गात्र जन्म होने से प्रथम का नहीं है, तेरा नाम भी जन्म के पश्चात् लोगों का रक्खा हुआ है। ग्राम भी जन्म होने से प्राप्त हुआ है। पिता पुत्र के सम्बन्ध की संज्ञा भी पीछे की कल्पित है। तब तूने जो अपनी संज्ञा बताई वह तू नहीं है। परन्तु जिसमें उपाधि रूप से ये सब संज्ञायें पीछे से प्राप्त हुई हैं वह तू है। तेरा शरीर भी इस जगत् का है। अब सोच कि तू कौन है ?" पथिक ने कहा, "भगवन्। ऐसे विचारने से तो मैं कुछ भी न रहा। देश काल और स्थान के परिच्छिन्न भाव को हटाने के पश्चात् क्या रहा ? कुछ भी न रहा।" संत ने कहा, "यह तू नहीं जानता कि क्या रहा ? जो शेष रहा है वह ही तू आत्म स्वरूप है। तुझे एक महान् धोखा हो गया है। जब तक वह धोखा निवृत्त न होगा तब तक तू अपने को नहीं जान सकता। तेरी बुद्धि माथिक भाव में होने से समझने को अशक्त है। तू कहता है कि कुछ न रहा। यह असम्भव है ! यह सब नाम, रूप, प्रपंच जो दीख रहा है वह किसी अधिष्ठान बिना नहीं दीख सकता। इन सबका अधिष्ठान रूप तू है। जो तू अपने को पहचानना चाहे तो शास्त्रों में जो अध्यात्म विद्या के शास्त्र हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनमें इस विद्या के जानने योग्य अधिकारी के जो लक्षण बताये हैं उन लक्षणों वाला अधिकारी होकर जब तू यथार्थ मुमुक्षु होगा तब तुझको सदुपदेश से ज्ञात हो जायगा कि तेरे सिवाय और कोई सुख स्वरूप नहीं है। माया में भी किसी २ कार्य में सुख का भान होता है, किन्तु उन सब का भंडार तू ही है।

अधिक पाप का होना मल दोष है और अत्यंत चंचलता विक्षेप दोष है, ये दोनों दोष जिसके बहुत अंश में निवृत हुए हैं और आवरण दोष को ही निवृत्त, करना जिसे शेष है ऐसा पुरुष ज्ञान का अधिकारी हो सकता है, ऐसे अधिकारी के मुख्य चार लक्षण हैं:—१ विवेक २ वैराग्य ३ षट् सम्पत्ति और ४ मोक्षेच्छा। उसमें आत्म स्वरूप को ही नित्य तथा और सब को अनित्य जानना विवेक है। इस लोक तथा परलोक के सम्पूर्ण भोगों की इच्छा के त्याग का नाम वैराग्य है (यहाँ इच्छा शब्द पर विशेष ध्यान देना चाहिये)। शम आदि षट् सम्पत्ति हैं, उसमें सर्व वासना के त्याग को शम कहते हैं, शब्दादि इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों के रोकने को दम कहते हैं, संसार के सर्व प्रपंच से निवृत्ति का नाम उपरति है। शीतोष्ण, सुख दुःख, मान अपमान आदि द्वन्द्व धर्मों को सहन करने का नाम तितिक्षा है, ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु तथा वेदान्त वाक्य में विश्वास को श्रद्धा कहते हैं और चित्त की एकाग्रता को समाधान कहते हैं। संसार बंधन से मुक्त होने की इच्छा को मोक्षेच्छा कहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार का अधिकारी वा सच्चा मुमुक्षु, आत्म अनात्म, का विवेक करके शरीर के पञ्चकोशादि में आत्मा के भ्रम को दूर करके सच्चा सुख वा शांति पा सकता है। यह भ्रम ही सारी अशांति का मूल है। इस भ्रम को मिटाकर तथा सत्यादि स्वरूप ब्रह्म को जान कर ही सब दुःख और बन्धनों से छूट जाते हैं, जन्म और मृत्यु से तर जाते हैं तथा ज्ञान से परमपद को पाते हैं। अतः अब आत्मा क्या है ? माया क्या है ? शरीरादि पञ्चकोश क्या हैं ? इन सब को विस्तार पूर्वक समझाते हैं।

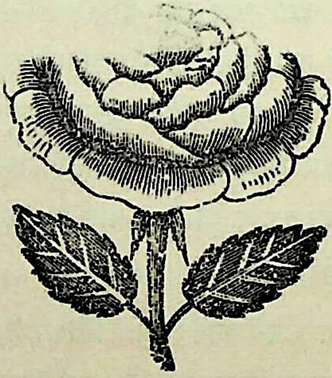

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मा ।

आत्मा शब्द उच्चारण करते हुए, आत्मा क्या है लोग ठीक २ त्याति से नहीं समझते । शास्त्रों में भी आत्मा का प्रयोग प्रसंगानुसार शरीर पर, मन पर, जीव पर और कूटस्थ पर हुआ है तब पदन चारों में से वास्तविक आत्मा कौन है ? अथवा इन चारों से आत्मा भिन्न है ? इन चारों में आपस में क्या अन्तर है ? उनमें कस प्रकार का संबंध अथवा अंश है, अथवा सब भिन्न २ हैं, सको विचारे विना आत्मा समझ में नहीं आ सकता । आत्मा ब्द का अर्थ स्वयं-आप है । जो जैसे भाव से युक्त होता है, अपने ो जैसा समझता है, वैसा ही आत्मा का अर्थ करता है, उसको ो आत्म रूप वस्तु जानता है । शास्त्रों में भी प्रसंगानुसार तथा धिकारी भेद से आत्म शब्द का भिन्न २ अर्थ का उपयोग कया है; इसलिये शरीर, मन, जीव और कूटस्थ पर्यायवाचक ब्द नहीं हैं और चारों भिन्न-भिन्न भी नहीं हैं । चारों में तत्त्व क ही है और चारों की उपाधियाँ भिन्न २ हैं । इसलिये उपाधि हित चारों भिन्न २ हैं और उपाधियों का वाध करने से शुद्ध त्त्व स्वरूप से एक ही हैं । आत्मा ब्रह्म है और शरीर, मन, जीव ौर कूटस्थ उसी के प्रकाश से है । आत्मा ब्रह्म स्वरूप है, इसलिये ब में व्यापक है । व्यापक और व्याप्य भाव द्वैत में होता है तो ो उपदेश के अर्थ कथन किया जाता है । उपदेश में द्वैत होता इसलिये आत्मा को व्यापक और उसकी व्यापकता माया में मझो । माया के एक शरीर में जिस आत्मा की व्यापकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समझी जाती है, उसे कूटस्थ कहते हैं। आत्मा सर्वत्र व्यापक और कूटस्थ एक शरीर में व्यापक है इतनी आत्मा और कूटस्थ की भिन्नता समझो। आत्मा की सर्व व्यापकता छोड़ कर शुद्ध समझते हैं और कूटस्थ की शरीर व्यापकता छोड़ कर समझा जाता है। इस प्रकार कूटस्थ आत्मा है—कूटस्थ आत्मा तत्त्व से एक ही हैं। कूटस्थ की विशेषता अन्तःकरण मालूम होती है, अन्तःकरण अंगुष्ठ प्रमाण का है इसलिये आ को भी उपासना करने वालों के लिये अंगुष्ठ प्रमाण का कहा अन्तःकरण माया के सतोगुण का कार्य है, इसलिये निर्मल वहाँ रहने वाले कूटस्थ का उसमें ही भास पड़ता है। कू वाला सामान्य चैतन्य, अन्तःकरण और उसमें पड़ा आभास, ये तीन मिल कर जीव कहा जाता है। जीव में जो वि चैतन्यता है, वह विकारी, उत्पत्ति नाश वाली और अज्ञान कार्य है। जीव की सब उपाधियाँ छोड़ कर जो सामान्य चैत शेष रहता है, वह ही कूटस्थ है, इसलिये उपाधि छोड़ कर का शुद्ध तत्त्व और आत्मा एक ही है। अन्तःकरण की वृत्ति जो विशेष चैतन्य है, वह मन कहलाता है, उसकी विशेषता वि कर जो शेषरहता है वह ही आत्मतत्त्व है। अंतःकरणकी अहं वृत्तियाँ शरीर में व्यापक हैं इसलिये शरीर चैतन्यता वाल कर चेष्टा करता है। शरीर की विशेष चैतन्यता और जन दोनों को त्याग कर जो तत्त्व शेष रहता है वह आत्म तत्त्व शरीर को अहंभाव से अपना कहते हैं किन्तु उसमें रहने शुद्धता-समानता आत्मा है। तात्पर्य यह है कि शरीर में, म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ीव में, और कूटस्थ में रहने वाला सामान्य चैतन्य एक ही है, ह ही आत्मा है और वह ही परब्रह्म है। इन चारों के नाम, प, उपाधि और भाव में अन्तर है, उपाधि रहित चारों एक ी हैं। इन चारों के विवेक से मोक्ष की प्राप्ति होती है, जो द्ध स्वरूप है।

जैसे सूर्य का प्रकाश सर्वत्र व्यापक है, उस प्रकाश को पर-ह्म रूप समझो। एक कांच पर पड़े हुए सामान्य प्रकाश को ांच पर पड़ने से विशेष प्रकाश समझो, विशेष प्रकाश टुकड़ा आ। उस विशेष प्रकाश में रहने वाली सामान्यता कूटस्थ है। ांच का टुकड़ा, उसमें पड़ा हुआ विशेष प्रकाश और विशेष में हने वाला सामान्य प्रकाश, ये तीनों मिल कर जीव कहलाता । कांच के टुकड़े में चार पहलू हैं, उनमें से एक पहलू मन है, समें जीव के विशेष प्रकाश की जो वृत्ति है उसमें भी सामान्य चैतन्य वही है जो जीव और कूटस्थ में है। इन चारों पहलुओं रहित आभास से प्रकाशित हो कर अप्रकाश वाला शरीर तन्य के समान चेष्टा करता है। अप्रकाश वाले स्थूल शरीर में विशेष चैतन्यता जो जीव मन आदिक की है, उसको प्रकाश करके रहने वाला सामान्य चैतन्य आत्मा है। इन चारों को जितनी विशेषता और अपेक्षा रहती है वह सब उपाधि रूप है और अज्ञान से है। उपाधि को त्याग कर आत्म तत्त्व एक, अखंडित, उत्पत्ति नाश रहित, विकार रहित, साक्षी और अधिष्ठान रूप जो तत्त्व है, वह ही आत्मा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोई भी अनात्म आत्म सत्ता से रहित नहीं है, आत्म स
छोड़ कर अनात्म को आत्मा मानना अज्ञान है। इस अज्ञान
देहाध्यास-देह ही आत्मा है यह भाव और जन्म, मरण, दुःख
होते हैं।

श्रुति की प्रतिज्ञा है कि आत्मा को जानने से परम पद
प्राप्ति होती है। शरीर को आत्मा मानने से दुःखों की अत्
निवृत्ति और परमपद की प्राप्ति नहीं होती इसलिये शरीर आ
नहीं है। मन विकार वाला-दूसरे की अपेक्षा से प्रकाशित ह
वाला है इसलिये आत्मा नहीं है। मन को जानने से परम पद
प्राप्ति नहीं होती। जीव भी विकार भावसंयुक्त और परिच्छिन्न
सुख, दुःखादि का भोक्ता है इसलिये वह भी आत्मा नहीं
जीव को आत्मा मानने से परम पद की प्राप्ति नहीं होती। कूट
का अर्थ माया में टिका हुआ शुद्ध सामान्य चैतन्य है, उस
समझना भी उपाधि रहित होता है। उपाधि रहित आत्मा
परब्रह्म से एकता को प्राप्त हो तब उस आत्म स्वरूप को जानने
मोक्ष होता है। मायिक सब विकारों को छोड़ कर शुद्धतत्त्व
स्थिति ही आत्म बोध है। जब दृढ़ अपरोक्ष आत्म बोध होता
तब द्वैत भ्रम की निवृत्ति और आत्म स्वरूप की प्राप्ति, स्थिति-म
होता है। जिसको प्रपंच के दुःखों से अत्यन्त निवृत्त होने
इच्छा हो, उसको इस प्रकार आत्मा और परब्रह्म का अ
जानना चाहिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंका:—जिस प्रकार का आत्मा तुमने वर्णन किया है, आत्मा के ऐसे होने में क्या प्रमाण है ? तुम्हारे कहने से तो वह जड़ से भी विशेष जड़ मालूम होता है। जड़ में न तो किसी प्रकार का ज्ञान होता है, न वह कोई कार्य कर सकता है, पाषाण के समान होता है ! जो आत्मा ऐसा ही है तो उसके जानने से क्या फल होगा ? जो स्वयं ही जड़ और क्रिया रहित है वह हमारा हित किस प्रकार करेगा ? ऐसा वर्णन करते हुये आप उसे चैतन्य किस प्रकार कहते हैं ? तुम्हारे कहे हुए आत्मा की चैतन्यता का अनुभव किस प्रकार हो ? मैं तो यह ही जानता हू कि ऐसे आत्मा को जानने से जड़ता के सिवाय और कुछ फल न होगा। हम जो शरीर को आत्मा मानते हैं, अथवा मन या जीव को आत्मा कहते हैं उससे तो फल होता भी है, क्योंकि उसमें जो चैतन्यता है, वह प्रत्यक्ष दीखती है, तब तुम्हारे कहे हुए आत्मा को आत्मा किस प्रकार मानें ? जैसे केले के वृक्ष में कुछ सार नहीं है इसी प्रकार तुम्हारा कहा हुआ आत्मा भी निःसार है।

समाधान:—मैंने जिस आत्मा को समझाया है, उसको किसी प्रमाण की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि जिनको अन्य प्रमाण की आवश्यकता होती है वह अपूर्ण होता है, जो पूर्ण चैतन्य स्वरूप और स्वयं आप है, उसे जानने को दूसरे प्रकाश-प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। मैं तुझसे पूछता हूँ कि जब तू रात्रि में अँधेरे में सो रहा हो, वहाँ किसी प्रकार का प्रकाश न हो, तब तू अपने को जानता है या नहीं ? तू है यह तू जानता ही है। यदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऐसा जानने को तुझे दीपक की आवश्यकता हो तो आत्मा को जानने के लिए भी अन्य प्रमाण की आवश्यकता हो। जब तू अपने को जानता है तब तू जानने वाला जड़ किस प्रकार हो सकता है। यदि तू 'मैं हूं' यह जानते हुए भी अपने को जड़ माने तो तेरी मरजी! जो ज्ञान और क्रिया रहित होता है, उसे जड़ कहना ठीक है। जो भिन्न ज्ञान रहित होकर ज्ञान स्वरूप हो उसे तू जड़ किस प्रकार कहेगा? ज्ञान दूसरे का होता है. जब आत्मा के सामने अन्य पदार्थ ज्ञान करने को न हो तब वह किसका ज्ञान करे? अपने जानने के लिए ज्ञान की आवश्यकता नहीं है परन्तु भ्रान्ति से उसी ज्ञान स्वरूप से हर एक ज्ञान वाला होता है उसे जड़ किस प्रकार कह सकते हैं? जिस समुद्र में से सब नदियाँ जल वाली होती हैं वह समुद्र जल रहित नहीं कहलाता इसी प्रकार जिस ज्ञान स्वरूप आत्मा में से सब को ज्ञान होता है, उसको जड़ कैसे कहें? आत्मा पाषाण समान नहीं है क्योंकि पाषाण परिच्छिन्न है, और पंचभूतों में से विशेष पृथ्वी तत्त्व का कार्य है, आत्मा परिच्छिन्न, या किसी का कार्य नहीं है जो सब स्थान पर भरा हुआ और सबको चेष्टा करने वाला हो वह स्वयं चेष्टा रहित होने पर भी जड़ नहीं है। आत्मस्थिति में अद्वैतता है, आत्मा के सिवाय अन्य नहीं, तब अन्य न होने से चेष्टा कैसे और किसमें करे? चेष्टा अवयवी से होती है, आत्मा एकरस अवयव रहित होने से चेष्टा रहित है। उसको जानने से तू किस प्रकार का फल चाहता है? उसको जानने से सभी प्रकार के फलों की प्राप्ति होती है। प्रापंचिक जितने फल होते हैं वे भ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

उसे न जानते हुए उसी से होते हैं तो उसके जानने से कितना विशेष फल होगा ! आत्मा को जानने से सब प्रकार के दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है, यदि तू दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति न चाहता हो तो तेरी खुशी !!! निवृत्ति के वाद जों अलौकिक आनन्द आनन्द स्वरूप है, वह तुझ जैसे के जानने में नहीं आ सकता। आत्म स्वरूप वाले होकर ही उस आनन्दस्वरूप का अनुभव होता है। जगत के दुःखों की बाहुल्यता वाला जो किंचित् सुखाभास है उसेछोड़ना न चाहे, उसकेलिए आत्मानन्द हैही नहीं आत्मा जड़ चेतन्य से विलक्षण होने से तू उसे चैतन्य समझताहै इस प्रकार का चैतन्य आत्मा नहीं है किन्तु सबको सत्ता स्फूर्ति देने वाला चैतन्य है। मायिक चैतन्य उस सामान्य का विशेष चैतन्य है, विशेषता, उपाधि जनित होनेसे विकारी और उत्पत्ति नाशवाली है, ऐसी चैतन्यता वाला आत्मा नहीं है। आत्मा के जानने का फल अखंडित होता है, तू ऐश्वर्य चाहता है, ऐश्वर्य को फल समझता है आत्मा के जानने वालों को सब ऐश्वर्य प्राप्त हों, इस प्रकार का महान् फल होता है। तेरा कहना तो इस प्रकार है:—

एक भिखमंगी को जो ग्राम २ में भटकती और टुकड़े मांग मांग कर खाती थी, एक राजा ने देखा। राजा ने उससे कहा। "चल, मेरे साथ, मैं तुझे अपनी रानी बनाऊँगा !" भिखमंगी बोली "बड़ी खुशी की बात है ! मैं रानी बनने को तैयार हूँ परन्तु मैं भिखमंगी हूं इसका नाश हो जायगा ! यदि मेरा भिखमंगी नाम और काम बना रहे तो मैं रानी बन सकती हूँ।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

तू जीव रूप भिखमंगा है, मैं तुझे आत्मस्वरूप राजा बनाना चाहता हूं, तू अपना जीव भाव और दुःखादिक की गठरियां कहीं चली न जाँय, इसका सोच करता है। जैसे भिखमंगी की अपेक्षा रानी को अनंत फल होता है इसी प्रकार आत्मभाव से अनन्त फल होता है। यदि तू कहे कि मैं प्रत्यक्ष देखलूँ, तब उसकी चाह होना संभव है तो वह ठीक नहीं है, क्योंकि जब तक तुझे उसे देखने की चाह रहेगी तबतक तू उसे देख न सकेगा और जब देख लेगा तब देखने-भोगने की चाह नहीं होगी। मायिक पदार्थों का प्रत्यक्ष जैसी दृष्टि होती है, वैसा ही होता है। आत्मा से सब प्रत्यक्ष होते हैं, आत्मा को प्रत्यक्ष करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। आत्मा का अनुभव आत्मा से ही होता है। जीव की शक्ति आत्मा के जानने को नहीं है।

जिसको तू सार समझ रहा है, ऐसा सब संसार ही असार है। संसार से विलक्षण जो सार है, वह तेरी दृष्टि में असार प्रतीत होता है, यह तेरे अज्ञान का दोष है, आत्मा का नहीं है। संसार विषय रूप विष के टुकड़ों वाला है उसका सूक्ष्म से सूक्ष्म कण भी विष रहित नहीं है। आत्मा अमृत रूप है, अखंड है, और वास्तविक सुख का सार रूप है। जब तक तेरी मायिक दृष्टि न हटेगी तब तक तू उसे सार रूप नहीं समझ सकता। घुग्घू को यदि सूर्य न दीखे तो सूर्य का दोष नहीं है।

जो तुझे प्रपंच में दुःख मालूम होता है तो ज्ञान के अधिकारी के लक्षणों का आचरण कर और श्रद्धा युक्त सद्गुरु के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शरण में जाकर उससे उपदेश ग्रहण कर, तब आत्म भाव की स्थिति होगी।

एक अगम्य पुरुष था। उसका शरीर बहुत लम्बा चौड़ा था। यदि सारे ब्रह्मांड को नापा जाय तो उसके शरीर का किंचन मात्रा हो। उसमें एक तरंग उठी। उठने के साथ ही "मैं तरंग रूप हूँ" वह ऐसा समझने लगा! तरंग अणु रूप थी इसलिये वह अपने को अणु मानने लगा, परंतु उसकी आकृति कुछ न थी। जब वह अणु के भाव वाला हुआ तब "मैं सब दिशाओं में घूम रहा हूँ" ऐसा भाव होने लगा। गमनागमन में उसे किसी प्रकार की रोक टोक न थी! वह अणु मानने से अणु रूप नहीं हुआ था। घूमते घूमते उसे संकल्प हुआ कि एक अच्छा सा स्थान हो। तुरन्त ही उसे एक स्थान दिखाई दिया। अपनी इच्छानुसार स्थान देख कर उसने अपने को मैं समझा, जहाँ जहाँ परछाईं घूमे वहाँ वहाँ "मैं घूमता हूँ" ऐसा मानने लगा। प्रथम जो उसने अपने को अणु माना था अब उसी को परछाईं रूप से स्थूल होने का निश्चिय किया। निश्चय करते ही वह अल्प हो गया और अपने को तुच्छ समझने लगा। "जिस स्थान में मैं घूम रहा हूँ, वह स्थान किसी महान् ईश्वर का बनाया हुआ है, मैं भी उसी का अंश हूं, उसका दास हूँ, वह मेरा स्वामी है, मैं उसका सेवक हूँ, मेरा सब कार्य उसी की कृपा से चलता है" अब वह ऐसा समझने लगा। उस स्थान में एक कमरा था, कमरे में कांच लगा था, कांच में एक परछाईं बहुत उत्तम प्रकार से पड़ कर चमकने लगी, उस कांच के चारों तरफ महल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

थे और प्रकाश की झांई महल में होकर कांच की चौखट पर पड़ती थी। चौखट उत्तम होने पर भी नव छिद्र वाली थी, छिद्रों में विलक्षण प्रकार के गुण थे और वे कमरे के बाहर प्रकाश करते थे। जिस प्रकार चुम्बक के सामने लोहा चेष्टा करने लगता है, इसी प्रकार परछाईं होने से सब छिद्र चेष्टा करते थे। जैसे किसी इञ्जन के चलने से, उसके साथ जुड़े हुए जड़ यंत्र भिन्न भिन्न प्रकार की चेष्टा करने लगते हैं इसी प्रकार वे छिद्र ज्ञान रूप और कर्म रूप चेष्टा करते थे। अब तो अगम्य पुरुष ऐसा मानने लगा कि उन चेष्टाओं का मैं कर्त्ता हूं, मैं भोक्ता हूं। ऐसा मानने से और कामनाओं और राग द्वेष से सुखी दुःखी होने लगा, अनेक प्रकार की कामनायें करने लगा। जो कभी पूर्णकाम था अब कमनाओं का दास बन गया। कामनाओं की पूर्ति न होने से दुःखी होने लगा। यदि एक कामना पूर्ण हो जाय तो अनेक प्रकार की और कामनायें करे और दुःख पावे। इस प्रकार उसकी सम्पूर्ण शान्ति चली गई। महल पुराने होकर जब टूट जायँ तब वह समझे कि मैं मर गया। दूसरा कांच देखते ही मानने लगे कि मेरा जन्म हुआ। इस प्रकार जन्म मरण के चक्र में वह अब तक दुःख भोग रहा है। वास्तविक में उसे दुःख कुछ भी नहीं है, उसने अपने को दूसरा समझ लिया है इसलिये वह दुःख का अनुभवकरता है। जब कोई विवेकी पुरुष उसे उसकी पूर्व स्मृति–स्वरूप समझा दे और वह इस प्रकार का निश्चय करके साक्षात्कार करे तो जगत् के दुःखों से निवृत्त हो जाय।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अगम्य पुरुष आत्मा है, अज्ञान-अविवेक से दुःखी है। शुद्ध अणु कूटस्थ, परछाईं वाला कांच जीव, कांच के चार महल अन्तःकरण, कांच सूक्ष्म शरीर, नव छिद्र इन्द्रियाँ और कमरा स्थूल शरीर है। इन सब में आत्मा का सामान्य प्रकाश है। वह ही अखंडित-व्यापक आत्मा है, वह ही परब्रह्म है।

एक मनुष्य के प्रथम स्त्री से दो बच्चे थे, एक लड़की सात वर्ष की और लड़का पाँच वर्ष का था। लड़की का नाम बुद्धा और लड़के का नाम खुदीराम था। पश्चात् मनुष्य ने दूसरी स्त्री करली। दूसरी स्त्री, छोड़े हुए बच्चों पर ईर्ष्या के मारे जलने लगी और किसी प्रकार उन्हें निकाल देना और नाश करना चाहने लगी। वह एक भारी मायावी स्त्री थी, पुरुष के मना करने पर भी एक बार रात्रि के समय उन दोनों बच्चों को जंगल में ले गई और वहाँ छोड़कर चली आई। बच्चों को न देखकर, उनके पिता को बहुत रंज हुआ परन्तु स्त्री वश वह कुछ कर न सका। उस मायावी अपर माता ने जंगल में एक महान् महल बनाया और उसमें बगीचा भी लगाया। प्रभात उठकर खुदीराम ने एक बाग देखा, उसके वृक्षों पर अनेक प्रकार के फल लगे हुए थे, कई नीचे भी गिर गये थे। उनमें से दोनों भाई बहिनों ने इच्छानुसार फल खाये और पास ही एक बावड़ी थी, उसका जल पीकर दोनों तृप्त हो गये। वहाँ से आगे चलकर एक महल दिखाई दिया, उसमें अनेक प्रकार की मिठाइयाँ भरी थीं। ऐसा देख दोनों बच्चों ने निश्चय किया कि हम इस महल में रहा करेंगे और मिठाई और फल खाया करेंगे। उस महल में एक राक्षसी थी वह नेत्रों से ठीक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

नहीं देख सकती थी परन्तु गन्ध से मनुष्य को पकड़ सकती थी, जो भूला भटका मनुष्य जंगल में आ जाता था, उसको पकड़ कर ले आती थी और उत्तम प्रकार के भोजन दे हृष्ट पुष्ट बनाकर खा जाया करती थी। वह बूढ़ी राक्षसी गंध के सहारे से बच्चों के पास आई और पूछने लगी, "बच्चो! तुम कौन हो? और यहाँ कैसे आ गये हो?" खुदीराम बहिन से छोटा था परन्तु चालाक होने से उसने कहा–अपर माता ने हमें बाहर निकाल दिया है।" बूढ़ी बोली "तो अब तुमको घातकी माता के पास जाने की आवश्यकता नहीं है, इस बगीचे में खुशी से रहा करो, अनेक प्रकार के फल और मिठाई खाकर आनन्द करो।" राक्षसी के ऐसे वचन सुनकर बच्चे प्रसन्न हुए और वहां दिन व्यतीत करने लगे।

कितनेक दिन के बाद जहां भाई बहिन सो रहे थे, वहां डोकरी आई और उन्हें सोता जान कर, हाथ फेर कर कहने लगी "अभी बच्चे ही हैं बड़े नहीं हुए हैं, तो भी थोड़े दिन में मैं उनमें से एक को मार कर अपनी तृप्ति करूँगी!" खुदीराम उस समय जाग रहा था, उसने डोकरी के वचन सुन लिये परन्तु वह कर क्या सकता था? सबेरा होते ही डोकरी खुदीराम को बाँध कर महल के एक भाग में ले गई और कहने लगी "बच्चे! बाँध कर खिलाने से तू जल्दी बड़ा हो जायगा।" जब बहिन जागी तब भाई को न देख कर रुदन करने लगी और उसने अहार और निद्रा का त्याग कर दिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बांध रखने के थोड़े दिन बाद डोकरी खुदीराम को देखने गई और बोली "हे हतभागी लड़के ! तू मुझे अपना हाथ दिखा, तू कितना मोटा है ?" खुदीराम ने एक पास पड़ी हुई लकड़ी डोकरी के हाथ में देदी। उसे हाथ में लेते ही डोकरी का मिजाज बिगड़ गया और वह गर्जना करके बोली "तू चाहे पतला हो, चाहे मोटा, मैं इसकी परवाह नहीं करूँगी ! मैं तुझे मार कर खा जाऊंगी ?" बुद्धा इतने में आगई और डोकरी के पैर छूकर कहने लगी "माई ! मैं तुझसे विनती करती हूं, तू भाई से प्रथम मुझको मार डाल !" डोकरी ने कुछ भी न सुना, प्रभात मेंउसने आग सुलगायी, एक भारी कढ़ाई चूल्हे पर धरी और उसमें तेल डाला। तेल उबलने लगा, बुद्धा और खुदीराम पास बैठे हुए रो रहे थे, परन्तु डोकरी का ध्यान उनकी तरफ न था। उसने बुद्धा से कहा "तेल तैयार हुआ या नहीं ? मैं कोमल बच्चे को भली प्रकार भून कर खाना चाहती हूं।" बुद्धा ने कहा "माई ! मुझे क्या मालूम ? तेल हुआ या नहीं !" डोकरी नेबुद्धा को बहुतसी गालियाँ दीं और वह लपक कर कढ़ाई की तरफ चली, बुद्धा ने पीछे से एक ऐसा धक्का मारा कि डोकरी कढ़ाई मैं गिर गई और भुन गई।

दोनों भाई बहिन महल में सब स्थान ढूंढने लगे' जो कुछ जवाहरात हाथ लगे दोनों ने ले लिए। डोकरी के मरते ही बगीचा अदृश्य होगया। बच्चे धन की मदद से अपने पिता के पास पहुंच गये और सुख पूर्वक रहने लगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

खुदीराम आत्मा का आभास था, बुद्धा शुद्ध बुद्धि थी, अपर माता प्रवृत्ति रूप वासना थी, जिसने दोनों को निकाल दिया था। प्रवृत्ति रूप वासना ही मायावी डोकरी थी। डोकरी के मरते ही अपर माता मर गई। बगीची और महल संसार था, चिताभास और बुद्धि उसे देखकर प्रसन्न हुए थे। विषय बगीचे के फल थे जब बुद्धा की चातुरी से प्रवृत्ति रूप वासना का नाश हुआ तब चिदाभास और बुद्धा अपने पिता आत्मा से मिलकर सुखी हुए प्रपंच से मोक्ष को प्राप्त हुए।

आत्मा के वे ही लक्षण हैं जो लक्षण शास्त्रों में परमब्रह्म के कहे हैं। आत्मभाव के हटने से-स्वस्वरूप के अज्ञान से, प्रवृत्ति-माया के बाग में विहार करने से अनेक प्रकार के कष्ट न होते हुए भी आत्मा में जान पड़ते हैं। जब आत्मा के सच्चे स्वरूप में स्थिति होती है तब अनादि माया रूप डोकरी का नाश होता है और तब ही परमानन्द स्वरूप में स्थिति होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माया

बहुत से मनुष्य इस प्रकार कहते हुए सुने जाते हैं:—"जगत् जाल है, सँसार माया का प्रपंच है, हम माया जाल में फंसे हुए हैं; उस में से निकल नहीं सकते, हम गृहस्थ हैं भला हम से क्या बन सकता है ? माया ठगनी है, नटनी है, हमको मोहित करके अपने वश में कर लेती है। कोई गृहस्थ तो माया से छूट नहीं सकता; हां ! कोई महान् शूर वीर साधु संत छूट जाता हो तो कह नहीं सकते।" इस प्रकार कहने वाले माया का यथार्थ स्वरूप नहीं जानते। माया क्या है ? किस प्रकार फैलती है ? किसकी है ? यदि इतना वे जान जाँय तो अपने को इतना असमर्थ समझने का कोई कारण नहीं है।

विचार करना चाहिये कि इन लोगों के वचनों में सत्यता कहाँ तक है। जो कुछ दृष्टि में आता है, स्थूल रूप से है अथवा पृथ्वी के ऊपर है, उसको ही वे लोग संसार और माया कहते हैं, उसके सिवाय संसार या माया वे नहीं जानते। जिसको जगत्, संसार या सृष्टि कहते हैं वह वस्तुतः माया नहीं है, वह तो दृश्य पदार्थ है, जड़ है। जड़ पदार्थ बलात्कार से किसी को फंसा नहीं सकता। घर, धन, वस्त्राभूषण आदिक सुन्दर पदार्थ क्या मनुष्यों को फंसा सकते हैं ? क्या उन्होंने जाल बिछाया है ? नहीं, वे नहीं फंसा सकते। जब से जगत् का आरम्भ समझा जाय तब से आज तक किसी पदार्थ ने किसी को नहीं फंसाया;

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

तब फंसाने वाला कौन है ? यदि यह पूछो तो सुनोः—फंसाने वाला फंसने वाले का भाव ही है। अपने भाव से वह आप ही फंस जाता है और उसके दोष को जगत् और जगत् के पदार्थों पर आरोप करता है मानों इस प्रकार सूचना देता हो कि मैं स्वयं नहीं फंसता दूसरा बलात्कार से मुझे फंसा देता है। फंसने वाले में भरा हुआ अज्ञान माया है। उसका भाव माया की वृत्तियां हैं। वे ही वृत्तियाँ विस्तार को प्राप्त होती हैं, वही माया जाल है।

लोग जो यह कहते हैं कि हम निकलना चाहते हैं उनका यह कहना झूंठ मूठ ही है। जो फंसा हुआ है अथवा फंसता जा रहा है वह पूर्ण भाव से निकलना नहीं चाहता। यदि वह सच्चे भाव से फंसावट का स्वरूप समझ कर निकलना चाहे तो निकलने में देर न लगे। जब प्रपंच में दुःख मालूम होता है तब मनुष्य दुःख से छूटने के लिये प्रपंच से निकलने की इच्छा करता है, उस समय दुःख का दृश्य उसके सामने होता है। जहाँ दुःख का दृश्य थोड़ा हटा कि प्रपंच से निकलने की इच्छा भी गई।

एक और आश्चर्य है कि जब निकलना चाहते हैं तब भी कहते यही हैं कि निकल नहीं सकते। निकलने की किंचित् इच्छा के सामने आँतर में न निकलने का भाव दृढ़ होता है। ऊपर से ही दुःख का कारण कहते हैं, स्वरूप समझते नहीं, भला ऐसे पुरुष प्रपंच से कैसे निकल सकते हैं। जैसे कोई निर्धन शेख चिल्ली इच्छा करे कि मुझे लाख रुपये मिल जांय और आंतर में यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निश्चय हो कि मेरी इच्छा पूर्ण होनी असम्भव है इसी प्रकार अविचारी पुरुषों को प्रपंच से छूटना असम्भव है। "लाख रुपये एक दम मिल जांय, भला मेरा ऐसा प्रारब्ध कहां है?" जैसे यह दुर्बल भाव शेखचिल्ली का मनोरथ फलीभूत नहीं होने देता इसी प्रकार अविचारी का दुर्बल भाव उसे प्रपंच से नहीं छूटने देता ।

अनेक प्रपंच के भाव पकड़े हुए को गृहस्थी कहते हैं, घर में टिका हुआ गृहस्थी कहलाता है, ग्रसित-घिरे हुए का नाम गृहस्थी है, इस प्रकार के गृहस्थी तुम अपने आप बने हो अथवा किसी ने बलात्कार से बना दिया ? बलात्कार से कोई किसी को गृहस्थी बना नहीं सकता । यदि कोई कहे कि माता पिता नें बनाया है तो यह भी कहना ठीक नहीं है । तुम्हारा भाव गृहस्थी बनने का था, इसलिये सब संयोग प्राप्त होगये । यदि तुम निश्चय में पक्के होते तो माता पिता आदिक तो क्या, ब्रह्मा भी तुम्हें गृहस्थी नहीं बना सक्ता । जिसे तुमने गृहस्थी समझा है वह गृहस्थी नहीं है । तुम्हारी समझी हुई गृहस्थी तुमको दुःख भी नहीं देती । बाहर की गृहस्थी वास्तविक गृहस्थी नहीं है, गृहस्थी तुम्हारे अन्तःकरण में भरी हुई है, वह ही तुम्हें दुःख दे रही है । वह गृहस्थी तुम्हारी समझ में नहीं आती, इसलिये बाहर के स्त्री, पुत्र, बहिन, माता, पिता और कुटुम्बियों को गृहस्थी समझते हो ।

घर में टिका हुआ गृहस्थी इस प्रकार है:—चूना, पत्थर, मिट्टी का बना हुआ घर घर नहीं है, ऐसे घर तो कई बदल जाते हैं ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

कई मनुष्य घर न होने से किराये के घर में रहते हैं तो क्या वे गृहस्थी हुए ? दुःख देने वाला घर जिसमें तुम रहते हो वह आन्तर वासना का है। उसके भोग स्वरूप बाहर के स्थूल पदार्थ हैं। वह घर अज्ञान के गारे और कल्पना की ईंटों का बना हुआ है। जहाँ तक इन दोनों का नाश न किया जायगा वहाँ तक तुम्हें दुःख देने वाला घर नहीं टूट सकता।

तुम कहते हो कि हम घिरे हुए गृहस्थ हैं तो हम पूछते हैं कि किस से घिरे हुए हो ? यदि स्त्री, पुत्र, धन, धाम, शरीर अथवा प्रतिष्ठा से घिरे हुए हो तो यह कहना झूँठ है। उन्होंने तुमको नहीं पकड़ रक्खा। यदि तुम घिर गये हो तो अपनी कामनाओं से घिर गये हो इसलिये घर में टिके हो। स्त्री, धन, धाम प्रतिष्ठा आदिक सब कुछ विद्यमान हो परन्तु यदि तुम उनकी कामनाओं से रहित हो तो घिरे हुए नहीं हो–गृहस्थ नहीं हो। 'हमसे कुछ नहीं हो सकता,' यह भाव तुमको गिराने वाला है, इन वचनों का भाव माया जाल को तोड़ना नहीं चाहता, बीमार से बीमार मनुष्य भी जब जान लेता है कि मकान जल रहा है तब वह क्या 'मैं नहीं जा सकता' ऐसा कह कर वहीं जल मर जाता है ? ऐसा कभी नहीं होता वह अवश्य भागता है, चाहे अति अशक्त होने से बीच में भलेही जल जाय परन्तु भागे बिना नहीं रह सकता है 'हम से क्या हो सकता है' ऐसे कहने वालों को प्रपंच, आग के समान जलाने वाला मालूम नहीं होता इसीलिये ठंडे पेट से कहते हैं 'हम से क्या हो सक्ता है ?' कोई पांच पचास मन बोझ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उठाना नहीं है, कोई लाखों मन मिट्टी खोदनी नहीं है, युद्ध में जाकर सैकड़ों मनुष्यों के साथ अस्त्र शस्त्र से लड़ना नहीं है, कई महीने तक समुद्र में मुसाफिरी नहीं करनी है, माया तो सहज में हट सकती है, पैसे टके का भी काम नहीं। माया तुम्हारे अज्ञान का भाव है, तुम्हारे वश में है, तुम्हारी मिलकियत है तब उसके हटाने में विलम्ब और परिश्रम ही क्या है ? तुम अपनी समझी हुई माया को ठगनी नर्तकी बताते हो, वह ऐसी नहीं है। सच तो यह है कि तुम माया से नहीं ठगे गये हो, अपने भाव से आप ही ठगे गये हो। सच्ची माया तो तुम्हारा आंतरिक अज्ञान अविद्या है, जगत् का दृश्य भाव माया नटनी नहीं है। जब तुम आंतर अविद्या-वासना नटनी को पकड़ ले चले, तब तुम्हारा बल पाकर वासना रूप नटनी ने तुमको मूंड़ डाला, अपना चेला बना डाला, अपनी जमाअत में मिला लिया, अपने वस्त्र पहना दिये। इस प्रकार तुमसे घर २ भीख मंगवाने लगी और आप खाने लगी। जैसे कोई अपने पैर पर कुल्हाड़ा मारकर पैर कट जाने पर कुल्हाड़े को दोष दे इसी प्रकार तुम्हारा कहना है।

'कोई गृहस्थ माया जाल से नहीं बच सकता,' यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है। हम कहते हैं, तुम गृहस्थ बनते ही क्यों हो ? तुम गृहस्थ हो नहीं। गृहस्थ न होकर भी अपने को गृहस्थ मान कर और वैसा ही आचार करके तुम माया के जाल से नहीं बच सकते। मन की मानता से ही गृहस्थ बन बैठे हो। यदि तीव्रता हो, माया के प्रभाव से दुःख प्रतीत हो, तो गृहस्थियों के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

पहने हुए मानसिक वस्त्रों को उतार कर फेंक दो। फिर दे
गृहस्थी तुम्हारा क्या करसकती है ? वहतो मृतक है, तुमने जा
देकर सजीवन कर रक्खी है, फिर कहते हो कि महा शूरवी
माया से बच सकता है। हम कहते हैं उसमें शूरवीरपने का को
काम नहीं है, जो मन का स्वरूप समझता है उसे मन को सम
झाना एक छोटे बालक के खेल के समान है, न समझने
कठिन से भी कठिन है। यदि कठिनता से देखोगे तो राई पर्व
हो जायगी।

माया जादू के तमाशे को कहते हैं ! जादू का तमाशा त
तक दीखता है जबतक जादू का असर रहता है, जिस प्रकार जा
का असर जाते ही जादू के बने हुए सैकड़ों कोश के पहाड़ क्ष
भर में लोप हो जाते हैं इसी प्रकार अज्ञान के भाव रूप जादू
असर जाते ही कठिन से कठिन माया भी एक क्षण में अद
हो जाती है।

जो वस्तु वस्तुतः न हो और दूसरे के सहारे से कुछ कु
दीखती हो वह माया है। माया भूल को कहते हैं, अज्ञान औ
अविद्या भी उसी का नाम है, भ्रम, काल्पनिक, मनसृष्टि ये स
उसी के नाम हैं। माया कोई वस्तु नहीं है, अवस्तु दृश्य को
माया कहते हैं। बहुत से प्रश्न किया करते हैं "माया कहां
उत्पन्न हुई ?" जब माया वस्तु ही नहीं तब उत्पत्ति कैसी ? य
तो भूल है, भूल करने वाला जब भूल करता है उससे प्रथम
भूल होती है इसी प्रकार माया अवस्तु स्वरूप होने से, देखने
प्रथम की अनादि है, कल्पना की है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जगत् चक्राकार है, इसलिये माया भी चक्राकार है। जैसे चक्र का आदि अंत नहीं होता इसी प्रकार माया का आदि अंत माया के भाव में पड़े हुओं के लिये नहीं है। जो अपना स्वरूप माया के चक्र से बाहर निश्चय कर लेते हैं उनके लिये चक्र नहीं रहता। पूर्ण रूप से भूल निकल जाने पर भूल के प्रभाव का असर फिर नहीं होता। अज्ञान निकल जाने के पश्चात् फिर होगा ऐसी शंका मंद बुद्धि वालों को होती है। जब एक बार कारण सहित अज्ञान का समूल नाश हो गया तब वह फिर किस प्रकार हो सकता है ? यह समझना सूक्ष्म संस्कारिक बुद्धि का विषय है इसलिये मंद बुद्धि वालों की समझ में आना कठिन है। वस्तु का आना जाना हो सकता है, अवस्तु का आना जाना क्या ? माया का धोखा निवृत्त होने और स्वरूप जानने के पश्चात् फिर धोखा होना सम्भव ही नहीं है,यह शास्त्र और अनुभव से सिद्धहै।

एक राजा तमाशा देखने का बड़ा प्रेमी था। तमाशा करने वाले उसका नाम सुन कर देश देशान्तर से आया करते थे और अपना तमाशा दिखा कर उसे प्रसन्न कर के पारितोषिक प्राप्त करते थे। एक समय एक जादूगर जो प्रथम भी राजा को तमाशा दिखला चुका था दूसरी बार तमाशा दिखाने आया। राजा को उसका खेल बहुत पसन्द था। तमाशा देखने का स्थान और समय नियत हुआ। 'यथा राजा तथा प्रजा' इस न्याय के अनुसार वहां की प्रजा भी तमाशा देखने की प्रेमी हो गई थी। शहर भर में तमाशा देखने जाने की हलचल मच गई। तमाशे के लिये एक विशाल स्थान नियत किया गया। वह स्थान इतना बड़ा था कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

शहर के आधे मनुष्य उस में बैठ कर तमाशा देख सकते थे नियत समय पर स्थान तमाशा देखने वालों से भर गया आने जाने के मार्ग के सिवाय और जगह खाली न रही। चारों तरफ तमाशा देखने वाले बैठ गये और जादूगर ने मध्य में बैठ कर तमाशा आरम्भ किया। कई वस्तु अनहोनी उत्पन्न की, कई बदल डालीं, नवीन २ वस्तु निकाल २ कर दिखाने लगा, राजा और प्रजा तमाशा देख २ कर प्रसन्न होते थे। जादूगर कई प्रकार से तमाशा करता था, हाथ की चालाकी में उस्ताद था, प्रसंग पर देखने वालों की दृष्टि भी बंद कर देता था। उसने एक टोकरी भर गुलाब के फूल निकाले, चम्पा, चमेली, मोगरा आदिक पुष्प भी निकाले, अनेक प्रकार के अतर निकाल कर सुगन्ध फैला दी आम, अमरूद, नारंगी, अनन्नास आदिक फल निकाले, विदेशी अनऋतु की अनेक वस्तुयें दिखलाईं, मुख में से नारियल निकाले, रोली का मुख से निकाल २ कर ढेर कर दिया। इसके पश्चात् मिठाइयाँ निकालना आरंभ किया। अनेक प्रकार की मिठाइयां निकालीं, अनेक प्रकार की मिठाइयों से भरे हुए थालके थाल आने लगे, जादूगरके भाव के साथ सब एकमेक हो गये। सब देखने वाले जादूगर की कठपुतलियों के समान जो जादूगर कहे वह ही करने लगे, जो जादूगर कहेवह ही सब देखें। एक थाल गुलाबजामुनों का मँगाया गया। जादूगरने गुलाबजामुन राजा और उनके कई मनुष्यों को बाँट कर कहा "हुजूर! खाइये! मैं भी खाता हूँ। ऐसा कह कर जादूगर खानेकी चेष्टा करने लगा तब राजा और उसके साथी भी गुलाबजामुन खाने लगे। जिन को न मिलीं वे भी इच्छा करने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगे, कि हमको मिलतीं तो हम भी खाते। इस प्रकार खाने वाले गुलाबजामुन खा रहे थे और स्वाद ले ले कर आनंद मना रहे थे। इतने ही में एक आश्चर्यजनक बनाव हुआ :—एक साधु कहीं बाहर से आकर किवाड़ों के पास खड़ा होकर तमाशा देख कहने लगा "अरे बुद्धि भ्रष्टो, क्या खा रहे हो ? गधे की लीद खा कर आनन्द मान रहे हो।" इतना कह कर वह तो चला गया और जिनके पास गुलाबजामुन बच रहीं थी वे अपने हाथों में गधे की लीद देख कर फेंकने लगे। जिनके मुख में गुलाबजामुन थीं उनको गधे की लीद का स्वाद आने से वे थू थू करने लगे। दूसरों पर थूक की छींटें पड़ने से लोगों में घबराहट मच गई। कई मनुष्य जा कर जादूगर को पकड़ कर मारने लगे। राजा की आज्ञा से मारना बन्द कर दिया गया और जादूगर कैद कर लिया गया। राजा सहित सब भ्रष्ट हो गये थे, दूसरे दिन सब प्रायश्चित करके शुद्ध हुए।

तीसरे दिन राजा ने जादूगर को बुलाकर डाट दे कर कहा "अरे भ्रष्ट ! तू तो सचमुच भ्रष्ट है ही ! तू ने जान बूझ कर हमको क्यों भ्रष्ट किया ?" जादूगर ने हाथ जोड़ कर कहा "महाराज ! इसमें मेरा क्या दोष है ? हरेक जानता है कि मैं जादूगर हूँ ! मेरी वस्तुयें सच्ची नहीं होतीं, मेरा तो यह ही धंधा है ! आपने गुलाबजामुन खाई क्यों ?" राजा ने कहा मूर्ख ! तू ने भी सब को बाँट कर खाई थीं ! तुझे खाते देख कर हमने भी खा लीं।" जादूगर ने कहा "महाराज ! खाना खिलाना सब ही मेरा तमाशा था। तमाशे में ऐसा ही हुआ करता है। आप ही विचारिये यदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

में सच्चे गुलाबजामुन बना लिया करता और मिठाइयों के थाल मंगवा लिया करता तो घर बैठे ही आनन्द न करता, यहाँ तमाशा दिखाने क्यों आता ?" राजा ने कहा "तू गधे को लीद कहाँ से लाया था ?" जादूगर ने कहा "महाराज ! चाहे मारो चाहे छोड़ो, सच तो यह है कि जब मैं तमाशा करने आ रहा था, मुझे रास्ते में पड़ी हुई लीद मिली, मैंने वह उठा कर कपड़े में बाँध ली। जब तमाशे के स्थान पर आया तो मुझे लीद लाते किसी ने न देखा। बिना किसी आधार के कोई वस्तु नहीं दिखलाई जा सकती, इसलिये गधे की लीद में मैंने गुलाबजामुन के भाव की कल्पना का जादू किया, लोग गुलाबजामुन देखने लगे और खाने लगे। मेरे भाव के अनुसार सब को स्वाद भी गुलाबजामुन का ही आया। सब आनन्द मनाने लगे। एक जोगटे ने आ कर मेरा सब तमाशा भंग कर दिया।" राजा ने कहा "तमाशा भंग करने का क्या कारण था ?" जादूगर ने कहा "महाराज ! मेरी विद्या के प्रभाव से सब सभा मेरे भाव वाली हो गई थी। मैंने सबकी दृष्टि बाँध दी थी, जोगटे की दृष्टि बंधी न थी, वह मेरी दृष्टि में दबा न था, उसने यथार्थ वस्तु जान ली। जब वह पुकार कर कहने लगा तब सबको मेरी तरफ से अश्रद्धा हो गई, मेरी बंधी हुई दृष्टि हट गई, तमाशा बिगड़ गया !!!"

इस दृष्टांत से, माया क्या है किस प्रकार दीखती है और कैसा अनर्थ करती है यह प्रत्यक्ष हो गया होगा ! जिस प्रकार अशुध पदार्थों में आनन्द दिखलाने वाला जादू था इसी प्रकार अशुद्ध विषयों में आनन्द दिखलाने वाली माया है !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जादूगर ने लोगों को बलात्कार से अपनी माया में नहीं बांधा था, जब वे तमाशा देखने की इच्छा करके गये तब उनकी इच्छा के कारण से ही जादूगर उनको फँसाने योग्य हुआ। इसी प्रकार जब हम प्रथम माया के भाव वाले होते हैं तभी वह हमें फंसाने के योग्य होती है। साधु को तमाशा देखने की इच्छा न थी, वह तमाशा देखने नहीं आया था, इतने मनुष्य क्या कर रहे हैं। यह ही उसने देखा था, इसी कारण वह जादूगर की दृष्टि में नहीं दबा। जब उसने अपना तीव्र भाव चिल्ला कर प्रकट किया तब जादूगर की माया के पटल जो सब की दृष्टि पर चढ़े हुये थे। उतर गये। इसी प्रकार जब सद्गुरु की तीव्र पुकार से मनुष्य जाग्रत हो जाता है तब अज्ञान और अज्ञान के कार्य सब बिगड़ जाते हैं। उसका प्रभाव कुछ भी नहीं रहता। जैसे ऊपर लगाई हुई गिलट–झूठी चमक अग्नि पा कर नहीं टिक सकती इसी प्रकार ज्ञान रूपी अग्नि लगते ही झूठी माया नहीं रहती। मन रूप जादूगर था, उसने जब तमाशा दिखलाने की इच्छा की तब आत्मा रूप राजा तमाशा देखने को दौड़ा। मन रूप जादूगर ने उसे अपने भाव में मिला लिया और भ्रष्ट किया। माया करके ही आत्मा का बोध नहीं होता। आत्मा नित्य है, माया अनित्य है–इसके विवेक से यानी पञ्चकोश विवेक से आत्मा का बोध होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

स्थूल शरीर

सन्त ने कहा:—सनातन नगर का एक राजा सबलसिंह नाम का था। एक समय किसी कारण से उसको मृगया (शिकार) खेलने की इच्छा हुई, इसलिये वह अपनी नगरी को छोड़ कर बन में गया। वहां उसे कुछ दूर पर एक मृग दिखाई दिया जो अत्यन्त चपल और अद्भुत था। उसको देखते ही राजा उसे बध करने को दौड़ा, मृग भागने लगा, आगे २ मृग और पीछे २ राजा इस प्रकार दौड़ते हुए दोनों बहुत दूर निकल गये। राजाने कितने ही बाण मारे परन्तु मृग ने सब बचा लिए। जभी मृग बाण आता देखता तभी इधर उधर हट जाता, इस प्रकार एक घंटा व्यतीत हो गया। राजा थक गया, मृग न तो मरा ही और न दृष्टि से ओझल ही हुआ, थोड़ी देर को मृग ओझल हो जाय और दो चार क्षण पीछे फिर दीखने लगे। राजा के मनुष्य सब पीछे रह गये, उसको यह भी खबर न रही कि वह अपने नगर से कितनी दूर आगया है क्षुधा और धूप सताने लगी उसको इस बात की हठ हो गई थी कि चाहे जितना भी कष्ट क्यों न हो मृग को मार कर ही छोड़ूँगा। मानों मृगने भी निश्चय करलिया था कि न तो मैं मरूँगा ही और न दृष्टि से बाहर ही होऊंगा। इस प्रकार प्रातःकाल से पिछला पहर हो गया अंत में मृग राजा को बहुत दूर ले जाकर अदृश्य हो गया, राजा ने इधर उधर बहुतखोज की, किंतु मृग दिखाई न दिया। एक राजमहल दिखाई दिया, राजा उसे देखकर प्रसन्न हुआ और विश्राम लेने की इच्छा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से उसकी तरफ चला। पास जाकर राजा ने देखा कि महल दो बुर्जों के ऊपर बना हुआ है। भीतर जाकर देखा कि महल के बीच में एक अद्भुत स्थान है, उसमें छोटी २ कई कोठरियां हैं, एक कोठरी रसोई बनाने की है उसमें चौबीसों घन्टे अग्नि बनी रहती हैं। एक तरफ जल की कोठरी है। एक कोठरी पाखाने की है, उसके पास जल का नल लग रहा है। मध्य भाग में एक अन्धेरे वाला शयन गृह है। उसके नीचे के भाग में ज्योतिर्लिङ्ग महादेवजी का मन्दिर है। उनका प्रकाश सब राज महल में फैल रहा है। वहाँ से चल कर राजा ने देखा कि ऊपर से नीचे सामान ले जाने के लिये तराजू के समान एक यंत्र (lift) रक्खा हुआ है। एक स्थान टेलीफोन के मध्य बिन्दु के समान है। इधर उधर की खबर पहुंचाने के लिये सब तार वहाँ जुड़े हुए हैं। उसका मुख्य आलय (Office) ऊपर के भाग में है। आलय में तीन क्लर्क काम कर रहे हैं। और एक हाकिम रहता है वह ही महल का मालिक है। क्लर्कों के पास भिन्न २ काम करने के लिये चपरासी उपस्थित हैं। महल के ऊपर जाने को एक सीढ़ी लगी है। वह अन्धेरे शयन गृह से ऊपर की तरफ चली गई है। बीच में एक विलास स्थान है जहाँ राजमहल का मालिक विलास किया करता है। सीढ़ी वहां होती हुई और ऊपर चली गई है वहाँ कार्यालय का मुख्य स्थान है। मालिक मुख्यता से शयन गृह, विलास स्थान और कार्यालय में आता जाता रहता है। बाहर और भीतर काम करने वाले दोनों प्रकार के क्लर्क कार्यालय में आते जाते रहते हैं। परन्तु अन्तर कार्यालय में ऊपर बताये हुए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

तीन क्लर्क ही काम करते हैं, बाहर के काम करने वाले दो क्लर्क हैं, बाहर काम करने वाले क्लर्क भीतर काम करने वाले क्लर्कों की सहायता से काम करते हैं। बीच वाले कमरे के ऊपर की तरफ़ के दोनों तरफ निकली हुई दो गोखें हैं उनमें इस प्रकार की कल लगी हुई है कि इच्छानुसार खोल अथवा बंद कर दी जा सकती हैं, वायु आने जाने के मुख्य स्थान हैं। दोनों गोखों में रेशम के समान गलीचे बिछे हुए हैं! उन पर कई प्रकार के चित्र कढ़े हुए हैं। गोखों में पाँच पांच खम्भ हैं। प्रत्येक खम्भ के किनारे पर मोती के समान चमकदार पत्थर जुड़े हैं। जिस स्थान पर वे गोख जुड़े हुए हैं उसके मध्य में हाकिम का विलास गृह है उसके ऊपर के कमरे के कई भाग हैं उनमें सात खिड़कियां लगी हुई हैं। दो खिड़कियाँ ऊपर से रास्ते की तरफ झुकी हुई हैं। वहाँ दो लैम्प टंगे हुए हैं। जब तक हाकिम कार्यालय में रहता है खिड़कियाँ खुली रहती हैं और प्रकाश बाहर की तरफ पड़ा करता है। जब हाकिम विलास गृह अथवा शयन गृह में जाता है तब वे खिड़कियाँ बंद हो जाती हैं। दोनों खिड़कियों के मध्य भाग के नीचे दो खिड़कियां और हैं। वे वायु के ग्रहण त्याग का काम करती हैं। सुगन्ध दुर्गंन्ध बताने वाली वे दोनों खिड़कियाँ हैं। उनके नीचे के मध्य भाग में एक बड़ा दरवाज़ा है बाहर से भीतर सामान लाने का काम उस दरवाज़े से होता है। वहाँ बत्तीस चौकीदार दोनों तरफ पहरा देते हैं। वस्तु उठाने और लुढ़का कर भीतर ले जाने के लिये एक यंत्र (Crane) रक्खा हुआ है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो बड़ी वस्तु मार्ग में न जा सके तो चौकीदार उसे तोड़ देते हैं। यंत्र उठा कर अथवा लुढ़का कर भीतर पहुंचा देता है। ऊपर बताई हुई लैम्पों वाली खिड़कियों के इधर उधर दो और खिड़कियां हैं। उनमें होकर बाहर का शब्द भीतर आता है। बाहर की बातें हाकिम उन्हीं के द्वारा सुना करता है। गुफा के समान दोनों खिड़कियां अद्भुत बनी हुई हैं। इन सब खिड़कियों और कमरों के ऊपर राजमहल का गोलाकार शिखर बना हुआ है और उसके ऊपर काले रंग की ध्वजा फहरा रही है। इस प्रकार राजा सब राजमहल में सैर करता फिरा, उसने और सब व्यवस्था तो ठीक पाई परन्तु वहाँ का मालिक कहीं देखने में न आया। सब क्लर्क और चपरासियों ने मिल कर राजा से वहां का हाकिम वनने के लिये प्रार्थना की, राजा ने उनका कहना मान लिया और वह वहां का मालिक बन बैठा। वहां का रईस बन गया। उसने वहाँ अपने कुटुम्बी बना लिये उनके साथ रात दिन बिलास करने लगा। इस प्रकार वहाँ उसे अनन्त युग व्यतीत हो गये। वह अपने राज्य की सुध भूल गया। कुटुम्ब बहुत बढ़ गया, उन के साथ रहने से उसे कभी २ दुःख मालूम होता था तो भी वह राजमहल और कुटुम्ब को छोड़ना नहीं चाहता था। कुछ दिनों में राजमहल के साथ उसे इतना प्रेम बढ़ गया कि उसको यह भी मालूम न हो कि मैं राजमहल से अलग हूँ, अपने को राज महल ही समझने लगा।

उपरोक्त वृतांत सुना कर संत ने शिष्य से पूछा "क्या तूने कभी ऐसा राजमहल देखा है ?" शिष्य बोला "महाराज ! मैंने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ऐसा महल कभी नहीं देखा है, मैं राजा को भी नहीं जानता, कृपा कर आप बताइये वह महल कहाँ है और वह राजा कौन है ? राजमहल का वर्णन सुन कर मुझे उसको देखने की तीव्र इच्छा है।" संत ने हंसकर कहा "मैं महल को देख रहा हूं महल मेरे सामने है। जो तू देखे तो तुझे भी सामने दीखे।" शिष्य ने कहा महाराज ! "क्या वह महल पास ही है ? अथवा दिव्य दृष्टि होने से आपको दीखता है ? चर्म दृष्टि से तो मुझे कुछ नहीं दीखता।" संत ने कहा "वह महल दिव्य दृष्टि से नहीं दीखता, वह चर्म दृष्टि से ही सबको दीखता है" शिष्य ने कहा "तब कृपा करके दिखलाइये। मैं उसे देखने के लिये दूर जाने को और परिश्रम उठाने को भी तैयार हूं। यदि आप यहीं बैठे दिखलादें तो इससे विशेष आश्चर्य क्या ?" संत ने कहा "तुझे यह जो तेरा शरीर दीखता है वही स्थूल शरीर राज महल है उसमें रहने वाला राजा स्वयं तू है। उसके अंग उपांग सहित मैं तुझे समझाता हूं, श्रवण कर:-दो बुर्ज जिन पर महल बना है दो पैर हैं, बीच का अद्भुत स्थान पेट-उदर है। छोटी २ कोठरियाँ इस प्रकार हैं:—रसोई की कोठरी पाचनालय (मेदा) है जिसमें जठराग्नि चौबीस घंटे रहती है, पाखाने की कोठरी मल स्थान-मलाशय और जलघर जलाशय है, जल का नल लिंगेन्द्रिय है, मध्य भाग की अंधेरी कोठरी शयन स्थान, हृदय सुषुप्ति स्थान है, अंधेरी कोठरी की गहराई में नीचे ज्योतिर्लिंग महादेवजी का जोमंदिर बताया वह कूटस्थ-साक्षी-आत्माचैतन्य स्वरूपहै उसी के प्रकाश से सब महल प्रकाशित होता है। तराजू के समान जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न्त्र बताया वह अन्न जल ले जाने वाला नल है। टेलीफोन के मध्य बिन्दु के समान नाभि स्थान है, तीन क्लर्क मन, बुद्धि और चित्त हैं, हाकिम—मालिक अहंकार है, कचहरी अन्तःकरण है, चपरासी वृत्तियाँ है, बाहर के दश क्लर्क दश इन्द्रियाँ हैं, शयन-गृह हृदय है, विलास गृह कंठ स्थान है, जो स्वप्न स्थान है, कार्या-लय नेत्र स्थान है, जो जाग्रत अवस्था का स्थान है; दो लम्बे गोखों का वर्णन किया वे दो हाथ हैं, उनको इच्छानुसार मोड़ सकते हैं, स्पर्श ज्ञान की विशेषता से हाथ हवा खाने का स्थान है, उनमें रेशम के समान बिछे हुए गलीचे हथेली हैं, रेखायें उन के चित्र हैं, गोखों में पाँच पाँच खम्बे लगे हैं वे अंगुलियाँ हैं, उन के अग्र भाग में मोती के समान जड़े हुए चमकदार पत्थर नख हैं, विलास स्थान के ऊपर मस्तक आया हुआ है उस में लगी हुई सात खिड़कियाँ सात छिद्र हैं, लैम्प टंगी हुई दो खिड़कियाँ नेत्र हैं, लैम्प प्रकाश है, नीचे सुगन्ध ग्रहण करने वाली दो खिड़कियाँ नासिका के दो छिद्र हैं, उनके नीचे का बड़ा दरवाजा मुख है, उसमें रहने वाले बत्तीस चौकीदार दांत हैं, सामान को उठाने वाला और इकट्ठा कर ले जाने वाला यंत्र जिह्वा है, बड़ी चीजों के टुकड़े करना दाँतों से पीसना चबाना है, शब्द ग्रहण करने की दो खिड़-कियां कान हैं, महल का अंतिम भाग शिखर मस्तक है, काली ध्वजा बाल हैं। अब तो महल को तूने भली प्रकार देख लिया होगा। जिसको तू नहीं जानता था वह तेरे पास ही निकला। वह राजा 'मैं अलग हूँ' महल अलग है' यह बात भूल गया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

था, ऐसे ही तू भी भूल गया है।" शिष्य ने कहा "नहीं मह राज ! मैं शरीर को अलग मानता हूं, परन्तु शरीर से अलग अपने को दिखला नहीं सकता, और ठीक रीति से समझ नहीं सकता कि मैं शरीर ही हूं अथवा शरीर से पृथक कोई अ हूं।" संत ने कहा "तभी तो मैं कहता हूं कि तू शरीर को ही मानता है-किस प्रकार मानता है सो सुनः—जब शरीर थक जा है, तब तू समझता है कि मैं थक गया, जब शरीर को सुख हो है तब तू अपने को सुखी मानता है, शरीर रोगी होने से तू अ को रोगी समझता है, शरीर दुर्बल होने से तू अपने को दु मानता है, शरीर सुन्दर होने से तू अपने को सुन्दर मानता इस प्रकार मानना 'मैं शरीर ही हूं' इस भाव से ही होता है अ को शरीर से पृथक समझे तो शरीर के सुख दुख तुझे क्यों ह क्योंकि शरीर से तू भिन्न है।" शिष्य ने कहा "महाराज ! मैं शरीर से पृथक हूं तो दिखाई क्यों नहीं देता ? जब मैं श से पृथक नहीं दीखता तभी मैं अपने को शरीर मान लेता संत :—दीखने वाले पदार्थ माया के पंच भौतिक होते हैं, तू म का पंच भौतिक पदार्थ ही नहीं तब कैसे दीखे ? जब कोई जाता है तब उसमें से कौनसी वस्तु चली जाती है ? जि शरीर अपवित्र समझा जाता है, वह जाने वाली वस्तु दि नहीं देती तो भी 'शरीर में चैतन्यता नहीं है, शरीरधारी छोड़ कर चला गया' कहते हैं-समझते हैं। इस प्रकार शरी रहते हुए रहने वाला न दीखे तो क्या हुआ ? वह शरीर में समझ में आता है। बोलने चालने में तू शरीर से अलग हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार व्यवहार करता भी है। तू शरीर को मेरा शरीर कहताहै, मेरा कहा हुआ पदार्थ अपने से भिन्न होता है। कभी तू शरीर को मैं कहता है और कभी उसको मेरा कहता है इसलिये प्रथम तो यह निश्चय कर कि तू शरीर नहीं है; शरीर विकारी है, तू विकार रहित है; शरीर जड़ है, तू चैतन्य है; शरीर जन्मने मरनें वाला है, तू जन्म मरण से रहित हैं; शरीर छोटे से बड़ा होता है तू छोटा बड़ा नहीं होता। शब्दोच्चारण में चाहे तू शरीर को मैं कहे, चाहे मेरा कहे, परंतु बर्ताव तो तू मैं के भाव से करता है इस लिये विचार करके 'मैं शरीर हूँ' इस भाव को निकाल दे। शरीर मेरा है, मेरा है यही मेरा जब बहुत घन भाव को प्राप्त होजाता है तब मेरा में से रा हट जाता है और मे का मैं बना के बर्ताव होने लगता है। शरीर दृश्य है, तू उसका दृष्टा है, देखने वाला देखने के पदार्थ से भिन्न होता है, 'भिन्न है' ऐसा न मानना यही अज्ञान है, यह ही जीव भाव है, यह ही दुःख की जड़ है। परस्पर मिले हुए दो पदार्थों में से यदि एक ठीक रीति से जान लिया जाय तो शेष रहा हुआ दूसरा पदार्थ है ऐसा समझ सकते हैं, 'शरीर तू नहीं है' यह समझने के लिये स्थूल शरीर किस प्रकार का है, यह मैं तुझे समझाता हूं :—देखने में आने वाला स्थूल शरीर पंचभूत का पुतला है, पंच महाभूत इस प्रकार हैं, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। पृथ्वी का रंग पीला, जल का श्वेत, अग्नि का लाल, वायु का धुँधला और आकाश का काला है। आकाश में एक गुण शब्द है, वायु में दो गुण शब्द और स्पर्श हैं, अग्नि में तीन गुण शब्द, स्पर्श और रूप हैं, जल में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

चार गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस हैं और पृथ्वी में पांच गु शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध हैं। इनमें पृथ्वी, जल और अग्नि दृश्य स्वरूप हैं, वायु और आकाश अदृश्य स्वरूप हैं। यद्यपि वा और आकाश दृष्टि का विषय नहीं हैं तो भी वे अन्य इन्द्रियों विषय हैं। पाँचों तत्व क्रम से एक से एक सूक्ष्म हैं, उनक उत्पत्ति माया से हुई है, माया त्रिगुणात्मक जड़ है। सत् रज औ तम ये तीन माया के गुण हैं। जो देखने में आते हैं वे पंच मह भूत पंची करण किये हुए हैं, इसलिये स्थूल होने से दीखते हैं। ज एक दूसरे से मिलकर गाढ़े हो जाँय उन्हें पंचीकृत कहते हैं पांच के पच्चीस भाव वाले होकर जो मिलकर स्थूलता को प्राप्त हु हैं उन्हें पंचीकृत पंच महाभूत कहते हैं। पंचीकरण की एक रीि इस प्रकार है:—पांचों भूतों में से प्रत्येक के दो दो भाग करके ह एक के आधे २ भाग को अलग रखदें, और दूसरे आधे २ भा में से प्रत्येक के चार भाग करें, ये भाग पूरे के आठवें भा अर्थात् रुपये के दो-दो आने के भाग हुए। इनको अब इस प्रका मिलावे कि पृथ्वी तत्व का मुख्य आधा भाग लेकर उसमें पृथ् तत्व को छोड़कर और चार तत्वों के दो-दो आने भर के भा मिलावें, वह जो एक भाग पूरा हुआ वह पंचीकरण किया हु पृथ्वी तत्व हुआ। इसी प्रकार जल तत्त्व के मुख्य आधे भाग, ज तत्त्व को छोड़कर और चारों तत्त्वों के दो आने वाले छोटे भा मिलावे, यह जो पूरा एक हुआ वह पंचीकरण किया हुआ ज तत्त्व हुआ, इसी प्रकार अग्नि, वायु और आकाश का विभा करें। अथवा यों समझो कि पाँच मित्र एक स्थान पर बैठे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाँचों के पास एक २ फल है, अनार सेव, नारंगी अंजीर और अमरूद। पाँचों ने फल तोड़ कर खाने की इच्छा की। सब के सामने अकेले फल खाना ठीक न समझ कर बांट कर खाने का निश्चय किया, पांचों ने अपने २ फल के दो दो टुकड़े किये, एक टुकड़ा तो अपने खाने को अलग रख दिया, दूसरे भाग के चार चार भाग कर, चारों को बांट दिये, इसी प्रकार सबने किया। जब बांट हो गये तब खाने को बैठे तो सब के पास पांच २ टुकड़े थे एक तो बड़ा और चार छोटे। बड़े टुकड़े के कारण से उनके भाग बड़े टुकड़े के नाम से कहे गये परंतु पाँचों के पास पांच भाग होने से पाँच ही तत्त्व कहे गये।

दूसरे प्रकार का पंचोकरण यह भी है:--पांचभूत में से प्रत्येक भूत के पच्चीस २ भाग किये, इक्कीस २ टुकड़े मुख्य रक्खे दूसरे चार भागों में से एक २ भाग लेकर पच्चीस टुकड़े पूरे कर दिये। इस प्रकार सब मिलाने से पंचीकरण हो गया। प्रथम के पंचीकरण की रीति में तो अपना आधा मुख्य और दूसरे आधे में और चार थे; और दूसरी रीति में पच्चीस भागों में इक्कीस भाग मुख्य और दूसरे चार भाग औरों के थे इस प्रकार पच्चीस पूर्ण हुए। इन पंचीकरण किये पंचभूतों से स्थूल शरीर बना है। इसी प्रकार स्थूल शरीर के संबंध वाला स्थूल ब्रह्मांड भी पंचीकृत पंच महा भूतों से बना है। अपंचीकृत तत्त्व स्थूल दृष्टि के विषय नहीं हैं। जितने स्थूल पदार्थ हैं वे सब पंचीकृत पंचभूतों के बने हुए हैं। कोई पदार्थ इनसे पृथक् नहीं है। जिसको केवल जल अथवा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

केवल पृथ्वी कहते हैं वह केवल जल या पृथ्वी नहीं है किन्तु दोनों अ पंचीकरण किये हुए हैं। मुख्य भाग की विशेषता से वे पृथ्वी आदि कहलाते हैं।

पंचभूतों में पृथ्वी कठिन है, जल द्रवित है, अग्नि उष्ण है वायु शीतल है, और आकाश पोल वाला है, वे सब एक दूसरे से मिल कर स्थूल शरीर रूप परिणाम को प्राप्त हुए हैं।

स्थूल शरीर के पंचीकृत पच्चीस तत्व।

पंचभूत	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश
पृथ्वी	हड्डी	मांस	नाडी	त्वचा	रोम
जल	रक्त	वीर्य	मूत्र	पसीना	लार
अग्नि	आलस्य	कांति	क्षुधा	तृषा	निद्रा
वायु	संकोचन	चलन	उत्क्रमण	दौड़ना	प्रसारण
आकाश	कटि का	उदर का	हृदय का	कंठ का	शिर का

पंचीकरण भूतों का विस्तार इस प्रकार हुआ है:—पृथ्वी का मुख्य भाग रूप हड्डी, पृथ्वी के मुख्य भाग और जल के न्यून भाग से रक्त, पृथ्वी के मुख्य भाग और अग्नि के न्यून भाग से आलस्य, पृथ्वी के मुख्य भाग और वायु के न्यून भाग से संकोचन, पृथ्वी के मुख्य भाग और आकाश के न्यून भाग से कटि में रहा हुआ आकाश। जल के मुख्य भाग तौर पृथ्वी के न्यून भाग से मांस, जल के मुख्य भाग से वीर्य, जल के मुख्य और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अग्नि के न्यून भाग से कान्ति, जल के मुख्य भाग और वायु के न्यून भाग से चलना, जल के मुख्य भाग और आकाश के न्यून भाग से उदर का आकाश। अग्नि के मुख्य भाग और पृथ्वी के न्यून भाग से नाड़ी, अग्नि के मुख्य भाग और जल के न्यून भाग से मूत्र, अग्नि के मुख्य भाग से क्षुधा, अग्नि के मुख्य भाग और वायु के न्यून भाग से उठना, अग्नि के मुख्य भाग और आकाश के न्यून भाग से हृदयाकाश। वायु के मुख्य भाग और पृथ्वी के न्यून भाग से चमड़ी, वायु के मुख्य भाग और जल के न्यून भाग से पसीना, वायु के मुख्य भाग और अग्नि के न्यून भाग से तृषा। वायु के मुख्य भाग से दौड़ना, वायु के मुख्य भाग और आकाश के न्यून भाग से कंठ का आकाश, आकाश के मुख्य भाग और पृथ्वी के न्यून भाग से रोम, आकाश के मुख्य भाग और जल के न्यून भाग से लार, आकाश के मुख्य भाग और अग्नि के न्यून भाग से निद्रा, आकाश के मुख्य भाग और वायु के न्यून भाग से फैलना और आकाश के मुख्य भाग से शिर का आकाश। इस प्रकार पांचों भूत स्थूल शरीर में है। स्थूल शरीर की जाग्रत अवस्था है, जीवात्मा नेत्र स्थान में रहता है. वाणी वैखरी-बाहर बिखरने वाली है, स्थूल शरीर की क्रिया शक्ति है, सतो गुण है, स्थूल शरीर का अभिमानी जीव विश्व का अभिमान करता है इसलिये विश्व कहलाता है, ओंकार की प्रथम मात्रा अकार है, जन्मना, होना, बढ़ना, परिणाम को प्राप्त होना, वृद्ध होना, मर जाना ये छः विकार स्थूल शरीर में होते हैं। जीवात्मा के पूर्व कर्म के अनुसार फल भोगने का स्थान रूप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

स्थूल शरीर है। नाम, रूप, रंग, वर्ण, आश्रम, कुल, गो: इत्यादि स्थूल शरीर में माने जाते हैं। इस प्रकार का स्थूल शरी तू नहीं है। यह शरीर पंचभौतिक और विनाश वाला है, अ वित्र वस्तुओं से भरा हुआ है, तू तो चैतन्य और पवित्र है, लिये उपरोक्त शरीर तू नहीं है। तेरे और उसके लक्षण न मिलते, सब विरुद्ध हैं। जो तू शरीरही है तो अपनी इच्छानुसा उसे क्यों नहीं रख सकता? तू चाहता है, शरीर आरोग्यं र किंतु विक्रिया द्वारा शरीर आरोग्य नहीं रहता, तब तू शरी किस प्रकार है? यदि कोई कहे कि शरीर रूप मैं नहीं हूं कि शरीर के समुदाय से उत्पन्न हुई शक्ति सहित शरीर मैं हूं तो नहीं बनता। मृतक शरीर के समुदाय में से कोई पदार्थ क नहीं होता, फिर भी चैतन्यता नहीं रहती, जो समुदाय चैतन्यता उत्पन्न हुई होती तो जब तक समुदाय टूटता नहीं त तक रहनी चाहिये। मूर्छा, सुषुप्ति, समाधि में भी समुदाय ज का त्यों रहता है, किंतु जीव की चैतन्यता नही दीखती, समुदा से उत्पन्न हुए चैतन्य में ऐसा नहीं होना चाहिये और ऐसा होता है इसलिये 'शरीर समुदाय रूप मैं हूं' यह कहना झूठ है। यदि ऐसा कहे कि शरीर से मैं कोई भिन्न पदार्थ होऊं तो दीखना चाहिये, सो भिन्न दीखता नहीं इसलिये शरीर से भिन्न मैं कि प्रकार हूं, तोसुनः—तू भौतिक पदार्थ नहीं है, इसलिये भौतिक दृष्टि का विषय नहीं हैं। तू जिस प्रकार का दिव्य है उसी दिव्य दृष्टि से तू अपने को जान सकता है। अंधेरे में पदार्थ न दीखे तो यह नहीं कह सकते कि पदार्थ है नहीं। जैसे प्रकाश में जो पदार्थ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीखता है उसके देखने को वैसा ही प्रकाश चाहिये। अज्ञान के अंधेरे में आत्मा को देखना चाहें तो यह नहीं हो सकता।

तू भिन्न हीं वस्तु है! तू न तो शरीर है और न शरीर से संबंध वाला है। तू सर्व से भिन्न आनन्द स्वरूप है, ऐसे शास्त्र और सद्गुरु के वाक्य मानने ही पड़ेंगे। जहां तक स्वयं साक्षात्कार न हो वहां तक श्रद्धा विना काम नहीं चलेगा। सभी आर्यं शास्त्रकारों ने आत्मा को देह से भिन्न माना है, इतना ही नहीं किंतु जगत् के सभी मत मतांतरों में आत्मा को शरीर से पृथक माना है। जो आत्मा शरीर से पृथक् न हो तो शास्त्र की सब क्रियां व्यर्थ हो जांय, सृष्टि कर्ता ईश्वर अन्यायी हो जाय, किये हुए कर्मों का फल न मिले, विना किये ही फल भोगना पड़े यह दोष उत्पन्न हो, जन्म का कोई कारण न रहे। शरीर आत्मा नहीं है यह श्रुति, स्मृति और अनुभव से सिद्ध है। अज्ञानी मनुष्य भी चाहे बर्त न सकें परन्तु पूछने से वे भी आत्मा को शरीर से भिन्न बतावेंगे। इन सब बातों से निश्चय करना चाहिये कि शरीर आत्मा नहीं है। तू शरीर को निश्चयपूर्वक आत्मा मानता भी नहीं है।

जैसे तू शरीर नहीं है इसी प्रकार शरीर तेरा भी नहीं है। जो पदार्थ जिस अवस्था में होता है वह उसी अवस्था वाले के अधिकार में हो सकता है। तू जगत् नहीं है इसलिये जगत् का स्थूल शरीर तेरा नहीं हैं। तू तो तीनों अवस्थाओं में एक सा रहता है, शरीर रूपांतर वाला है इसलिये शरीर तेरा नहीं है। जड़ का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

संबंध जड़ से होता है, चैतन्य का संबंध चैतन्य से होता है। शरीर जड़ है, तू चेतन्य है, तेरा संबंध उससे किस प्रकार हो? तू ज्ञान स्वरूप चैतन्य है, उस माया रूप अज्ञान के शरीर को कहाँ रक्खेगा ? जब किसी का हाथ या पैर कट जाता है तब उसे क्यों फेंक देते है ? यदि उसका होता तो अपने साथ साथ लिये फिरता ! मरने के समय तू स्थूल शरीर क्यों छोड़ देता है ? शरीर तेरा है तो शरीर में से निकलने वाले मल मूत्र, रक्त, मांसादिक को क्यों फेंक देता है ? उससे घृणा क्यों करता है ? इन सब बातों से निश्चय कर लेना चाहिये कि जैसे तू शरीर नहीं है ऐसे ही शरीर तेरा भी नहीं है। ऐसे अनेक शरीर हो कर नाश को प्राप्त हो गये तब यह शरीर तेरा कैसे है ? इसलिये निश्चयकर कि न तू स्थूल शरीर है न स्थूल शरीर तेरा है। तू और तेरा न होते हुए भी तू और तेरा मानना यही अज्ञान है, इसी के कारण अनेक प्रकार के जगत् के शरीर सहित कष्ट भोगने पड़ते हैं।

देह को आत्मा मानना अथवा देह से सम्बन्ध वाला आत्मा जानना, इसका नाम देहाध्यास है, एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ का भाव मिश्रित करके उसे दूसरी वस्तु जानना इसका नाम अध्यास है। देह दूसरी वस्तु है, आत्मा दूसरा तत्त्व है। देह में आत्म भाव मिश्रित करके देह को आत्मा समझना, देहाध्यास है। स्थूल शरीर के साथ रहने वाले, उसके प्रवर्तक जड़ चिद् ग्रन्थि रूप अहंकार में आत्म भाव मिला कर देह मेरा है ऐसा मानना सूक्ष्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देहाध्यास है। इस प्रकार का देहाध्यास अनर्थ की जड़ है। देह और आत्मा के कई अंश एक दूसरे में मिलाकर मानना और दूसरे में प्रथम को मिला कर एक मानना अन्योन्याध्यास है। ऐसा करने से दोनों पदार्थों का ठीक २ भान नहीं रहता, दोनों ही बिगड़ जाते हैं। रायता और खीर दो पदार्थ हैं, रायते में डालने का नमक खीर में डाल दिया जाय और खीर में डालने की खांड रायते में डाल दी जाय तो क्या होगा ? खीर और रायता दोनों ही विगड़ जांयगे। इसी प्रकार अन्योन्याध्यास से देह और आत्मा दोनों ही का स्वरूप बिगड़ जाता है।

सत्, चित्, आनन्द और अद्वैतता आत्मा के विशेषण हैं, असत्, जड़, दुःख और द्वैतता अनात्म शरीर के विशेषण हैं, शरीर का दुःख और द्वैतपना आत्मा में डाल दिया और आत्मा का सत् और चित्तपना अनात्मा शरीर में डाल दिया तब आत्मा आनंद और अद्वैतता के ढक जाने से दुखी और ऐश्वर्यादि से भिन्न हो ऐसा मालूम होने लगा और अनात्म शरीर का असत् पना और जड़ता ढक जाने से अनात्म शरीर सत्य और चैतन्य हो ऐसा मालूम होने लगा, दोनों ही अपने भाव में न रहे यह ही देहाध्यास है।

एक साहूकार था, उसकी उमर बहुत होने पर भी उसके कोई संतान न हुई, संतान के कारण उसने दूसरा विवाह किया। थोड़े दिन पीछे नई स्त्री के लड़का उत्पन्न हुआ। साहूकार बड़ी स्त्री को चाहता था, उसने साहूकार से कहा "छोटी का लड़का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

मेरी गोद बैठा दो, उस लड़के को मैं उसे नहीं दूँगी !" साहूकार ने बहुत समझाया परन्तु बड़ी स्त्री न मानी। अंत में छोटी का लड़का बड़ी की गोद बैठा दिया गया, वह उसे अपना लड़का कहने लगी, यदि छोटी स्त्री उस लड़के को अपना कह देती तो बड़ी अत्यंत ही क्रोधित हो जाती और दो चार दिन तक उस घर में कलह देवी का निवास हो जाता ! बड़ी स्त्री के इस प्रकार के स्वभाव वाली होने से साहूकार छोटी स्त्री को समझा देता और वह मान भी जाती थी। कुछ दिनों में सौतों की आपस की ईर्षा यहाँ तक बढ़ गई कि बड़ी स्त्री छोटी के हाथ में भी लड़के को न देती। ईश्वर कृति अलौकिक है। बड़ी स्त्री के भी गर्भ रह गया और उसके भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस समय गोद में बैठा हुआ लड़का सात वर्ष का था। एक दिन छोटी स्त्री ने साहूकार से कहा "स्वामिन् ! अब मेरा पुत्र मुझे दिलवा देना चाहिये" साहूकार ने बड़ी स्त्री से पुत्र दे देने को कहा परन्तु उसने न माना और कहा यह पुत्र तो मेरा हो चुका है- मैंने इसे बड़ा किया है, मैं किसी प्रकार से भी उसे न दूँगी।" अंत में बड़ी बहुत कहने सुनने से अपना छोटा लड़का देने को राजी हो गई। बड़ी का छोटा लड़का छोटी की गोद बैठा दिया गया। छोटी उसे अपना लड़का मानने लगी और सौत के बड़े लड़के से द्वेष करने लगी। इसी प्रकार बड़ी स्त्री बड़े लड़के को अपना मानकर छोटे से द्वेष करने लगी। दोनों का द्वेष दिन प्रति दिन बढ़ने लगा। लड़के भी जिनके उदर से उत्पन्न हुए थे उन्हीं को द्वेष दृष्टि से देखने लगे। दोनों स्त्रियाँ यही चाहती थीं कि पति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के पश्चात् हमारा लड़का ही मिलकियत का मालिक हो। एक दिन बड़ी ने विचार किया "यदि छोटी का लड़का विष देकर मार दिया जाय तो सब मिलकियत का मालिक मेरा लड़का हो जाय।" उसी दिन छोटी ने भी ऐसा ही विचार किया। बड़ी स्त्री ने बरफी में थोड़ा विष मिलाकर छोटी के लड़के को खिलाने को रख छोड़ी इसी प्रकार छोटी ने विष मिलाये हुए सेव बना रक्खे। छोटी का लड़का सेवों का प्रेमी था छुपाये हुए सेव चोरी से लेकर खा गया और थोड़ी देर में चल दिया। उधर बड़ी का लड़का बरफी खाने का प्रेमी था उसने छुपी हुई बरफी चुरा कर खांली। वह भी प्राण दे बैठा। दोनों गये।

यह ही अन्योन्याध्यास है, नाश करने वाला यही है। अपने लड़के को दूसरे का मानना और दूसरे के लड़के को अपना मानना यह ही अज्ञान है। आत्मा में अनात्म शरीर भाव और शरीर रूप अनात्मा में आत्म भाव रखने का यही परिणाम है। इससे सिद्ध हुआ कि शरीर आत्मा नहीं है, इसलिये शरीर तू नहीं है और वह माया का होने से उसका तुझ चैतन्य स्वरूप से कुछ सम्बन्ध भी नहीं है, इसलिये वह तेरा भी नहीं है; वह माया का है और पंचभौतिक है। तू उससे भिन्न चैतन्य स्वरूप है ऐसा मान।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अन्नमय कोश

स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों शरीरों में से हर एक अ से एक एक के भीतर है। इन तीन शरीरों में पांच कोश शरीर और कोश एक ही वस्तु हैं, शरीर भिन्न हो और को भिन्न हो ऐसा नहीं है। कोश म्यान का नाम है। जिस प्रक तलवार म्यान में रहती है—म्यान तलवार को ढकने वाला इसी प्रकार कोश आत्मा को ढकने वाले हैं। अथवा कोश ना भंडार का है। जैसे भंडार में धन रहता है, भण्डार धन ढकता है इसी प्रकार कोश आत्मा को ढकते हैं। कोशकार ए कीड़े का नाम है, उसके रहने के स्थान को कोश कहते हैं। जि प्रकार घर उस जंतु को ढकता है ऐसे ही कोश आत्मा ढकते हैं।

अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय पांचों कोशों के नाम हैं। स्थूल शरीर को अन्नमय कहते हैं, प्राण मय, मनोमय और विज्ञानमय ये तीन कोश सूक्ष्म शरीर कह लाते हैं और कारण शरीर आनन्दमय कोश को कहते हैं।

तीनों शरीर माया के हैं इसलिये पांच कोश भी माया हैं। स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म शरीर भीतर कारण शरीर है। इसी प्रकार पांच कोशों में भी क्रम एक से एक सूक्ष्म हैं। अन्नमय कोश के भीतर प्राणमय, प्राण मय के भीतर मनोमय, मनोमय के भीतर विज्ञानमय औ विज्ञानमय के भीतर आनन्दमय कोश है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थूल शरीर रूप जो अन्नमय कोश है वह माता पिता के खाये हुए अन्न से बने हुए रस रूप पिता के वीर्य और माता के रज से माता के उदर से उत्पन्न होता है। उत्पन्न होकर कुछ दिन तक माता के दूध रूप अन्न से फिर प्रत्यक्ष अन्न से वृद्धि को प्राप्त होता है, और अन्त में मरण समय अन्न रूप पृथ्वी में लीन हो जाता है। जो स्थूल है, दृष्टि का विषय है, और दृश्य है वह अन्नमय कोश है। अन्नमय कोश आत्मा नहीं है, आत्मा उससे भिन्न है। अन्नमय कोश सुख दुःख भोगने का स्थान रूप है, उसकी उत्पत्ति, वृद्धि और क्षय देखने में आते हैं, वह विकारी है और असत्य है। आत्मा उत्पत्ति आदिक विकार वाला नहीं है इसलिए अन्नमय कोश अर्थात् स्थूल शरीर आत्मा नहीं है।

अन्नमय कोश त्वचा, मांस, रक्त, हड्डी और विष्टा का समुदाय है, अशुद्ध है, आत्मा शुद्ध है। अन्नमय कोश नियम में रहने वाला है, आत्मा उसे नियम में रखने वाला है, अन्नमय कोश जड़ है, आत्मा चेतन है। अन्नमय कोश हाथ, पग, मस्तक आदि, अंग उपांग सहित है, आत्मा अवयव रहित है, शरीर मरने वाला है, आत्मा अमर है। शरीर शक्ति वाला और शक्ति रहित होता है, आत्मा अखंड एक स्वरूप अविकारी है। शरीर माया के तीन गुणों से बना है, आत्मा गुणातीत है। शरीर वर्ण आश्रम आदिक धर्म वाला है, आत्मा इस प्रकार के सबधर्मों से रहित है। इस प्रकार दोनों की विलक्षणता होने से शरीर कभी आत्मा नहीं हो सकता। अज्ञानी मनुष्य स्थूल शरीर–अन्नमय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कोश ही आत्मा है ऐसा बर्ताव करनें से आत्मघाती होते हैं, और अनेक प्रकार के कष्ट भोगते हैं।

पांच मित्र थे। जो कुछ वे करते एक दूसरे की सम्मति से किया करते। शरीर से पाचोंअलग २ थे, किन्तु मनसे पांचों जुड़े हुए थे। पांचों में से एक राजा था, दूसरा उसका प्रधान था, तीसरा सरदार था, चौथा साहुकार था और पांचवाँ नौकर था। एक समय राजा राज काज पंचों को सौंप करके चार मित्रों सहित मुसाफिरी करने निकला। पांचों के पास उत्तम जाति के घोड़े थे। दिन भर चल कर शाम को वे एक वन में पहुंचे, आसपास कोई ग्राम दिखाई न दिया। सबने मिल कर निश्चय किया कि रात्रि जंगल में व्यतीत करनी चाहिए। आस-पास देखने से एक सघन वृक्ष की छाया दीख पड़ी, उसके नीचे एक शिवालय दिखाई दिया, उसमें विश्राम करने को सब उतर पड़े। जो कुछ उनके पास था सबने मिल कर भोजन कर लिया और पास की बावड़ी में से जल पी लिया, फिर सोने को आसन लगाया। सबके पास हथियार थे, सब ने एक साथ सोना योग्य न समझा। "जंगल का स्थान है, उजाड़ है, जीव जन्तु और शिकारी पशुओं का भय है, बाहर पाँच घोड़े बंधे हुए हैं," ऐसा विचार कर सबने निश्चय किया कि पांच घन्टे रात्रि जो शेष है उसमें चार मनुष्य सोते रहें और एक पहरा देता रहे, इस प्रकार रात्रि व्यतीत करें। घन्टे भर पीछे पहरा देने वाला दूसरे को जगा कर आप सो जाय।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चारों मित्र सो गये, नौकर पहरा देने लगा। थोड़ी देर में उसने विचार किया "रात्रि में हम यहां आये हैं, मंदिर हमने देखा नहीं है, देखूं मंदिर के आस पास क्या है ?" इस प्रकार विचार कर वह मंदिर के आस पास देखने लगा तो मंदिर के एक कोने में उसे एक गुफा दिखाई दी। गुफा के भीतर जाकर देखा तो उसमें एक साधु समाधि लगाये बैठा हुआ पाया। वह कान्तिमान और युवा था। उसके पास एक अलौकिक प्रकाश दीखता था। थोड़ी देर में साधु ने समाधि छोड़कर आंखें खोलीं और थोड़ी मिट्टी हाथ में लेकर एक मंत्र का उच्चारण किया। मंत्र उच्चारण करने से मिट्टी में से एक प्रकार का शब्द उत्पन्न हुआ। मिट्टी को बोलती देखकर नौकर को बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुत सी हड्डियां शब्द करती हुई मालूम हुईं, मिट्टी हड्डियों की आकृति में बदल गई, और हड्डियों का ढेर दिखाई देया। नौकर ने घड़ी निकाल कर देखा तो घंटा पूर्ण हो गया था, उसको नींद सता रही थी इसलिये साहूकार को पहरा देने के लिये जगा कर वह सो रहा। जो आश्चर्य उसने देखा था, उसकी कोई बात उसने साहूकार से न कही, साधु का बोला हुआ मंत्र उसने याद कर लिया था।

साहूकार अपने शस्त्र संभाल कर पहरा देने लगा। थोड़ी देर में जब उसने अपनी दृष्टि फेरी तो उसे मंदिर के छिद्र में प्रकाश दिखाई दिया, छिद्र के पास गया तो गुफा दिखाई दी, उसमें साधु बैठा हुआ दिखाई दिया, वह समाधि लगाये हुए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

था। साहूकार देख ही रहा था कि इतने में साधु ने समाधि छोड़ कर नेत्र खोले और सामने पड़े हुए हड्डियों के ढेर पर हाथ फेंक कर एक-एक मंत्र बोला। तुरन्त हड्डियों में से शब्द हुआ "चलिए एक दूसरे से संयुक्त हो जाइये" शब्द के साथ सब हड्डियाँ जुड़ गई, उनमें मांस भर गया और हड्डियों का स्पर्श करने योग्य शरीर बन गया जो मंत्र साधु ने पढ़ा था साहूकार ने याद कर लिया और घंटा पूर्ण होने से सरदार को जगा कर सो गया मित्र से कुछ ने कहा।

सरदार अपने शस्त्र लेकर पहरा देने लगा। प्रथम तो घोड़ों की तरफ गया, पांचो घोड़े आराम से सोते पाये, किसी प्रकार का उपद्रव न देखा। मंदिर के चारों तरफ चक्कर लगाकर उसने देखा तो वहां भी किसी प्रकार की आपत्ति न देखी। पश्चात् उसने मंदिर के पास आ कर देखा तो साधु वाली गुफा दिखाई दो, उसमें दिव्य प्रकाश हो रहा था। मंदिर के भीतर जाकर उसने देखा तो साधु को गुफा में खुले नेत्रों से ध्यानावस्था में बैठा पाया। थोड़ी देर में साधु नेत्र घुमाने लगा और पास ही मांस सहित जो हड्डियों का पिंजर पड़ा था उसके ऊपर दृष्टि करके उसने एक मंत्र पढ़ा। मंत्र पढ़ते ही पिंजर पुष्ट होने लगा और जीवित हो इस प्रकार की चेष्टा वालो आकृति में आ गया। जो मांस था वह कठिन हो गया, सब शरीर की खाल बंध गई सब पिंजर स्नायु युक्त हो गया और सुन्दर दीखने लगा। फिर साधु ने अपनी दृष्टि हाड़ पिंजर पर से हटा ली और वह कुछ विचार करता हुआ दीखा। सरदार ने वह मंत्र याद कर लिया और घड़ी देखी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

घंटा पूर्ण हो गया था इसलिये वह प्रधान को जगा कर बिना कुछ कहे हुए सो गया।

प्रधान पहरा देने लगा। बन में किसी पशु का शब्द सुनाई न दिया, सब स्थान शान्तिमय था और अंधकार छा रहा था। थोड़े थोड़े चमकते हुए तारों के सिवाय आकाश में और कुछ नहीं दीखता था। प्रधान अपने चारों साथी और पाँचों घोड़े निश्चितता से सोते हुए देखकर मंदिर के आसपास देखने लगा। मंदिर में प्रकाश देख कर वह उसकी तरफ गया तो उसने वहां साधु बैठा हुआ देखा और उसके सामने हड्डियों का पिंजर पड़ा हुआ पाया। साधु किसी विचार में मालूम होता था, विचार के प्रवाह में कभी २ उसके अंग हिलते दीखते थे। प्रधान ने उससे बातचीत करना चाहा परन्तु उसकी हिम्मत न पड़ी "साधु है या कौन जाने कौन है! कोई प्रेत अथवा राक्षस हो तो क्या आश्चर्य! कुछ उपद्रव तो करता ही नहीं, फिर छेड़ना भी क्यों? जब कोई आपत्ति आती दीखेगी तब देखा जायगा।" ऐसा विचार कर प्रधान उससे कुछ न बोला। साधु ने हाड़ पिंजर की तरफ दृष्टि करके कमंडल में से थोड़ा जल लेकर और एक मन्त्र पढ़ कर छींटा दिया, छींटा देते ही सुन्दर आकृति वाला मृग चमकने लगा। कोई पालतू मृग तुरन्त ही मर गया हो अथवा बिना श्वास लिये सो रहा हो इस प्रकार वह दिखाई देता था। सूक्ष्मता से देखने से मालूम होता था कि उसको श्वास नहीं चलती और वह जीवित नहीं है। साधु ने इतनी क्रिया कर के मृग की तरफ से मुख फेर लिया। प्रधान ने मन्त्र याद कर लिया, घड़ी में देखा तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

घंटा पूरा हो गया था इसलिये वह राजा को जगा कर बिना कुछ कहे हुए सो गया।

राजा जाग कर दो तीन बार खखारा परन्तु उससे कोई न जागा। तब वह घोड़ों की तरफ गया, उन्हें भी सोता हुआ पाया। फिर इधर उधर घूमता हुआ वह मन्दिर की तरफ गया, वहां गुफा के द्वार पर उसकी दृष्टि पड़ी और साधु बैठा हुआ दिखाई दिया। राजा चुपचाप खड़ा हो गया और साधु क्या करता है देखने लगा। साधु ने हाथ में भभूति ली और एक मन्त्र पढ़ कर सामने पड़े हुए हरिण पर डाली, हरिण सजीव हो गया और साधु को प्रेम पूर्वक चाटने लगा। राजा ने मंत्र याद कर लिया। थोड़ी देर में कौवे शब्द करने लगे। कौवों के शब्द के साथ ही गुफा, साधु और हरिण अदृश्य हो गये।

चारों मित्र उठ बैठे। प्रातःकाल होने से सब ने दांतोन कुल्ला कर के स्नान किया और कुछ भोजन कर के अपने २ घोड़े पर सवार होकर पांचो चल दिये। दो पहर होने पर विश्रांति लेने को एक पेड़ के नीचे उतरे, वहां नौकर ने कहा "कल रात्रि को मन्दिर में मैंने एक आश्चर्य देखा था। क्या आप लोगों ने भी कुछ देखा ? एक ने कहा "क्या देखा था ?" तब उसने अपना सब वृत्तांत सुनाया। इसके पीछे सब ने अपना २ वृत्तांत सुनाया। पांचों मित्र सब वृत्तांत सुन अत्यन्त हर्षित हुए। मिट्टी में से जीवित प्राणी उत्पन्न करने की अद्भुत विद्या प्राप्त होने से सबनें अपने को भाग्य वाला समझा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो साधु के कहने से हुआ था वही फल मन्त्र उच्चारण करने से हो या न हो इसकी परीक्षा करने को सबने मंत्रणा की। प्रथम नौकर ने थोड़ी मिट्टी हाथ में लेकर मन्त्र उच्चारण किया। तुरन्त ही शब्द हुआ और सामने हड्डियों का ढेर हो गया। साहूकार ने हड्डियों से हाथ लगाकर मन्त्र उच्चारण किया 'चलिये चलिये, एक२ से मिलिये।' शीघ्र ही शब्द हुआ और सब हड्डियाँ जुड़ गईं। सरदार ने माँसयुक्त हड्डियों की तरफ देख कर मन्त्र पढ़ा, हाड़ पिंजर पुष्ट और चमकदार बन गया। प्रधान ने जल ले मन्त्र पढ़ा और हाड़ पिंजर पर छिड़का। जल छिड़कते ही हड्डियों का एक विकराल सिंह बन गया, केवल श्वास चलना बाकी था। सिंह को देखकर सब घबराये और राजा से विनती करने लगे "आप अपना मन्त्र पढ़कर भभूती छिड़कना बन्द कीजिये नहीं तो सिंह सजीव हो जायगा।" राजा ने कहा "वाह ! यह कैसे हो सकता है ? तुम चारों ने तो अपने २ मन्त्र की परीक्षा करली। मैं बिना परीक्षा किये कैसे रह सकता हूँ ?" हमेशा राजा आदिक सब एक दूसरे का कहना माना करते थे इस समय राजा ने किसी का कहना न माना। राजा ने भभूती हाथ में ली, अन्य चार मित्र घबराकर भागने लगे। ज्यों ही राजा ने मन्त्र बोलकर सिंह के हाड़ पिंजर पर भभूती छिड़की कि तुरन्त ही एक विकराल सिंह सजीव होगया। प्रथम उसने राजा को मारा और फिर दौड़कर चारों भागते हुओं को भी पंजों से मार डाला। "राजा दुराग्रह से अपने प्राण खो बैठा और साथ में अपने मित्रों को भी ले मरा।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

साधु, मंदिर, पांचों मित्र आदिक सब पदार्थ अमात्म कल्पना के कारण से एक ही तत्त्व में भिन्न भिन्न मालूम हो लगते हैं। वह कल्पना बढ़ते बढ़ते यहाँ तक बढ़ जाती है कि द्वैत भाव में दुखी करती है। जिस साधु ने गुफा में से म उच्चारण किया था वह साधु वेद है, जिसमें मन्त्र का उच्चार हुआ वह अधिष्ठान ब्रह्म है, मृत्तिका आत्म तत्व है, और पां मित्र माया के भाव से उत्पन्न हुए, पाँच महाभूत स्वरूप पां कोश हैं। आकाश तत्त्व का आनन्दमय कोश सब का अवका देने रूप सेवा का कार्य करने वाला होने से नौकर है, वायु विज्ञानमय कोश वस्तुओं को इधर उधर कर देने वाला होने साहूकार है; अग्नि का मनोमय कोश, अग्नि तेज स्वरूप औ और प्रकाश वाला होने से सरदार है; प्राणमय कोश जल स्व सब को व्यवस्था ठीक करने वाला होनें से प्रधान है; और अ मय कोश पृथ्वी तत्त्व स्वरूप सब से विशेष भारी स्थूल औ मुख्य होनें से राजा है। जिस प्रकार साधु के उच्चारण किये हु मंत्रों ने अधिष्ठान रूप तत्त्व में कल्पना के दूसरे चित्र उत्पन्न कि थे इसी प्रकार कोश आत्मा को ढककर उसमें काल्पनिक स्व खड़े कर देते हैं। जैसे एक एक मंत्र क्रम क्रम से उत्तरोत्तर स् भाव में लाने का कारण हुआ और जैसे सजीव करने वाले पां मंत्र के बिना और मंत्र कार्य करने में समर्थ न हुए इसी प्रक अन्नमय कोश बिना ऊपर के कोश कर्ता भोक्ता बनने योग्य नहीं होते। अन्नमय कोश रूप अभिमान वाले रा नें जब अपना मंत्र पढ़ा-अभिमान दृढ़ किया तब पांचों क

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूप पाँचों मित्रों का क्षय होकर स्थूल शरीर रूप सिंह अवशेष रहा। पंच कोश रूप सिंह वेद रूप कर्म भाव से बना है। सिंह के मूल तत्त्व रूप मृत्तिका—आत्मा में किंचित् विकार न हुआ। क्रम २ से पंच कोश मिलने से सिंह की आकृतियों में अन्तर होता गया। आकृतियां सब कल्पित हैं, अन्तिम सिंह रूप सजीव आकृति भी कल्पित है। कल्पित का भाव इतना दृढ़ हो गया कि कल्पित आकृतियाँ सच्ची बन गईं और उन्होंने यथार्थ तत्त्व को इतना ढक दिया कि वह प्रसिद्ध मृत्तिका होते हुए भी अप्रसिद्ध सिंह बन गया।

कोश रूप पाँच मित्र और सिंह रूप स्थूल शरीर से मृत्तिका रूप आत्म तत्त्व भिन्न है, इसलिये पंच कोश वाला स्थूल शरीर आत्मा नहीं है, और स्थूल शरीर कल्पना का होने से सत्य स्वरूप आत्मा का उससे कुछ सम्बन्ध नहीं है। इसलिये अन्नमय कोश 'मैं' अथवा 'मेरा' नहीं है और जो उसे 'मैं' अथवा 'मेरा' मान कर बर्तता है उसको कष्ट ही प्राप्त होता है।

पँच कोश एक दूसरे में किस प्रकार रहते हैं यह समझाने के लिये ऊपर का दृष्टांत दिया है। जिस अंश में दृष्टांत दिया गया है उसी अंश में उसका तात्पर्य निकालना चाहिये। सब अंशों में एक सा मिलने वाला आत्म बोध का कोई दृष्टांत नहीं है। अन्नमय कोश का अभिमान अभिमानी को दुःख में डालने वाला हैं, उसको आत्मा से पृथक करके समझना चाहिये। अन्नमय कोश भौतिक है, माया का है। जब तक उसका भाव—अभिमान है तब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

तक माया, संसार और उसके दुःखों में से किसी की भी निवृत्ति नहीं होती, ब्रह्म प्राप्ति स्वरूप ज्ञान से ही दुःखों की निवृत्ति होती है। अन्नमय कोश का भान–अभिमान ज्ञान को रोकने वाला है इसलिये विवेकी पुरुषों को अन्नमय कोश आत्मा से पृथक् समझना चाहिये।

अथवा ऐसा समझो कि पाँच कटोरदान हैं जो क्रम से एक दूसरे से छोटे हैं। पाँचों बन्द करके एक एक के भीतर रक्खे हैं सब से भीतर रक्खे हुए कटोरे में एक हीरा रक्खा है। हीरा आत्मा है और पांच कटोरे पाँच कोश हैं। ऊपर वाला सब से बड़ा कटोरा अपने से छोटे चार कटोरों को और हीरे को छुपा देता है और आप ही देखने में आता है। इसी प्रकार अन्नमय कोश भी प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोशों को आत्मा सहित छुपा कर आप ही देखने में आता है।

अन्य प्रकार से ऐसे समझो कि जाड़े की ऋतु में शिमला जैसे पहाड़ पर कोई सो रहा है, शिर से पैर तक कपड़े ओढ़े हुए है। सब से प्रथम एक महीन कपड़ा ओढ़ा है, उसके ऊपर मलीदा है, उसके ऊपर रेशमी अन्डी है, उसके ऊपर कानपुरी धुस्सा है और सब से ऊपर एक कम्बल है। इस प्रकार ओढ़ कर सोने से मोटे कम्बल के सिवाय और कपड़ा नहीं दीखता और सोने वाला स्वयं भी नहीं दीखता इसी प्रकार अन्नमय कोश चारों कोशों और आत्मा को छुपाकर आप ही दीखने में आता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथवा यों समझो कि किसी किसान ने अपने खेत में गेहूँ बोये हैं, बोया हुआ गेहूँ जो ऊपर से नहीं दीखता उसे आत्मा समझो। पृथ्वी जो दीखती है उसको आनन्दमय कोश समझो, पश्चात् वायु, जल और प्रकाश से जो अंकुर निकलता हैं उसे विज्ञानमय जानो। बढ़ा हुआ अंकुर मनोमय कोश, बालें निकलना प्राणमय कोश और बालों के भीतर जमे हुए गेहूं को अन्नमय कोश समझो। इसने अपने ऊपर के चारों कोशों के भाव को छुपा लिया है और आप ही दीखता है यद्यपि यह पूर्व के चारों कोशों सहित है।

इन दृष्टांतों से समझ में आ गया होगा कि आत्मा भिन्न है और कोश भिन्न हैं। आत्मा के प्रकाश से कोश प्रकाशित होते हैं किंतु कोश आत्मा नहीं हैं। इसी प्रकार कोश आत्मा के भी नहीं हैं, क्योंकि दोनों समानता वाले नहीं हैं। आत्मा सत् पदार्थ है, कोश कल्पित हैं, फिर दोनों का सम्बन्ध किस प्रकार हो ? संबंध न होते हुए भी सम्बन्ध मानना अथवा अन्नमय कोश को ही आत्मा मानना भूल है। इस भूल के कारण संसार में दुःख भोगना पड़ता है। परलोक के मानने वाले सभी आस्तिकों को अन्नमय कोश रूप शरीर से आत्मा को पृथक मानना इष्ट है।

एक मनुष्य एक संत के पास गया और प्रणाम करके बैठ गया। फिर संत और उस मनुष्य में यह बात चीत हुई:–संतः– भाविक ! तूने किसको प्रणाम किया है ? मनुष्यः– (हाथ जोड़ कर) महाराज, आपको ! संतः—मैं कौन हूँ ? जिसको तूने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

प्रणाम किया। मनुष्यः—आप महात्मा हैं। संतः—महात्मा का
है? मनुष्यः—आप हैं। संतः—मैं कहाँ हूं? मनुष्यः—आप मे
सामने विराजमान हैं। संतः—(अपने नीचे के आसन को हा
लगा कर) तेरे सामने तो यह मृग चर्म है, क्या यह ही महात्
है? मनुष्यः—नहीं, वह तो मृग चर्म है, महात्मा तो आप हैं
संतः—मृग चर्म महात्मा नहीं है तो क्या नर चर्म महात्मा है
मृग चर्म के ऊपर नर चर्म विराजमान है, क्या तूने उसी
प्रणाम किया है? मनुष्यः—नहीं, महाराज! सन्तः—तो जिस
तूने प्रणाम किया है उसको दिखला। मनुष्यः—(घबरा कर
आप सब कुछ जानते हैं, मैं क्या कहूं? संतः—अच्छा, यदि तू
जिसको प्रणाम किया है उस महात्मा को नहीं दिखला सक
तो जिसने महात्मा को प्रणाम किया है उसको ही दिखला
मनुष्यः—मैंने प्रणाम किया है। मैं आपके सामने बैठा हूँ। सन्तः-
मेरे सामने तो अन्न से बने हुए अस्थि, मांस, मेद, रक्त, मज्ज
स्नायु आदिक का पुतला है। क्या वही तू है? मनुष्यः—
महाराज। सन्तः—अरे मूर्ख! तू अपने को हड्डी आदिक
पुतला बताता है। यदि कोई तेरे सामने गीली हड्डी माँस लावे
क्या तू दूर नहीं भागेगा? मनुष्यः—(हाथ जोड़ कर) महाराज
ये पदार्थं अपवित्र हैं। दुर्गंधियुक्त हैं। मैं उन्हें देख कर अवश
भागूंगा। उन्हें देख कर मुझे घृणा होगी। सन्तः—तब क्या
अपने को भी उन्हीं दुर्गंधित पदार्थों का बना हुआ समझता
क्या ऐसा घृणित पदार्थ ही तू है? मनुष्यः—(थोड़ी देर सो
कर) मैं हड्डी मांस का बना हुआ हूं तो भीं मुझमें जीव है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मा है, इसलिये वह अपवित्र नहीं। सन्त:—क्या शरीर में जीव भी है ? मनुष्य:-हां महाराज। सन्त:-क्या वही जीव तू नहीं है ? क्या तू हड्डी मांस का पुतला ही है ? मनुष्य:- (लज्जित होकर) नहीं महाराज, मैं शरीर नहीं हूं। मैं तो जीव हूं। संत:- (मुसकरा कर) प्रथम तो तू शरीर बनता था, अब शरीर को छोड़ कर जीव बनता है। तू शरीर नहीं है, यह तू आप ही स्वीकार करता है, तब तेरे शरीर पर मार पीट हो तो तुझको क्या ? शरीर अलग है। तू अलग है। मनुष्य:-मैं शरीर नहीं हूँ परन्तु शरीर मेरा है इसलिये शरीर का दुःख मुझको-जीव को होता है। सन्त:-क्यों ? मनुष्य:-क्योंकि शरीर से मेरा सम्बन्ध है। सन्त:-किस प्रकार का सम्बन्ध है ? जीव देखने में नहीं आता, शरीर देखने में आता है, दोनों का सम्बन्ध किस प्रकार हो सकता है ? मनुष्य:-जब जीव का सम्बन्ध शरीर से नहीं रहता तब शरीर अपवित्र हो जाता है-मृतक हो जाता है इससे अनुमान होता है कि उसमें जीव है, उसके होने से ही मनुष्य जीवित कहलाता है, जब वह नहीं होता तो मृतक कहलाता है। सन्त:-क्या जीव कहीं चला भी जाता हैं ? मनुष्य:-अवश्य चला जाता है, जब वह चला जाता है तब शरीर निर्जीव होजाता है। सन्त:-जीव कहां चला जाता है ? मनुष्य:-मालूम नहीं। वह जाता हुआ दीखता नहीं। सन्त:-शरीर में टिका हुआ तो शरीर के भीतर होने से नहीं दीखता। शरीर में से निकलता हुआ तो दीखना चाहिये। मनुष्य:-आप सब कुछ जानते हैं। शास्त्र ज्ञान और अनुभव दोनों ही आपको प्रत्यक्ष हैं। आप मुझसे यों ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

पूछ रहे हैं। सन्तः—यों ही नहीं पूछता हूं, पूछने का कारण है तेरी समझ में आजाय इसलिये पूछता हूँ। जैसा तेरी समझ में आवे वैसा उत्तर देता जा। जाता हुआ जीव क्यों नहीं दीखता? मनुष्यः—यह तो आप ही जानते होंगे। सन्तः—मैं तो जानता हूँ। तू जैसा जानता हो वैसा उत्तर दे। मनुष्यः—बहुत सूक्ष्म होने से दिखाई नहीं पड़ता होगा। आज तक किसी ने जाते हुए जीव को नहीं देखा है। सन्तः—तेरे कहे अनुसार जब जीव शरीर में से चला जाता है तब शरीर में से क्या कम हो जाता है? मनुष्यः—कोई भी अंग कम नहीं होता, शरीर ज्यों का त्यों बना रहता है श्वास आना जाना बन्द हो जाता है। संतः—तब क्या श्वासोश्वास जीव था? मनुष्यः—(घबरा कर) मैं नहीं जानता वह ही है या और है। आप ही समझाइये। सन्तः—श्वास का आना जाना पूर्ण समाधि में बन्द हो जाता है तब क्या जीव नहीं रहता? ऐसा नहीं है जो जीव चला जाता होता तो क्रिया किस प्रकार करता? यदि ऐसा कहा जाय कि उतने समय को चला जाता है तो ऐसा होने पर शरीर मृतक हो जाता, परन्तु वह मृतक नहीं होता, इसलिये प्राण जीव नहीं है और जब तू जीव को जानता ही नहीं तो उसका और शरीर का संबंध कैसे बताता है? जिस प्रकार तू शरीर नहीं है इसी प्रकार तेरा और शरीर का संबंध भी नहीं है इसलिये शरीर तेरा नहीं है। मनुष्यः-जब मैं और मेरा शरीर नहीं हैं तो शरीरके सुख दुःखका भान मुझे क्यों होता है? दुःख तो संबंध से ही होता है। संतः—ठीक है, सम्बन्ध बिना दुःख नहीं होता, सम्बन्ध न होते हुए भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि सम्बन्ध मान लिया जाय तो दुःख होता है या नहीं ? मनुष्य :—जो संबंध मान लिया जाता है तो दुःख अवश्य होता है। संत :—इसी कारण दुःख होता है। शरीर और आत्मा का संबंध नहीं है, अज्ञान के कारण सम्बन्ध मान लिया है इसलिये दुःख भोगना पड़ता है। मनुष्य :—(आश्चर्ययुक्त हो कर) तो क्या शरीर और आत्मा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ? बड़ा आश्चर्य है ! सम्बन्ध न होते हुए भी कितना गाढ़ा सम्बन्ध हो गया है। यदि सम्बन्ध न मानें, तो क्या दुःख न होगा। संत :—कभी नहीं होगा। जब किसी कारण से किसी मनुष्य के शरीर में से किसी अंग के काटने की आवश्यकता होती है तो डाक्टर एक प्रकार की औषधि (Chloroform) सुंघा देता है उससे जिस बुद्धि कर के आत्मा और शरीर का सम्बन्ध माना था वह सम्बन्ध मानने वाली बुद्धि थोड़ी देर को दब जाती है, जिस से उस समय जीव को दुःख का भान नहीं होता। उस समय भी आत्मा और शरीर दोनों ही होते हैं। उन दोनों का जो वास्तविक सम्बन्ध होता तो उस समय भी दुःख का भान होता, परन्तु नहीं होता इसलिये उन दोनों का सम्बन्ध माना हुआ कल्पित है। ज्ञानी इस सम्बन्ध को जितना न्यून कर देता है उतना ही दुःख न्यून मालूम होता है। विदेहमुक्त महात्माओं को शरीर का किंचित् भी दुःख नहीं होता। उन्हें अपना और दूसरों का शरीर मालूम ही नहीं होता। मनुष्य :—महाराज, अब मेरी समझ में आया कि मैं शरीर नहीं हूं और शरीर मेरा भी नहीं है। मेरा और उसका कुछ सम्बन्ध नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

सूक्ष्म शरीर

सूक्ष्म शरीर तीनों शरीरों में मध्य का है। स्थूल शरीर से सूक्ष्म होने के कारण वह सूक्ष्म शरीर कहलाता है। स्थूल शरीर को सब प्रकार की सत्ता सूक्ष्म शरीर से मिलती है। यदि स्थूल शरीर में शूक्ष्म शरीर न हो :—उससे पृथक् हो तो स्थूल शरीर निर्जीव, मृतक, अथवा मिट्टी कहलावे। स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर होने से ही वह सजीव कहा जाता है। कर्ता भोक्ता के भाव वाला सूक्ष्म शरीर है। स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर के मकान अथवा कपड़े के समान है। जब तक आवश्यकता होती है तब तक सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर को धारण किये रहता है, आवश्यक भोग पूर्ण हो जाने पर वह पृथक् होकर भोग भोगने योग्य अन्य अनुकूल शरीर धारण कर लेता है। इसलिये यदि विचार कर देखा जाय तो सूक्ष्म शरीर ही वास्तविक शरीर है, स्थूल शरीर तो केवल उसका-स्थान रूप ज्ञान और क्रिया का साधन मात्र है। सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म हो कर भी जब स्थूलता रहित स्वप्नावस्था में आता है तब सूक्ष्म न दीखता हुआ स्थूल रूप से ही दिखाई देता है। स्थूल शरीर की अपेक्षा वह सूक्ष्म है और कारण शरीर की अपेक्षा स्थूल है।

जो कुछ जगत् देखने में आता है वह सूक्ष्म शरीर की छाया मात्र है। जैसे जब दर्पण में रूप देखते हैं तब अपना मुख अपने पास होता हुआ भी बाहर दर्पण में दीखता है इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर में संसार दीखता है। बाहर दीखने वाला संसार उसी का आभास है, सब संसार हमारी वासना-भावना का ही दृश्य है परन्तु बाहर की दृष्टि होने से बाहर दीखता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थूल शरीर उत्पत्ति नाश वाला सबको मालूम होता है, परंतु सूक्ष्म शरीर को उत्पत्ति तथा नाश मालूम नहीं होता। स्थूल शरीर के समान सूक्ष्म को उत्पत्ति नाश है भो नहीं। स्थूल शरीर की उत्पत्ति नाश के साथ उसकी उत्पत्ति अथवा नाश नही होता, क्योंकि अनादि अविद्याकृत होने से वह आदि रहित है, इसी लिये जब तक अज्ञान रहता है तब तक उसका नाश नहीं होता। वह वासनामय है, इसलिये वासनाओं के बदलने से वासनाओं के भाव से रूपांतर वाला अवश्य है, परन्तु उसका नाश कभी नहीं होता। वह स्थूल शरीर की सहायता बिना कार्य नहीं कर सकता, और अपने कारण रूप कारण शरीर से कभी भिन्न नहीं होता– सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर दोनों साथ ही साथ रहते हैं।

जब ज्ञानाग्नि से सूक्ष्म शरीर की समग्र वासनाओं का नाश हो जाता है तब कारण शरीर सहित उसका नाश होता है। कारण शरीर सूक्ष्म शरीर का कारण होकर भी कर्ता भोक्ता के अभिमान रहित अज्ञान का होने से उससे संयुक्त रहता है। सुषुप्ति अवस्था जो कारण शरीर की स्वतन्त्र अवस्था है उसमें भी वह सूक्ष्म शरीर से भिन्न नहीं होता, किंतु सुषुप्ति के विशेष प्रभाव से सूक्ष्म शरीर दब जाता है।

स्थूल शरीर का नाश होना नाश नहीं है किंतु अज्ञान की ग्रंथि रूप सूक्ष्म शरीर का नाश ही पूर्ण नाश है। वह अपंचीकृत पंच महाभूतों का बना हुआ होने से पंच महाभूतों में से भी कोई उसका नाश नहीं कर सकता किन्तु अज्ञान का बना हुआ होने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

से स्वरूप के ज्ञान होने से उसका नाश हो जाता है। वह अनादि कल्पित माया का है। जब स्वरूप के बोध होने से कल्पना का नाश हो जाता है तब कल्पना का होने से अनादि होते हुए भी कारण शरीर सहित उसका नाश हो ही जाता है।

सूक्ष्म शरीर त्रिगुणात्मक अप्रत्यक्ष पंच महाभूतों का बना हुआ है। जैसे स्थूल शरीर में पंच महाभूतों का एक दूसरे से मिल कर स्थूल भाव हुआ है सूक्ष्म शरीर में इस प्रकार नहीं है इसलिये सूक्ष्म शरीर स्थूल दृष्टि का विषय नहीं है। सूक्ष्म शरीर वासनाओं के फल को भोगने वाला, अनुभव करने वाला, और नूतन वासनाओं का उत्पन्न करने वाला है। कोई इसको लिंग शरीर भी कहते हैं। स्वस्वरूप के अज्ञान से वह आत्मा की अनादि दूसरी उपाधि है। पांच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच प्राण, पंचभूत, बुद्धि, अविद्या, काम और कर्म इन आठ का समुदाय रूप सूक्ष्म शरीर है, इसलिये इसको पुर्यष्टका भी कहते हैं। इन्द्रियों के अध्यात्मिक, अधिदैविक और अधिभौतिक तीन रूप हैं। वाक्, पाणि, पाद, शिश्न और गुदा कर्मेन्द्रियों का आध्यात्मिक स्वरूप है। अग्नि, इन्द्र, विष्णु, प्रजापति और मृत्यु अधिदैविक स्वरूप है और बोलना, लेना देना, चलना, आनन्द और मल त्याग अधिभौतिक स्वरूप है। इनको विषय भी कहते हैं। वे क्रम से पाँच भूतों से हैं। ज्ञानेन्द्रियों की त्रिपुटी इस प्रकार है:—श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, और घ्राण अध्यात्म हैं, दिशा, वायु, सूर्य, वरुण और अश्विनी कुमार अधिदेव हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध अधिभूत हैं। ये पाँचों विषय भी क्रम से पांच भूतों से हैं।

कर्मेंद्रियों की त्रिपुटी का कोष्टक

भूत	अध्यात्म	अधिदेव	अधिभूत
आकाश	वाक्	अग्नि	बोलना
वायु	पाणि	इन्द्र	लेना देना
तेज	पाद	विष्णु	चलना
जल	शिश्न	प्रजापति	आनन्द
पृथ्वी	गुदा	मृत्यु	मल त्याग

वाक् मुख को, पाणि हाथ को, शिश्न लिङ्गेन्द्रिय को और आनन्द विषय भोग को कहते हैं।

ज्ञानेन्द्रियों की त्रिपुटी का कोष्टक

भूत	अध्यात्म	अधिदेव	अधिभूत
आकाश	श्रोत्र	दिशा	शब्द
वायु	त्वचा	वायु	स्पर्श
तेज	चक्षु	सूर्य	रूप
जल	जिह्वा	वरुण	रस
पृथ्वी	घ्राण	अश्विनो कुमार	गंध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

श्रोत्र कर्ण को, त्वचा चमड़ी को, जिह्वा जीभ को औ घ्राण नासिका को कहते हैं।

अध्यात्मिक इन्द्रियाँ अति सूक्ष्म हैं। अधिदेव शक्तियों क कहते हैं, वे सूक्ष्म हैं। अधिभूत विषयों को कहते हैं वे स्थूल है जैसे धातु अध्यात्म है, उसके पत्र अधिदेव हैं और उसका ब हुआ कटोरा अधिभूत है। उपरोक्त कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रि जब त्रिपुटी सहित होती हैं तभी कार्य कर सकती हैं। इन्द्रि के गोलक (द्वार) स्थूल हैं।

पाँच प्राण इस प्रकार हैं:—प्राण, अपान, समान, उदान औ व्यान। प्राण हृदय स्थान में रहता है। दिन रात में २१६० श्वासोश्वास लेना उसका काम है, जल उसका तत्त्व है। अपा गुदा स्थान में रहता है, मल त्याग उसका काम और तत्त्व पृथ्व है। समान नाभिस्थान में रहता है, खाये पिये अन्न जल क जठराग्नि में पचाना और प्राण, अपान को समान रखकर चेष्ट कराना उसका काम और तत्त्व वायु है। उदान का स्थान क है, पचे हुए अन्न जल का विभाग करना और कंठ में रहने वा हिता नाड़ी द्वारा स्वप्न दिखाना, हिचकी और उत्क्रमण (मृ समय शरीर से निकलना) उसकी क्रिया है और तत्त्व तेज है व्यान शरीर के सब भागों में व्याप्त होकर रहता है, संधियों मोड़ कर उनसे क्रिया कराना उसका काम और तत्त्व आकाश है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राणों की त्रिपुटी का कोष्टक।

प्राण	स्थान	क्रिया	तत्त्व
प्राण	हृदय	श्वासोश्वास	जल
अपान	गुदा	मलत्याग	पृथ्वी
समान	नाभि	समानता	वायु
उदान	कंठ	उत्क्रमण	तेज
व्यान	सर्व शरीर	संधियों को मोड़ना	आकाश

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पांचभूत हैं, इनको तत्त्व भी कहते हैं। सूक्ष्म शरीर के ये पांचों अपंचीकृत पांच तत्त्व हैं; पृथ्वी तत्त्व कठिन, जल तत्त्व गीला और प्रवाही, तेज तत्त्व गरम, वायु तत्त्व बहने वाला और आकाश तत्त्व अवकाश देनें वाला है। बुद्धि बोध करती है। अविद्या अज्ञान है जो ज्ञान को ढांप कर और का और दिखलाती है। काम अनेक प्रकार की कामनायें-इच्छायें हैं। कर्म, कामनाओं के निमित्त की हुई क्रिया को कहते हैं। बुद्धि, अविद्या, काम और कर्म दूसरी रीति से समझाये जाय तो अन्तःकरण है। चार प्रकार कार्य करने से एक ही अन्तःकरण चार प्रकार का है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार चारों अन्तःकरण के नाम हैं। ये चारों अध्यात्मिक कहे जाते हैं। चन्द्र, ब्रह्मा, नारायण और रुद्र उनके अधिदेव हैं, और संकल्प विकल्प, निश्चय, चिंतवन और अहंभाव अधिभूत हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अन्तःकरण की त्रिपुटी का कोष्टक ।

अध्यात्म	अधिदेव	अधिभूत
मन	चन्द्र	संकल्प विकल्प
बुद्धि	ब्रह्मा	निश्चय
चित्त	नारायण	चितवन
अहंकार	रुद्र	अहंभाव

पुर्यष्टका (सूक्ष्म शरीर) में जो बुद्धि, अविद्या, काम, क कहे हैं वे अन्तःकरण इस प्रकार समझने चाहिये :—कर्म मन है बुद्धि बुद्धि है, काम चित्त है और अविद्या अहंकार है। मन च रूप दैवत (शक्ति) के सहारे से संकल्प विकल्प करता है, बु ब्रह्मारूप दैवत की सहायता से निश्चय करती है, चित्त नाराय रूप दैवत के सहारे चितवन करता है और अहंकार रुद्र रूप दैव की मदद से अहंभाव करता है। जैसे ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रि ज्ञान और क्रिया के बाहर के साधन (करण) हैं वैसे ही अन्त करण भीतर के सूक्ष्म ज्ञान के साधन (करण) हैं। ज्ञानेन्द्रि और कर्मेन्द्रियां बाहर कार्य करने के औजार हैं और अन्तःकर भीतर कार्य करने के औजार हैं। ये भी अध्यात्म, अधिदेव अ अधिभूत त्रिपुटी युक्त ही कार्य कर सकते हैं। मन सूक्ष्म होने देखने में नहीं आता, परन्तु संकल्प विकल्प रूप कार्य करते उसका कर्ता मन है ऐसा जाना जाता है। इसी प्रकार निश्च करने वाली बुद्धि, चितवन करने वाला चित्त और अहंभा करने वाला अहंकार जाना जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूक्ष्म शरीर का पंचभूतात्मक कोष्टक ।

भूत	अंतःकरण	प्राण	ज्ञानेन्द्रिय	कर्मेन्द्रिय	विषय
आकाश	+	व्यान	श्रोत्र	वाचा	शब्द
वायु	मन	समान	त्वचा	हाथ	स्पर्श
तेज	बुद्धि	उदान	चक्षु	पाद	रूप
जल	चित्त	प्राण	जिह्वा	शिश्न	रस
पृथ्वी	अहंकार	अपान	घ्राण	गुदा	गन्ध

सूक्ष्म शरीर का कौन कौन सा भाग किस किस तत्व के अंश वाला है इसका विवेचन इस प्रकार है :—सूक्ष्म शरीर का कंठ स्थान; मध्यमा, वाचा, सूक्ष्म भोग, ज्ञान शक्ति, गुण रज, उकार मात्रा और तैजस जीव अभिमानी है। स्वप्नावस्था में जब स्थूल शरीर का भान नहीं होता तब जो रहता है वह सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीर समझने के लिये स्वप्न पृथक् अवस्था है। स्थूल शरीर के कंठ देश में जो हिता नाडी है उसमें स्वप्न देखने में आता है। स्वप्न का सब दृश्य सूक्ष्म शरीर में होता है—दीखता है। वाचा जो कंठ में रहती है मध्यमा कही जाती है. वह न तो पूर्ण बाहर ही होती है न पूर्ण भीतर ही होती है इसलिये मध्यमा कहलाती है। स्वप्न में जो बोलना होता है वह इस वाचा से ही होता है। सूक्ष्म शरीर में सुख दुःखादिक के जितने भोग होते हैं वे स्थूल शरीर के भोगों की अपेक्षा से सूक्ष्म हैं इसलिये सूक्ष्म भोग कहलाते हैं। ज्ञान शक्ति सूक्ष्म शरीर में होती है, स्थूल शरीर में जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ज्ञान शक्ति मालूम होती है वह इसी शरीर में से आती है इस लिये उसी की है, गुण रज है क्योंकि स्वप्न का जितना दृश्य है वह सब चंचलता में होता है। ॐकार जैसे ब्रह्मांडमय है इसी प्रकार शरीरमय है इसलिये स्थूल शरीर की मात्रा अकार है और सूक्ष्म शरीर की उकार है। सूक्ष्म शरीर में अभिमान करने वाला जो जीव है उसे तैजस कहते हैं क्योंकि वह तेज में ही अनेक प्रकार के प्रपंच के दृश्य को जानता है और उसका अभिमान करता है।

सूक्ष्म शरीर माया के सत्, रज और तमोगुण से सूक्ष्म युक्त है। कौन कौन गुणों से कोन कौन भोग युक्त हैं इसके जानने का यह प्रकार है:—अन्तःकरण और पांच ज्ञानेन्द्रियां सतोगुण की हैं, इसी से अन्तःकरण सतोगुण का कार्य कहलाता है। पाँच प्राण और कर्मेन्द्रियां रजोगुण से बनी हैं और पाँचों विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध तमोगुण के हैं।

सूक्ष्म शरीर का त्रिगुणात्मक कोष्टक

	भूत	आकाश	वायु	तेज	जल	पृथ्वी
सत्	अन्तःकरण	—	मन	बुद्धि	चित्त	अहंकार
	ज्ञानेन्द्रिय	श्रोत्र	त्वचा	चक्षु	जिह्वा	घ्राण
रज	प्राण	व्यान	समान	उदान	प्राण	अपान
	कर्मेन्द्रिय	वाचा	पाणि	पाद	शिश्न	गुदा
तम	विषय	शब्द	स्पर्श	रूप	रस	गंध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरी प्रकार से सूक्ष्म शरीर सत्तरह तत्त्वों का कहा जाता है, उनमें उपरोक्त सब विस्तार का समावेश हो जाता है। सत्त-रह तत्त्व इस प्रकार हैं:—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि। सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म भोग वाला है, अपंचीकृत पंच भूतों का बना हुआ और वासनामय है; चित्त और अहंकार का समावेश बुद्धि में हो जाता है, इस प्रकार सूक्ष्म शरीर कारण शरीर से सत्ता पाकर स्थूल शरीर को सत्ता देकर चेष्टा वाला बनाता है।

जिस प्रकार स्थूल शरीर तू नहीं है, ऐसे ही सूक्ष्म शरीर भी तू नहीं है। ऊपर सूक्ष्म शरीर का जो वर्णन है वह सब माया में ही है तू माया से परे है। सूक्ष्म शरीर अनेक विकारों वाला है तू विकार रहित है। सूक्ष्म शरीर स्थूल दृष्टि का विषय नहीं है तो भी बुद्धि से जाना जा सकता है; तू बुद्धि से भी परे है इस-लिये सूक्ष्म शरीर तू नहीं है। सूक्ष्म शरीर मायिक पदार्थों की वासना का है, तू वासना रहित है।

शिष्य:—महाराज! मैं वासनारहित किस प्रकार हूँ? मुझमें तो अनेक वासनायें भरी हुई हैं। संत:नहीं, मुझमें वासना नहींहै! वासना अज्ञानकी है इसलिये अज्ञानरूप सूक्ष्मशरीर में ही वह ठहर सकती है, तुझ ज्ञान स्वरूप में नहीं ठहर सकती। अज्ञान के साथ एकता का भाव होने से अज्ञान में ठहरी हुई; वासनायें तुझे अपने में मालूम होती हैं। जैसे अँधेरे आदि कारण से जब रस्सी में सर्प दिखाई देता है तब मुख, नेत्र आदिक रस्सी में न होते हुये भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जिस प्रकार दीखने लगते हैं वैसे ही वासनायें तुझे ज्ञान स्वरू में होते हुए भी मालूम होने लगी हैं। तू असंग है, भला, असं को वासना का संग किस प्रकार हो सकता है। सूक्ष्म शरीर को स्वतंत्र समझने की स्वप्नावस्था है। जब स्वप्नावस्था होती है तब सर्व का साक्षी बुद्धि उपाधि वाला आत्मा आप ही प्रकाशित होता है और वहां बुद्धि जो जो कार्य करती है उनके दोषों से वह (आत्मा) दूषित नहीं होता। यदि किसी को ऐसा स्वप्न आवे कि अमुक मनुष्य से मैं पांच सौ रुपये लेकर दस्तावेज लिख आया और रुपये खर्च हो गये। जब वह मनुष्य जागता है तब अपने को ऋणी (करजदार) नहीं मानता। इसी प्रकार असंग आत्मा जो वस्तुतः वासना वाला नहीं है, अज्ञान से अपने को वासना वाला मानता है। जब वह आत्म स्वरूप में जागता है तब जानता है कि उसमें वासनाओं का लेश भी नहीं था, तू असग है इसलिये सूक्ष्म शरीर तू नहीं है।

सूक्ष्म शरीर जीवात्मा के कार्य करने का औजार है। जैसे बढ़ई लकड़ीको आरीसे चीर, बसूले से छील और बरमेसे छेदकर चौखट बनाता है और हथौड़ी से कीलें ठोंक कर उन्हें दृढ़ करता है इसी प्रकार जीवात्मा बढ़ई है, मन आरी है, बुद्धि बसूला है चित्त बरमा है और कीलादिक से दृढ़ करने वाला अहंकार है। जैसे बढ़ई अपने सब औजारों से पृथक है, औजार नहीं हो सकता इसी प्रकार आत्मा सूक्ष्म शरीर नहीं है। औजार चलाने वाला औजार किस प्रकार हो सकता है। औजार के साथ एक भाव करने से औजार ही हो ऐसा अज्ञान से मालूम होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो यह कहा जाय कि इन्द्रियाँ हमारी होने से जब वे जाती रहती हैं तव मैं ऐसा क्यों मानता हूँ कि अंधा हूं, मैं पंगु हूं, मैं वहरा हूं इत्यादि तो उसका उत्तर सुनः-यह तेरा अज्ञान है। नेत्रों आदिक के अंधत्व, मंदत्व आदि धर्म तेरे धर्म नहीं हैं, वे सब इन्द्रियों के धर्म हैं। वे तेरे धर्म न होने से तू अंधा, वहरा आदि कभी नहीं होता। श्वासोश्वासादिक जितनी क्रियाऐं चैतन्य के समान दिखाई देती हैं, वे प्राण के धर्म हैं तेरे नहीं हैं, क्योंकि तू असंग है।

यदि तू ऐसा कहे कि उन्हें तो आप जड़ बताते हो और जड़ अपने आप क्रिया नहीं कर सकता तो वे किस प्रकार चेष्टा करते हैं, तो सुनः-जड़ चैतन्य की सत्ता पाकर चैतन्य के समान कार्य करते दीखते हैं। उनमें तेरी सत्ता अवश्य है परन्तु वह सत्ता सामान्य है, अनेक प्रकार की न्यूनाधिक चेष्टा करने वाला तू नहीं है। जो अनेक प्रकार की चेष्टा करता है वह अज्ञान का बना हुआ जीव भाव है, वह भाव तू नहीं है। 'सूक्ष्म शरीर मैं हूं' ऐसा तेरा भाव वन्धन है। यह भाव मिथ्या होते हुए भी सत्य दीखता है। उसकी सत्यता इतनी दृढ़ीभूत होगई है कि उसके मिथ्या होने का स्वप्न में भी विचार नहीं होता। यह सब अज्ञान का प्रभाव है। विचार करके देखने से अज्ञान का सूक्ष्म शरीर और कर्ता भोक्ता का भाव तुझमें नहीं है।

दूसरी प्रकार यों समझः-एक राजा है, उसके राज्य में एक महान् न्यायालय है, एक मनुष्य ने एक अर्जी लाकर चपरासी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

को दी, चपरासी ने क्लर्क को, क्लर्क ने सरिश्तेदार को और सरिश्ते-दार ने हाकिम को हाकिम ने 'हाँ' अथवा 'नहीं' अपनी इच्छा अनुसार हुकुम लिख दिया, और हस्ताक्षर कर दिये। राजा आत्मा है, अन्तःकरण रूप शरीर न्यायालय है, विचार अर्जी देने वाला है, मन चपरासी है जो विचार रूप अर्जी को बुद्धि रूप क्लर्क के पास ले जाता है, बुद्धि आगे पहुंचने योग्य है या नहीं ऐसा निश्चय करके, यदि आगे ले जाने योग्य होता है तब चित्त रूप सरिश्तेदार के पास पहुंचा देती है, चित्त चिंतवन करके यदि योग्य समझता है तो अहंकार रूपी हाकिम के पास ले जाता है जो 'हां' अथवा 'ना' हुकुम करके हस्ताक्षर कर देता है। न्यायालय राजा से भिन्न है, उसके अधिकारी नौकर राजा की सत्ता से काम करते हैं परन्तु अधिकारी और न्यायालय राजा नहीं हैं, इसी प्रकार अन्तःकरण काम करते हुए भी आत्मा नहीं है। सोच 'तू जो राजा' है तो न्यायालय रूप सूक्ष्म देह किस प्रकार हो सकता है! वह तुझ से पृथक् है।

अलखपुर का एक राजा अपना राज्य भली प्रकार किया करता था। एक साधु से उसकी मित्रता थी। एक बार साधु बहुत दिनों तक राजा के पास रहा, अन्त में जब वह जाने लगा तब उसने राजा को एक अपूर्व वस्तु देने का निश्चय किया और उसे एकांत में रात को अपने पास बुलाया। राजा, मशाल हाथ में लिये हुए एक हज्जाम को साथ लेकर साधु के पास पहुंचा। साधु ने हज्जाम को बाहर निकाल कर राजा को परकाया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रवेश करने की विद्या सिखाई जिसमें तुरंत के मरे हुए शरीर में अपने शरीर से निकल कर प्रवेश करना पड़ता था, पीछे यदि चाहे तो फिर पूर्व शरीर में प्रवेश किया जा सकता था तब वह शरीर निर्जीव हो जाता था। यदि मृतक शरीर में और कोई आकर प्रवेश कर जाय तो जब तक वह उसमें से न निकलता तब तक उसमें शरीर वाला प्रवेश नहीं कर सकता था। जब साधु ने राजा को यह विद्या सिखाई तब मशाल लाने वाला हज्जाम दीवार ने लग कर छुप कर सब बातें सुनता रहा, इस प्रकार राजा की सीखी हुई विद्या वह भी सीख गया। राजा अपने स्थान पर लौट आया और साधु चला दिया।

रानी के पास एक श्वेत कौवा था, जिसको वह बहुत ही प्यार करती थी, रत्न जटित सुवर्ण के पिंजरे में बन्द रखती थी। थोड़े दिन पीछे आयु पूरी होने पर कौवा मर गया, रानी बहुत दुखी हुई। राजा ने बहुत समझाया परंतु रानी न मानी। तब राजा ने कहा "हे प्रिये ! तू क्यों शोक करती हैं। एक पक्षी के लिये इतना शोक करना योग्य नहीं है ! ऐसे बहुत से कौवे मैं तुझे मंगवा दूंगा !" रानी ने कहा "स्वामिन् ! मुझे और कौवा नहीं चाहिये। मेरा कौवा ही सजीवन होना चाहिये ! एक दिन आपने कहा था मुझे सजीवन विद्या याद है ! अब इस कौवे को सजीवन कर दीजिये।" राजा ने कहा "प्रिये ! हठ क्यों करती है। मैं इसे सजीवन कर सकता हूं परंतु जब मैं अपने शरीर में से निकल कर उसमें प्रवेश करूंगा तब वह सजीवन होगा !" रानी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

को अपने प्यारे कौवे को एक बार सजीवन हुआ देखने
बहुत ही अभिलाषा थी, राजा की बात सुनकर "राजा अ
शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में किस प्रकार जाता है
यह देखने की भी इच्छा हुई। उसने राजा से कहा "प्राण वल्ल
आप थोड़ी देर के लिये कौवे के शरीर में प्रवेश करके फिर नि
आइये, मैं इतने ही में संतुष्ट हो जाऊंगी!" राजा ने जी में
"जब से साधु से विद्या सीखी है तब से कभी उसकी परी
करने का अवसर नहीं मिला, परीक्षा की परीक्षा हो जायगी, रा
भी प्रसन्न हो जायगी, एक पँथ दो काज!" यह विचार
राजा अपने शरीर में से निकलकर कौवे के शरीर में प्रवेश
गया। राजा का शरीर मृतक हो गया और कौवे का शरीर स
वन हो गया। हज्जाम वहां उपस्थित था, ये सब कृत्य दे
रहा। राजा को कौवे के शरीर में प्रवेश किया हुआ देख
विचारने लगा "राजा का शरीर मृतक पड़ा हुआ है, यदि मैं
में प्रवेश कर जाऊं तो राजा हो जाऊं। राजा का कुछ भी
न चलेगा। अवसर भी अच्छा मिल गया है, हाथ से खोना न
चाहिये!" ऐसा विचार कर हज्जाम राजा के मृतक शरीर
प्रवेश कर गया और राजा का शरीर सजीवन हो गया। कौ
रूप राजा ने जब यह कौतुक देखा तो बहुत ही घबराया और जी
कहने लगा "अब यह मुझे अवश्य मार डालेगा।" यह सो
कर कौवा उड़ कर भाग निकला। राजा रूप हज्जाम अपने मृत
शरीर को जलाने के लिये आज्ञा देकर राज काज करने लगा
इस प्रकार का वृत्तांत रानी और राजा के किसी नौकर को मालूम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुआ राजा कौवा होकर जंगल २ घूमता कष्ट पाने लगा और हज्जाम राज्य करने लगा।

शिष्य :—भगवन् ! इस राजा को उसका राज्य फिर भी कभी मिलेगा या नहीं ? संतः—हाँ, मिलेगा परन्तु बहुत कष्ट भोगने के पीछे राज्य की प्राप्ति होना संभव है। शिष्यः—भगवन् ! कृपा कर समझाइये उसका राज्य फिर कैसे मिलेगा। संतः—सुन, कौवा रूप राजा अनंत काल तक भटकता रहा, एक समय वह हिमालय पर्वत पर विचर रहा था, वहां एक स्थान पर एक सिद्ध योगी का निवास था। उस ने कौवे को देख कर दिव्य दृष्टि से जान लिया कि यह वास्तविक कौवा नहीं है और उसे अपने सतोगुण के प्रभाव-आकर्षण से अपने पास बुलाया। कौवा अपना राजा होना, परकाया में प्रवेश करने की विद्या सीखना, कौवे के मृतक शरीर में प्रवेश करना, और हज्जाम का राजा के शरीर में प्रवेश करना ये सब बातें बहुत दिन होने से भूल गया था, वह अपने को कौवा ही मानने लगा था। सिद्ध योगी ने कौवे को बुला कर मनुष्य की भाषा बोलने की शक्ति दी और दोनों में यह बात चीत हुईः—योगीः—तू कौन है ? कौवाः—महाराज ! में कौवा हूँ ! कौवे मेरे कुटम्बी हैं, कौवी मेरी स्त्री है, उसके बच्चे मेरे समान कौवे ही हैं। संतः—तू कौवा नहीं है, तू राजा है। कौवाः—मैं राजा किस प्रकार हूँ ? अनेक प्रकार के अपवित्र पदार्थ भोजन करता हूँ, भला फिर मैं राजा किस प्रकार हो सकता हूँ ? संतः—मैं सच कहता हूं तू कौवा नहीं है। तुझको कौवे के शरीर के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

साथ एक भाव हो गया है इसलिये कौवे का शरीर होने से अपने को कौवा मानता है, वास्तव में तू राजा है। कौवा (हंस कर) महाराज, मैं राजा हूं तो मुझे याद क्यों नहीं आती संत:-विशेष समय हो जाने से तुझे इसका लक्ष नहीं रहा इसलिये तुझे याद नहीं आती, यदि तू कौवे का भाव हटा और एकाग्र चित्त करके देखे तो तुझे मालूम हो जायगा कि कौवा नहीं है परन्तु राजा है। कौवा:-महाराज, कौवे का भाव किस प्रकार हटे और चित्त किस प्रकार एकाग्र हो ? मैं ऐसा नहीं कर सकता, कृपा करके आप बताइये। संत:-कौवे का भाव हट जायगा और चित्त भी एकाग्र हो जायगा, जैसे मैं कहूं वैसा कर, अभ्यास और वैराग्य दोनों का ग्रहण कर, कौवा और राजा की दशा-सृष्टि सब असत्य है, उस पर तिरस्कार करना वैराग्य है और ऐसा बारम्बार करने पर भी जब जब चित्त प्रपंच की सत्यता ग्रहण करे तब तब उसको हटाना अभ्यास है। इन दोनों को ग्रहण कर कौवे ने इस प्रकार करने को स्वीकार किया और वह संत के पास रहने लगा। इस प्रकार कुछ दिनों तक अभ्यास और वैराग्य करने से उसका चित्त एकाग्र हो गया और संत के उपदेश के अनुसार समाधि करने से उसको मालूम हो गया कि मैं कौवा नहीं हूं किन्तु राजा हूँ।

एक दिन उसने संत से कहा "महाराज, मुझे अब पूर्व स्मृति आती है, मैं राजा हूँ, रानी के प्रेम से उसे प्रसन्न करने के लिये मैं कौवे के शरीर में घुस गया था और उसी समय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लुच्चा हज्जाम मेरे मृतक शरीर में घुस गया। अब मुझे अपना पूर्व वृत्तांत का स्मरण हो रहा है, मैं आप की आज्ञानुसार वर्तने को तैयार हूं आपके ऊपर मेरी पूर्ण श्रद्धा है, आप तरण तारण हैं।" संत कौवे को लेकर राजा के राज्य में गया तो वहाँ क्या देखा कि हज्जाम मौज से राज्य कर रहा है। संत ने कौवे को अपने कपड़ों में छुपा कर एक वृक्ष के नीचे आसन लगाया, हजारों मनुष्य दर्शन करने आने लगे। एक बार रानी संत के दर्शनों को आई तब संत ने उससे कहा "बेटी! तू रानी है परन्तु तेरा सौन्दर्य रानी का सा नहीं है, तू तीन दिन का व्रत कर उसके प्रभाव से तू इन्द्र की अप्सरा समान सौन्दय वाली और बुद्धि वाली हो जायगी।" रानी ने यह बात हज्जाम राजा से कही, वह भी संत के पास आया। संत ने उससे कहा "हे राजा! कल तेरी रानी दर्शन करने आई थी, वह सामान्य स्त्री नहीं है, वह अलौकिक सुन्दरी है, पूर्व में उससे कुछ अपराध हो गया है इससे वह स्त्री हुई है, उसके निमित्त मैंने तीन दिन का व्रत बताया है, व्रत पूर्ण होने पर वह दोष निवृत्त हो कर परम सुन्दरी हो जायगी।" हज्जाम ने कहा, "महाराज! आप कृपा-निधान हैं, कहीं ऐसा न होय कि वह स्वर्ग में चली जाय। जो ऐसा हुआ तो मैं बहुत दुखी हूँगा।" संत ने कहा "इस बात की शंका मत कर, मैं प्रतिज्ञा कर कहता हूँ कि वह स्वर्ग में न जायगी, रानी को व्रत के अन्त में बलि देने के लिये एक बकरे की आवश्यकता है मैं उसे अभिमंत्रित करूँगा, तू सत्तरह विद्वान पंडित एकत्र करके भेज दे, मैं एक युक्ति बता दूँगा।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हज्जाम राजा ने संत का कहा हुआ सब सामान एकत्र किय और दूसरे दिन यज्ञ कुंड में बहुत सी आहुतियाँ दी गई। फि किसी युक्ति से बकरा मार दिया गया। राजा और रानी आश्च करने लगे। संत ने कहा "मंत्रित बकरे का मरजाना अ शकुन है, व्रत पूर्ण न हुआ, यदि यह बकरा सजीवन न हो तो राजा रानी पर बड़ी आपत्ति आवेगी। अब दूसरे बकरे संस्कार नहीं कर सकते। बलि भंग होने से यज्ञ भंग हो जाय और यज्ञ भंग होने से यजमान का भंग होगा। यदि थोड़ी दे के लिये भी बकरा सजीवन हो जाय तो यज्ञ सफल हो जाय। हज्जाम राजा सोचने लगा "थोड़ी देर का काम है। जब वह व के निमित्त से छोड़ दिया जायगा, तभी मैं उसके शरीर में निकल कर अपने शरीर में आ जाऊँगा।" यह विचार उसने संत से कहा "महाराज। थोड़ी देर के लिये मैं बकरे जिला सकता हूँ।" संत ने कहा "थोड़ी देर का तो काम ही यज्ञ सफल हो जाना चाहिये।" हज्जाम ने अपनी पुर्यष्टका रा के शरीर में से निकाल कर बकरे के शरीर में प्रवेश कर और कौवा रूप राजा जो संत के कपड़ों में छुपा हुआ थ कौवे के शरीर में से निकल कर राजा के शरीर में प्रवे कर गया। यज्ञ की शेष क्रिया की गई, बकरे के कान का कर राजा ने बाँध कर कैद कर लिया। इस प्रकार राजा अपना पूर्व शरीर प्राप्त किया।

सिद्धान्तः—जहाँ लक्ष पहुंचाना अशक्य है, उसे अलख कहते हैं, वहाँ का राजा आत्मा है, हज्जाम अज्ञान है, ज्ञान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रथम भाव की बुद्धि रानी है, सफेद कौवा रानी का प्रेम पात्र बुद्धि में पड़ा हुआ आभास, चिदाभास है। राजा जब तक अपने स्वभाव में स्थित रहा तब तक ही राजा था जब बुद्धि रूप रानी के प्रेम में आगया तब अपना स्वभाव भूल कर बुद्धि के अनुसार वर्तने लगा। बुद्धि के आत्माकार होने से एक समय चिदाभास कौवा दृष्टि न पड़ा–मर गया तब बुद्धि रूप रानी ने उसे सजीव करने की हठ की, राजा अपने में से निकल-अपने स्वरूप से हटा कर चिदाभास रूप कौवे में घुसा–कौवे के अभिमान वाला हुआ; तभी अज्ञान रूप हज्जाम राजा के भाव में स्थित हो गया। जब तक अज्ञान न हटा तब तक कौवा रूप चिदाभास-जीवभाव न मिटा और तब तक अनेक प्रकार के कष्ठ भोगता रहा। कौवे की देह में अध्यास दृढ़ होने से राजा अपने स्वरूप को भूल गया इसलिये जब संत ने उसे राजा बताया तब आश्चर्य करने लगा। ऐसी ही तेरी दशा है और जो जो अज्ञान में फँसे हुए हैं उनकी भी वही दशा है। अज्ञानी चिदाभास का यह ही स्वभाव है कि जिसमें विशेष समय तक रहता है वह ही उसको पसंद पड़ जाता है। सूक्ष्म शरीर में आत्मा का अभिमान होना–सूक्ष्म शरीर मैं हूं ऐसा मानना, यह ही कौवा होना है इसलिये 'सूक्ष्म शरीर मैं नहीं हूं' ऐसा तू निश्चय कर। आत्मा का जो स्वरूप शास्त्रकारों ने वर्णन किया है और संतों से जैसा सुना गया है उससे सूक्ष्म शरीर के लक्षण विरुद्ध हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जब राजा बहुत दिनों तक कौवे के शरीर में भटकता र
तब अनेक शुभ कर्मों के फल स्वरूप हिमालय रूप विवेक दे
में उसका विचरना हुआ, वहाँ संत–सद्गुरु की प्राप्ति हु
उसके वचन पर विश्वास करने से कौवे रूप राजा ने अपने
राजा समझा। समझना अदृढ़ अपरोक्ष ज्ञान था, इसलिए मो
स्वरूप प्राप्ति नहीं हुई। तब सद्गुरु की सहायता से युक्ति पूर्व
अज्ञान रूप हज्जाम को स्थान से हटा दिया, उसके हटने प
राजा को स्वस्वरूप की प्राप्ति हुई। अज्ञान रूप हज्जाम बु
रूप रानी पर मोहित था, जब संत ने बुद्धि से वैराग्य रूप
कराया और अज्ञान उसमें संयुक्त हुआ तब प्रपंच रूप बकरे
नाश देख कर अज्ञान रूप हज्जाम प्रपंच रूप बकरे में घुसा,
राजा अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ। इस प्रकार जो जिसका
उसी को प्राप्त हुआ। इसी प्रकार तू भी, विचार, विवेक
वैराग्य के सहारे से अज्ञान रूप वलिष्ठ शत्रु को मार दे।

जिस प्रकार सूक्ष्म शरीर तू नहीं है, इसी प्रकार वह ते
भी नहीं है। तू आत्म तत्त्व है वह भौतिक है, दोनों एक दू
से विरुद्ध हैं। जैसे अंधेरे और उजाले का मेल नहीं हो सक
इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर और आत्मा का मेल नहीं हो सकत
जब मेल ही नहीं हो सकता तब तेरा कैसे हो सकता है।
आत्म तत्त्व का भाव होता है तब सूक्ष्म शरीर नहीं रहता
जब 'सूक्ष्म शरीर मैं हूं' ऐसा मानता है तब आत्मा का
नहीं रहता इसलिए विरुद्ध होने से सूक्ष्म शरीर तेरा नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब कोई वस्तु अपनी बताई जाती है तब बताने वाला उसी स्वरूप में होता है जिसमें वस्तु होती है; विरुद्ध स्वरूप-सत्ता की वस्तु अपनी नहीं हो सकती जैसे स्वप्न की अवस्था और है, जाग्रत की और है। जैसे स्वप्न के धन से जाग्रत पुरुष अपने को धनवान् नहीं समझता इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर आत्मा नहीं हो सकता। तू आत्मा है इस लक्ष से सूक्ष्म शरीर तेरा नहीं है। अब सिद्ध हुआ कि तू सूक्ष्म शरीर नहीं है न सूक्ष्म शरीर तेरा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्राणमय कोश ।

प्राणमय कोश प्राणों का समुदाय रूप है। वह प्रथम के आनन्दमय, विज्ञानमय और मनोमय कोश से पूर्ण होकर पिछले अन्नमय कोश को पुष्ट करता है। अन्नमय कोश से गिनें तो प्राणमय कोश दूसरा है और आनन्दमय से गिनें तो चौथा है। सूक्ष्म शरीर के तीन कोशों में से यह अन्तिम कोश है। सूक्ष्म शरीर के तीनों कोश क्रम क्रम से एक दूसरे से स्थूल हैं। विज्ञानमय से मनोमय और मनोमय से प्राणमय अधिक स्थूल है। प्राणमय कोश का मनोमय कारण है और मनोमय का विज्ञानमय कारण है। मनोमय और विज्ञानमय से प्राणमय में स्थूलता है और प्राणमय अन्नमय का कारण है। अन्नमय कोश की समान प्राणमय कोश स्थूलता से सम्बन्ध वाला होने से जड़ है। वेदान्त प्रक्रिया में प्राणमय कोश पांच प्राण और पांच कर्मेन्द्रियों से बना हुआ दिखलाया है। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ये पाँच प्राण हैं। वाक्, पाणि, पाद, गुदा और उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रियां है। कर्मेन्द्रियां कर्म करने वाली हैं और प्राण उन्हें कर्म करने की शक्ति देने वाले हैं। इसलिए कर्मेन्द्रियाँ प्राणमय कोश में हैं। जैसे प्राण जड़ हैं ऐसे ही कर्मेन्द्रियां भी जड़ हैं। प्राणमय कोश अन्नमय कोश में व्यापक है और स्थूल शरीर का जीवन उसीके आधार पर है। प्राण की शरीर में दिन रात में इक्कीस हजार छः सौ श्वासोश्वास रूप क्रिया होती है। जब तक यह क्रिया होती रहती है तब तक संसार में प्राणी जीवित कहलाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। इन्द्रियादिक सब समान वायु से चेष्टा करती हैं अर्थात् प्राण वायु ही समान वायु के रूप को प्राप्त होकर क्रिया करता है। समान वायु जो उदर में जठर के आश्रय में रहता है, वह ही जब वस्ति और गुदा में रह कर मल मूत्र का वहन करता है तब उसे अपान वायु कहते हैं। जो वायु गमनादि कर्म के अनुकूल चेष्टा रूप प्रयत्न वाला और बोझ को उठाने की सामर्थ्य वाला है वह उदान वायु है उसका स्थान विशेष कंठ है, वह स्वप्न और हिचकी रूप क्रिया करने वाला है। सब संधियों में रहने वाला व्यान वायु है। वह अग्नि और धातुओं में फैला रहता है। उसको समान वायु प्रज्वलित करता है जिससे वह रस, धातु और बात, पित्त, कफ आदि दोषों का पाचन करता है। अपान वायु नाभि के नीचे और प्राण वायु ऊपर होता है, दोनों के मध्य में समान वायु है इससे जठराग्नि प्रदीप्त होता है, जिससे अन्न रसादिक परिणाम को प्राप्त हो कर अन्त में ओज संज्ञा प्राप्त करके जीवन रूप होता है। मुख से लेकर पांचों इन्द्रियों तक एक बड़ी आंत (नल) है जिसके ऊपर के भाग में मुख और नीचे के भाग में गुदा है, उसमें से अनेक नाड़ियां निकल कर प्राणी के सब शरीर में फैली हुई हैं। उन नाड़ियों के माग से प्राण वायु शरीर में प्रवेश करता है और उसके साथ गमन करने वाला तेज रूप जठराग्नि प्राणियों के खाये हुए अन्न को पाचन करता है उसका भी सब देह में प्रवेश होता है। जैसे वायु अग्नि का वहन करता है ऐसे ही अग्नि वायु का वहन करता है। प्राण वायु अग्नि को प्रदीप्त करता है और अंग की गति इसी से होती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

है। नाभि के नीचे पक्काशय और ऊपर आमाशय है; और उसके मध्य में प्राण वायु रहता है। पांचों प्राण हृदय में जा कर वहां से शरीर के ऊपर, नीचे और सब तरफ घूमते हैं। प्राणों के साथ नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय मिल कर दस वायु नाड़ियों के मार्ग से अन्न से उत्पन्न हुए रस को देह में ले जाते हैं। नाग से डकार आती है, कूर्म से आँखों का खुलना बन्द होना होता है, कृकल से छींक आती है, देवदत्त जंभाई लाता है, और धनंजय सब शरीर में रह कर शरीर को पुष्ट करता है और मृत्यु के पीछे मृतक शरीर को फुला देता है। इन पाँचों का समावेश पांचों प्राणों में होता है इसलिए प्राणमय कोश से पृथक् ये नहीं गिने जाते। प्राणमय कोश वायु के विकार वाला और वायु के समान भीतर बाहर जाने आने वाला है। वह शुभ अशुभ को नहीं जानता, अपने पराये को भी नहीं जानता, परतंत्र और जड़ है। इसी प्रकार कर्मेन्द्रियां भी परतंत्र और जड़ हैं।

उपरोक्त प्राणमय कोश आत्मा नहीं है क्योंकि आत्मा के और उसके लक्षण नहीं मिलते। प्राणमय कोश क्रिया वाला है और आत्मा अक्रिय है। प्राणमय कोश दृश्य है आत्मा द्रष्टा है; प्राणमय कोश विकारी है, आत्मा अविकारी है; प्राणमय कोश परिच्छिन्न है आत्मा व्यापक है; प्राण अबोध रूप है, आत्मा बोध रूप है; प्राणमय कोश आश्रय वाला है, आत्मा किसी के आश्रय वाला नहीं है, प्राणमय कोश सूक्ष्म शरीर का अंग है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आत्मा किसी का अंग नहीं है; प्राण रजोगुण वाला है, आत्मा गुणातीत है; प्राण असत् जड़ है, आत्मा सच्चिदानंद रूप है। ऐसे विरुद्ध धर्मों वाला प्राणमय कोश आत्मा कैसे हो सकता है? तू तो आत्म स्वरूप है इसलिये प्राणमय कोश तू नहीं है।

शिष्य:—स्थूलता वाला अन्नमय कोश मैं नहीं हूं यह तो समझ में आगया किंतु प्राणमय कोश तो मैं अवश्य हूं क्योंकि प्राणों से ही जीवन और मरण है, प्राण न हो तो मैं नहीं रहता मरने के समय कुटुम्बी इस प्रकार ही कहते हैं 'अब प्राण नहीं है, जीव चला गया'। जो ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां शरीर में न हों—अथवा टूट जांय तो ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान की और कर्मेन्द्रियाँ कर्म की क्रिया नहीं कर सकतीं, यह ठीक है, परंतु जब तक प्राण न जाँय तव तक मृतक नहीं कहलाता। प्राणों के चले जाने से उत्तम शरीर प्रेत हो जाता है और भयंकर दीखने लगता है। सुषुप्ति में सर्व इन्द्रियों का अभाव होता है तो भी प्राणों के होने से शरीर मृतक नहीं कहलाता। प्राणों के संबंध से ही मेरा मरण जीवन है इसलिये प्राणमय कोश मैं हूं।

संत:—मरण और जीवन स्थूल शरीर का होता है, तेरा नहीं होता। स्थूल शरीर और प्राणों का संबंध होने से जीवन मरण प्राणों में दीखता है। प्रथम तो यह विचार कर कि जीवन मरण है क्या? दृढ़ीभूत वासनाओं का वेग जो फल देने को प्रवृत्त हो रहा है, उस वेग रूपी प्रारब्ध का अंत मरण है और नवीन वासनाओं का प्रारब्ध रूप से प्रगट होना जन्म है। उन्हीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

वासनाओं का वेग कर्मानुसार स्थूल शरीर के संबंध वाला हो है। कर्मों को क्रिया में लाने वाली शक्ति स्थूल प्राण है, वह (आत्मा) नहीं है। स्थूल प्राण का बीज रूप सूक्ष्म प्राण सूक्ष्म शरीर मे रहता है, प्राणमय कोश रूप है वह भी तू नहीं क्योंकि प्राण उत्पत्ति और नाश वाला है, आत्मा अविनाशी है "आत्मा से प्राण उत्पन्न होता है" ऐसी श्रुति है। जिसको प्राण जानता है वह स्थूल प्राण है। जब तू सूक्ष्म प्राण ही नहीं है तब तू स्थूल प्राण कैसे हो सकता है? तू कहता है 'प्राण न हो तो मैं नहीं रहता' मैं तुझसे पूछता हूं कि प्राण न होने पर रहने वाला तू है कौन? क्या स्थूल शरोर तू है? प्राण के न रहने से शरीर में चैतन्यता नहीं दीखती, तू वह चैतन्यता नहीं है, तू तो नित्य रहने वाला आत्मा है, शरीर में रहने वाला स्थूल प्राण शरीर के आरम्भ में प्राप्त हुआ है इसके प्रथम क्या तू नहीं था? था ही। जब तू उसके प्रथम का है तो उसके न रहने पर भी तू तो रहेगा ही। जब कोई मनुष्य अत्यंत रोगग्रस्त होता है बहुत दुखी हो जाता है और बहुत दुखी होने के कारण जीवित रहना भी नहीं चाहता तब ऐसा कहता है 'मेरा प्राण चला जाय तो अच्छा है, उसके जाने से ही मेरे दुःख की निवृत्ति होगी' अपना नाश कोई भी नहीं चाहता। प्राण निकल जाने के पीछे दुःख से रहित होकर रहने वाला कोई और है, उसको दुःख न हो इसलिये वह प्राण छोड़ना चाहता है।

कुटुम्बी स्थूल शरीर को ही सृष्टि मानते हैं इसलिये स्थूल शरीर में प्राण न रहने को ही जीव का न रहना कहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

लोग भी प्राण को जीवात्मा नहीं मानते, जीव का मरण वे स्वीकार नहीं करते इसलिये ही शास्त्रानुसार उत्तर क्रिया करते हैं। इन्द्रियां, अंत:करण और पंच भूत का पंची करण आदि सब स्थूल शरीर का अंग, उपाँग और विस्तार के सब मणकों का एक में संग्रथित करने वाला धागा रूप प्राण है। जब तक यह प्राण शरीर में रहता है तब तक शरीर चैंतन्यता वाला दीखता है। जैसे एकाध मणका टूट जाने पर भी जब तक धागा नहीं टूटता तब तक माला कही जाती है इसी प्रकार एकाध इन्द्रिय के खंडित होने पर भी प्राणी जीवित कहलाता है। स्थूल शरीर में रहने वाले प्राण की इन्द्रियों के गोलकों से विशेषता अवश्य है परंतु इससे प्राण आत्मा नहीं हो सकता। जैसे माला में रहने वाला धागा सबको एकत्र रखने वाला होने पर भी परिच्छिन्न है इसी प्रकार प्राणमय भी परिच्छिन्न है और परिच्छिन्न होने से आत्मा नहीं है। तू अपने को जड़ और बोध रहित नहीं मानता, प्राण जड़ और बोध रहित है तब तुझसे विरुद्ध धर्म वाला प्राणमय कोश आत्मा किस प्रकार हो? किस प्रकार नहीं हो सकता।

शिष्य:—जब मैं प्राणमय कोश नहीं हूँ तो मुझे बताइये कि मैं कौन हूँ। मैं अपने को नहीं जानता इसलिये अनेक वस्तुओं में अपने होने की मुझे संभावना होती है। यदि मैं अपने को जान जाऊं तो ऐसी भूल न हो।

संत:—शास्त्रानुसार सद्गुरुओं की युक्ति द्वारा अधिकार क्रम से आत्मा का (अपना) बोध होता है। तू जो अपने को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रथम ही जानना चाहता है सो बन नहीं सकता । प्रथम शा और गुरु वाक्य में श्रद्धा करके इस प्रकार मान ले कि आ सच्चिदानन्द, अक्रिय, अव्यक्त, अधिकारी, आदि अंत रहि सर्व का अधिष्ठान और अद्वैत है और जिस जिसमें आत्मा का भान होता हो उस पदार्थ के लक्षणों का उपरोक्त आत्मा लक्षणों से मिलान कर । जिसमें वे मिलें उसको निश्चय कर आत्मा है और जिसमें न मिलें वह आत्मा नहीं है । इस प्र करते करते जब तू शुद्ध अन्तःकरण वाला होकर आत्मबोध प्रा करने का अधिकारी हो जायगा तब गुरुदेव 'तत्वमसि' आ महावाक्यों द्वारा तुझे आत्मा का उपदेश करेंगे और प्रथम जिस आत्मा को बिना जाने श्रद्धा करके मान लिया था उस तुझे अपरोक्ष बोध होगा । आत्मा को आत्मा होकर ही स सकता है इसलिये शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि आत्मा होने की भ्रान्ति के भाव को हटाने का प्रथम अभ्यास

जिस प्रकार प्राणमय कोश तू (आत्मा) नहीं है इसी प्र वह तेरा (आत्मा का) भी नहीं है क्योंकि तू ज्ञान स्वरूप है प्राण, वायु के विकार वाला जड़ स्वरूप है । तेरी स्थिति में है, प्राण की स्थिति द्वैत में है । अद्वैत में जब दूसरा पदार्थ नहीं हैं तब उसका प्राण किस प्रकार हो ? भ्रान्ति स्वरूप प्र का स्वामित्व सत्य अद्वैत तत्त्व किस प्रकार करे ? प्राणमय अज्ञान का है, माया में है, वायु का विकार है और स्थूल श में चैतन्यता देने का कारण रूप है । तुझ आत्म तत्त्व और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

में सैकड़ों कोश का अन्तर है इतना ही नहीं किन्तु उसमें और तुझमें कार्य कारण भाव का संबंध भी नहीं है। तेरी और उसकी सत्ता ही एक नहीं है तब प्राण तेरा किस प्रकार हो ? यदि तू कहे कि मैं अज्ञानी हूँ और माया में हूं इसिलिये अज्ञानी का प्राण हो सकता है तो इस प्रकार तो जगत् भर में ही हो रहा है तो यहां के उपदेश की विशेषता क्या ? वास्तविक आत्मा अज्ञानी नहीं है। अज्ञान के भाव से ही आत्मा को कर्ता भोक्ता जीव समझ कर प्राणी दुखी होते हैं। जो तू अनेक प्रकार के दुःखों से छूटना और अपने आत्म-स्वरूप का बोध करना चाहता है, जो तेरी ऐसी दृढ़ निष्ठा है तो जिस प्रकार सद्गुरु तेरी योग्यता देख कर शास्त्रानुसार तुझे उपदेश करे उसको तू ग्रहण करता जा, इसमें ही तेरा कल्याण है।

जैसा जल होता है वैसा ही प्राण होता है। यदि जल विकारी होगा तो प्राण भी विकारी होगा। अन्य कारणों से भी प्राण विकारी हो जाता है। क्षुधा और तृषा लगना प्राण का धर्म है। आत्मा के जो लक्षण ऊपर बताये हैं इनमें से एक लक्षण भी प्राण में नहीं मिलता इसलिए प्राण आत्मा नहीं है।

श्रीमद्भागवत् के पुरंजनोपाख्यान में प्राण को चौकीदार बताया है। शरीर रूप नगरी में अनेक प्रकार की प्रजा रहती है जब वह काम करते २ थक जाती है तब सोते समय प्राणरूप चौकीदार नगरी की रक्षा करता है, केवल वह ही जागता रहता है। जागता हुआ भी जड़ होने से वह रक्षा नहीं कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सकता परन्तु नगरी पर जब कुछ क्षोभ होता है तब, वह प्रजा जगा देता है, यही उसकी चौकीदारी है। आप विचार करें एक सामान्य चौकीदार महान् साम्राज्य स्वरूप आत्मा किस प्रकार हो सकता है। पांच मुख का सर्प यही चौकीदार है, अ फुंकार से पांच प्रकार के विष उत्पन्न करने वाला है, अनेक जन्मों तक अज्ञानियों को विष के प्रभाव से दुःख वाला है, ऐसा दुष्टात्मा सर्वव्यापक पवित्र आत्मा किस प्र हो सकता है ?

जैसे ग्राम में एक जमींदार होता है, उसकी जमीन में करने वाले बहुत से कृषक होते हैं, उनमें किसी किसी के पास गाड़ी होती है।जब कुछ काम पड़ता है तब गाड़ी में बैठकर आया जाया करता है वह ही उसका मालिक है, गाड़ी हां वाला उसका एक नौकर है, बैलों की रास उसके हाथ में हो उससे वह बैलों को हांकता है और गाड़ी को एक स्थान से स्थान पर ले जाता है। गाड़ी स्थूल शरीर रूप अन्नमय कोश बैल प्राणमय कोश है क्योंकि वह स्थूल शरीर रूप गाड़ी खींचने वाला है, उसे क्रिया करने वाला बनाता है। सारथीके में रहने वाली रास मनोमय कोश है, सारथी विज्ञान मय कोश सारथी और बैठने वाले के बीच में जो परदा पड़ा हुआ है आनन्दमय कोश है, बैठने वाला जीव है और गाड़ी जिस में फिरती है उनका मालिक-जमींदार आत्मा है, वह आत्म है। अब विचार कर कि बैल रूप प्राणमय कोश तू नहीं है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

वह तेरा भी नहीं है, वह जीव का है तू तो स्थूल शरीर, प्राण और जीव तीनों का अधिष्ठाता है। जीव को बैलों का मालिक कह सकते हैं किन्तु जीव अज्ञान की उपाधि युक्त है तब स्वामीपना अज्ञान का हुआ, जीव के शुद्ध तत्त्व आत्मा का स्वामीपना नहीं है इसलिए तू प्राणमय कोश नहीं है और वह तेरा भी नहीं है। प्राण रूप बैल जो गाड़ी का चलाने वाला है रास नहीं हो सकता, वह सारथी रूप विज्ञानमय, और परदा रूप आनन्दमय कोश भी नहीं हो सकता और बैठने वाला जीव भी नहीं हो सकता तब जमीदार रूप अधिष्ठान आत्मा किस प्रकार हो ?

एक विचरता हुआ साधु भवानीपुर नामक शहर में आया। वहां आत्माराम नामक एक नैष्ठिक ब्राह्मण रहता था। उसने साधु को भोजन करने के लिए निमंत्रण दिया और पूर्ण श्रद्धा से भोजन कराया। भोजन के पश्चात् दोनों एक एकान्त कमरे में विश्रान्ति के निमित्त गये, वहां दोनों में यह बात चीत हुई :— साधु :—महाशय ! क्या आपके कोई पुत्र है ? कोई बालक दिखाई नहीं दिया इसलिए पूछता हूं। ब्राह्मण (आंखों में आँसू भर कर):—महाराज ! क्या कहूँ. मुझ पर जो बीती है, मैं ही जानता हूँ। मेरे पुत्र है भी और नहीं भी है ! साधुः—पुत्र के विषय में बात चीत होने पर तू इतना दुखी क्यों होता है ? संसार का चक्र इसी प्रकार चला करता है, हम साधु लोगों का काम किसी से कुछ ग्रहण करके सुबोध देने का है, तू सावधान होकर अपने पुत्र की कथा कह, फिर मैं अपनी बुद्धि अनुसार जिसमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तेरा कल्याण होगा वैसा तुझे उपदेश करूँगा। ब्राह्मणः—महाराज ! सुनिये:—मैं एक दिन अपने ग्राम अगम्यपुर से नदी पार घूमने गया था। 'घूमते२ मैंने एक सुन्दरी देखी। उस समय तक मेरा विवाह नहीं हुआ था। उसको देखकर उसके साथ विवाह करने का विचार मेरे जी में हुआ। वह सुन्दरी भी मुझे देखकर प्रसन्न होगई और कहने लगी "मैं आप जैसे योग्य ब्राह्मण की खोज में थी, मैं उपवर हुई हूं।" मैंने कहा "तू कौन है?" तब वह बोली "मैं जाति की शूद्रा हूं, मेरा नाम बुद्धादासी है, किंतु आपके योग्य हूँ।" मैंने कहा "मैं तो ब्राह्मण हूं, मैं तेरे साथ विवाह किस प्रकार कर सकता हूं?" सुन्दरी मुसकराकर कहने लगी "अजी! आप तो भूलते हैं। जितनी स्त्रियाँ हैं, सब शूद्रा हैं, शूद्रा से विवाह करने की शास्त्र की आज्ञा है।" मैं उस पर मोहित हो ही चुका था उसकी यह बात और शास्त्र प्रमाण सुन कर विवाह करने को तैयार हो गया। सुन्दरी कहने लगी "चलिये, मेरा पिता तो है नहीं, अपनी माता के पास लिये चलती हूँ वह आपके साथ मेरा विवाह कर देगी।" मैं उसके साथ चला। वह मुझे एक सुन्दर मकान में ले गई और अपनी माता के पास मुझे खड़ा करके बोली "मैया! यह ब्राह्मण मुझे पसंद है।" डोकरी ने मुझे आदर सत्कार से बैठाया और मिष्ट भोजन कराया। दूसरे दिन बुद्धा दासी मेरे साथ विवाही गई। थोड़े दिन पीछे मैंने अपने स्थान पर लौटना चाहा। अपनी स्त्री को साथ लेकर मैं वहाँ से चला और जब भवानीपुर की हद से आगे चलने लगा तब मेरी स्त्री रोने लगी और कहने लगी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आगे नहीं चल सकती, यदि आप मुझको चाहते हो तो इसी देश में रहो।" मैंने उसके कहने से वहीं एक मकान बना लिया और वहीं रहने लगा। जहाँ आप बैठे हो यह वही स्थान है। कई वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु हमारे कोई संतान न हुई। मेरी स्त्री को संतान की बहुत चाह थी इसलिये वह बहुत दुखी रहती थी, उसे दुखी देख कर मैं भी दुखी होता था। कभी २ वह अपना जी बहलाने के लिये अपनी माता के पास चली जाती थी। एक बार वह अपनी ननसाल गई और मुझे भी उसे लेने वहाँ जाना पड़ा। हम दोनों वहां से लौट रहे थे, मार्ग में हमें दो लड़के नदी के किनारे लेटे हुए मिले। दोनों बालक बहुत ही सुन्दर थे। उनमें से एक का रंग श्वेत था और दूसरे का कुछ लाली लिये हुए था। पास जाकर देखा तो दोनों एक ही कपड़ा ओढ़े हुए थे, श्वेत रंग के बच्चे के गले में एक कागज की चिठ्ठी बंधी हुई देखी, उस चिठ्ठी को खोल कर देखा तो उसमें यह लिखा था। "जिसके बच्चा न हो और बच्चा चाहता हो तो वह दोनों बच्चों को ले जाय, एक ही मनुष्य दोनों को रक्खे।" मेरी स्त्री बच्चों को देख कर बहुत प्रसन्न हुई। हमने दोनों बच्चों को उठा लिया और उन्हें ले कर अपने मकान पर आये। स्त्री दोनों बच्चों के काम काज में लग गई, जिससे प्रथम से कुछ दुःख कम हो गया। दोनों लड़के बड़े होने लगे। जब वे डेढ़ वर्ष के हुए तब मालूम हुआ कि गोरा लड़का पंगु है, देखने में तो पैर थे किंतु उनसे चल नहीं सकता था, दूसरा लाल रंग का लड़का अंधा था, आँखें तो दिखाई देती थीं परन्तु उनसे उसे कुछ दीखता न था। इस प्रकार दोनों लड़के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अपंग देख कर हम दोनों बहुत दुखी हुए। जन्म का रोग हो से औषधोपचार से चला जाना संभव न था। अब तो हमारा दुःख प्रथम से भी अधिक हो गया। जब दोनों लड़के कुछ और बड़े हुए तब बहुत ही ऊधमी मालूम हुए, दोनों आपस में लड़ा करते, एक दूसरे को अपशब्दों से पूजा करता, हम दोनों से कटु वचन कहा करते और मारते, जब उनकी माँ घर में कुछ काम करती तो करने न देते। सुख की इच्छा से लड़कों को लाये थे, उलटे दुःख के कारण हो गये। जब वे नौ वर्ष के हुए तब दोनों ने एक युक्ति रची। गौराँग पंगु लड़का जिसका नाम मनोहर था, प्राणशंकर नामक रक्त वर्ण वाले अंधे लड़के के कंधे पर चढ़ बैठा और इस प्रकार दोनों दूर दूर तक घूमने चले जाया करें; हम बहुत कष्ट पाकर खोज करके लाया करें। दिन प्रतिदिन उपद्रव बढ़ता गया। एक दिन स्त्री पुरुष हम दोनों ने क्रोध में आकर दोनों को खूब पीटा और घर से बाहर निकाल दिया, तब से घर में शान्ति रहती है। लड़के निकाल दिये परन्तु उनका प्रेम हमारे चित्त से नहीं निकला है। मेरी स्त्री को दिव्य दृष्टि है, लड़के कहाँ कहाँ जाते हैं और कैसे कष्ट उठाते हैं ये सब बातें वह मुझसे कहा करती है इसलिये हम दोनों दुखी बने रहते हैं। कभी कभी लड़कों को घर में बुलाने की इच्छा होती है परन्तु उनके उपद्रवों को याद करके चुप हो जाते हैं। कभी वे भूखे रहते हैं, कभी जेलखाने में पड़ जाते हैं, कभी चोरी करते हैं, सदैव दुःख पाते हैं और हमें भी दुखी करते हैं।

साधु:—तेरा सब वृत्ताँत मैंने सुन लिया तू आप ही अपने दुः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

का कारण है। तू अकेला स्वतंत्रता से मौज में था, प्रथम तो स्त्री की उपाधि करके स्त्री वाला हुआ, फिर पुत्र की इच्छा से पुत्र वाला हुआ, अब दुखी क्यों होता है ? जो कुछ तूने किया है, अपनी इच्छा से किया है। स्त्री के लिये तूने अपना देश छोड़ा और उसके कारण से ही तू लड़कों से दुखी है। लड़कों को मार्ग में से उठा लाया है और स्त्री भी मार्ग में ही प्राप्त हुई है। जो वस्तु तेरी नहीं है उसको अपनी मानकर तू दुखी है। जो तेरी इच्छा थी वह ही आभास रूप होकर माया की नदी के जल में प्रतिबिम्बित हुई, तेरी और प्रतिबिम्ब की इच्छा से सास बनाई; विवाह हुआ, संतान की इच्छा के प्रतिबिम्ब रूप दो पुत्र पंगु और अंधे तुमने देखे। तू अपने देश और प्रभाव को भूल गया है इसलिए आपत्तियां उपस्थित हुई हैं, तू तो आत्माराम है, ब्राह्मण ब्रह्म है; तुझमें इच्छा कहां ? विचार कर, जब तूने अज्ञान धारण किया तब गृहस्थ बना और दुखी हुआ।"

आत्माराम साधु के सब वाक्य सुन कर ठीक ठीक विचार करने और ममता मोह को हटाने लगा। इतने ही में बिजली की दो चमक घर में घुसती हुई मालूम हुईं, और दोनों बुद्धा-दासी में प्रविष्ठ हो गईं। बुद्धादासी उसी क्षण अलोप हो गई और एक भारी प्रकाश आत्माराम की तरफ आकर उसमें प्रवेश कर गया। आत्माराम थोड़ा चौंका और श्रद्धा सहित साधु से पूछने लगा "महाराज ! यह क्या चमत्कार हुआ ?" साधु ने कहा अब तुझे चमत्कार जानने की आवश्यकता नहीं है। अब

९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तू, आत्माराम! आत्माराम बना है। सुन :—तेरे दोनों
मायापुरी में विहार करते थे। जब मैं तुझे उपदेश देने
और जब तेरी आस्था स्त्री पुत्रों पर से हटने लगी तब तेरे
हुए लड़के मनोहर और प्राणशंकर आपस में लड़ने
प्राणशंकर ने मनोहर के लात मारी जिससे उसका पैर
हो गया और मनोहर ने प्राणशंकर के तमाचा मारा
उनकी आंखे खुल गईं। दोनों दिव्य रूप को प्राप्त होकर
कारण रूपी माता तेरी स्त्री बुद्धादासी में घुस गये। जब
ममता बुद्धादासी में से हटी तब वह भी दिव्य स्वरूप को
हुई और दिव्यता के कारण स्वरूप (तुझ) में प्रवेश कर
इस प्रकार आत्माराम की गृहस्थी छूट गई और वह अपने
स्वरूप को प्राप्त हुआ। साधु वहाँ से विचरने चल दिया।

आत्माराम आत्मा है, आत्मा की हद्द रूप नदी के पार
सैर करने गया, वहां माया के जल में उसने अपना बिम्ब
स्त्री की भावना होने से स्त्री दीखी, माया में पड़ा हुआ चैत
का प्रकाश बुद्धादासी रूप बुद्धि है, उसने अपने को शूद्रा
आत्मा विभु है, इसलिये यह शूद्रा है, उसकी बूढ़ी मा वासना
जब आत्मा बुद्धि के प्रकाश के भाव वाला हुआ तब दो
प्रतिबिम्ब रूप दो पुत्र देखे। गौरांग जिसका नाम मनोहर
है। मन पंगु है क्योंकि उसके पैर नहीं हैं, दूसरा लाल वर्ण
प्राणशंकर प्राण है और आंखें न होने से अंधा है। पं
अंधे प्राण पर सवार होकर माया पुरी में घूमता है और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

प्रकार के कष्ट उठाता है। आत्मा की सन्निधि-प्रेम भाव से ही इन सब का मायिका स्वरूप में जीवन है। जब आत्मा अपनें आत्म भाव में टिकता है तब माया का यह सब विस्तार लोप हो जाता है।

ऊपर के दृष्टांत से तेरी समझ में आ गया होगा कि प्राण, मय कोश क्या है ? ऐसे प्राणमय कोश को तू आत्मा कहता है, यह तेरी कितनी मूर्खता है। यदि कोई तुझे अंधा बतावे तो तुझे कितना दुःख होगा। तू स्वयं अंधे जड़ प्राण को आत्मा मानता है यह तेरा अज्ञान है। इसको तीव्र वैराग्य के बल से गुरु और शास्त्र पर श्रद्धा रख कर दूर कर। जिस प्रकार लोहार की धौंकनी में वायु भरती और निकलती है इसी प्रकार तेरे पंच-भौतिक शरीर में प्राण रूप वायु भरती है और निकल जाती है। इसलिये हृदय में इन शब्दों को अंकित कर "प्राणमय कोश मैं नहीं हूं, प्राणमथ कोश मेरा नहीं है, मैं उसका द्रष्टा उससे पृथक् सच्चिदानन्द, अव्यय, अनाद्यंत, निर्विकार निरंजन आत्मा हूं।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मनोमय कोश।

मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियों को मनोमय कोश कहते हैं। कोशों में यह कोश मध्य का है। दो कोश उससे सूक्ष्म हैं दो स्थूल हैं। मनोमय अपने ऊपर के विज्ञानमय और आनं दो सूक्ष्म कोशों से पूर्ण होकर नीचे के प्राणमय और अन्न स्थूल कोशों को पूर्ण करता है। यह कोश विज्ञानमय आनंदमय कोशों से पृथक् कभी नहीं रह सकता। यह शरीर में होने पर भी ऊपर के विज्ञानमय से स्थूल है और के प्राणमय कोश से सूक्ष्म है। इसी कोश से स्थूल और का जुड़ान होता है। यह कोश सूक्ष्म होने से स्थूल की समान स्थूल दृष्टि का विषय नहीं है, सूक्ष्म विषय है।

अनेक प्रकार की कल्पनाओं के होने का नाम संकल्प है संकल्प में से हट कर दूसरे संकल्प में आना विकल्प है, एक कल्पना से अनेक कल्पनाओं में आना विकल्प है, एक कल्पना के पश्चात् उससे विरुद्ध कल्पना या कल्पना परम्परा में आना विकल्प है। इस प्रकार संकल्प विकल्प होता है वह मन है।

कार्य से कारण का पता लगता है। यद्यपि मन जानते परन्तु जो कार्य वह करता है उसको जानकर उस वाले को मन समझना चाहिये। इस प्रकार संकल्प विकल्प वाला मन है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका येपाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और क्रम से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और ग़न्ध इन विषयों को ग्रहण करती हैं। जब मन उनसे युक्त होता है तभी वे विषय ग्रहण कर सकती हैं इसलिये ज्ञानेन्द्रियां और मन मिल कर स एक भाव को प्राप्त होते हैं वह मनोमय कोश हैं।

सामान्यता से तो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार माया, अज्ञान र जीव ये सब एक भाव से वर्तते हैं परन्तु मनोमय कोश में प्रकार न समझना चाहिए। "मन ही बन्धन का कारण है, र मन ही मोक्ष का कारण है" ऐसा जहाँ कहा है वहां मनको तार वाला समझ कर कहा है। बुद्धि रहित मनोमयकोश में ी विस्तारवाला नहीं है। मन, बुद्धि,चित्त और अहंकारचारों होने पर भी कार्य की उपाधि भेद से भेद वाले हैं। पाचों ों में अन्नमय और प्राण मय अन्तिम कोश, मनोमय, विज्ञान और आनन्दमय से स्थूल हैं इसलिये स्थूल होने से उनमें सूक्ष्म कोशों की अपेक्षा चैतन्य का प्रकाश कम पड़ता है, र सूक्ष्म तीन कोशों में विशेष पड़ता है।

चेतन सत् चित् आनन्द स्वरूप है। आनन्दमय कोश में न्द का, विज्ञानमय में चित् का और मनोमय में सत् का मास है। मनोमय सत् का आभास वाला होने से इन्द्रियों र विषयों को सत्य रूप से ग्रहण करता है इसलिए मन जड़ ोर भी चैतन्य की सत् सत्ता से चैतन्यता वाला होकर कार्य वृत्त होता है। इसी कारण कोई २ उसे अर्ध चैतन्य भी ो हैं क्योंकि वह जड़ और चैतन्य के मध्य में है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मन का देवता चन्द्र है। जैसे चन्द्र सूर्य का प्रकाश
प्रकाशित होता है ऐसे ही मन ब्रह्म के सत् रूप प्रकाश से
शित होता है। जैसे ब्रह्म के सत् चित् और आनन्द वस्तुतः
पदार्थ नहीं हैं ऐसे हो मनोमय, विज्ञानमय और आनन्द
कोश भी तीन नहीं हैं। आनन्द ही अन्य उपाधियों से
होता है और चित् ही उपाधि संयुक्त सत् होता है। इसी प्रकार
मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश को समझो।

मनोमय कोश समझ में आने के निमित्त इस प्रकार
भाते हैं:-एक मकान में तीन कमरे इस प्रकार बने हैं कि
से एक के भीतर एक है। प्रथम कमरे में जो प्रकाश पड़
वह ही दूसरे में और फिर वह ही तीसरे में जाता है। इस
एक से एक दूर होने से उन तीनों कमरों के प्रकाश में अन्तर
यद्यपि प्रकाश तीनों में एक ही है। इस प्रकार आनन्द,
और सत् एक हैं। आनन्दमय और विज्ञानमय कमरों
पड़ा हुआ प्रकाश तीसरा मनोमय रूप कमरा मनोमय के
मन में जो सत् है वह परब्रह्म का है परंतु दो कमरों में
तीसरे में पड़ने से दूरी के कारण विकार वाला हुआ है।
पदार्थों को सत् मानना मन का विकार है।

पांच ज्ञानेन्द्रियां हवन करने वाली होता रूप हैं।
रूपी घी के प्रवाह से मन रूप अग्नि प्रदीप्त होता है और
प्रकार की वासना रूप लकड़ियों से प्रज्वलित मनोमय कोश
प्रपंच का वहन करता है। मनोमय रूप अग्नि वासना रूप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ड़ियों से उत्पन्न और विषय रूपी घी से वृद्धि को प्राप्त होता है और ज्ञान रूपी जल बिना कभी शांत नहीं होता।

मन ही अविद्या है, अज्ञान से संसार रूपी बंधन में डालने वाला और ज्ञान द्वारा बंधन से छुड़ाने वाला मन ही है। मन का नाश ही सब प्रपंच का नाश है। मन की वृद्धि से सब प्रपंच वृद्धि को प्राप्त होता है। मन अपनी शक्ति से जैसे स्वप्न में कुछ न होते हुए भी विश्व उत्पन्न कर देता है, इसी प्रकार जाग्रत में जगत् उत्पन्न करने वाला मन ही है। उसीसे सब प्रपंच का विकास समझो। यदि मन से जगत् की उत्पत्ति न होती तो सुषुप्ति में भी जगत् रहना चाहिये था। सुषुप्ति में जगत् नहीं रहता क्योंकि उस समय मन दब जाता है–प्रत्यक्ष नहीं होता इसलिये सुषुप्ति अवस्था में जगत् भी दब जाता है। जैसे मायावी (जादूगर) की सृष्टि मायावी के साथ ही होती है इसी प्रकार मन रूपी मायावी की सृष्टि मन के साथ ही रहती है इससे सिद्ध होता है कि मन ही जगत् रूप होकर भासता है। संसार का जो कुछ दृश्य है सब मन का ही कल्पा हुआ है। जैसे वायु, के दो कार्य हैं, वायु मेघ को ले आता है और उड़ा भी ले जाता है इसी प्रकार मन से दो कार्य होते हैं। संसार की तरफ लक्ष वाला होने से वह बंधन लाने वाला होता है और आत्मा का लक्ष होने से मुक्त भी वह ही करता है। जैसे पशु को रस्सी से बाँध कर उससे अनेक प्रकार के कार्य कराये जाते हैं इसी प्रकार मन देहादिक विषयों में राग करा के पुरुष को अनेक योनियों में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भटकाता है, और वह ही मन जब विषयों से वैराग्य को प्र होता है तब पुरुष को बंधन से मुक्त कर देता है।

प्रकृति के सत् रज और तम तीनों गुण न्यूनाधिक प्रम में सब पदार्थों में रहते हैं। इस प्रमाण को न्यूनाधिक भी सकते हैं। जब मन रजोगुण से विशेष युक्त होता है तब ब का कारण होता है और जब रजो तमोगुण से रहित शुद्ध है तब मोक्ष का कारण होता है।

विषय रूपी महान् वन है, उसमें मन रूप व्याघ्र घूमा क है, इसलिये जिसको मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा है, उसे वि रूपी अरण्य में घूमना न चाहिये। विचार करके देखा तो मन ही स्थूल और सूक्ष्म विषयों को उत्पन्न करता है। श वर्ण आश्रम, जाति, भेद, गुण, क्रिया, कारण और उनके को उत्पन्न करने वाला मन ही है। आत्मा संग रहित शुद्ध स्वरूप है, उसे मोह में डालने वाला मन है। वह ही उत्पन्न किये हुए देह, इन्द्रिय और प्राण के गुणों में और बने हुए कृत्य और भोग के फल में अहंबुद्धि कराके कराने वाला है, अध्यास का हेतु मन ही है। रजोगुण और गुण से मोह उत्पन्न होता है, मोह से अध्यास होता है, मन गुण और तमोगुण युक्त है। अविवेकी पुरुषों को वह जन्म का हेतु है, अहंता और ममता करने वाला वह ही है। "मैं हूँ" ऐसा अभिमान अहंता है और 'स्त्री, पुत्र, धनादिक में ऐसा भाव ममता है। मन शरीर में रहकर इन्द्रियों द्वारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

जाता है, ऊँचे नीचे स्थानों में प्राप्त होना मन से ही होता है इसलिये मन दूत है। और सब स्थानों में भ्रमाने वाला होने से भूत है।

आत्माराम नामक एक साहूकार सब प्रकार से समृद्धि वाला था, एक बार वह बटुकनाथ का मेला देखने गया। यह मेला बहुत भारी हुआ करता था, अनेक प्रकार के आश्चर्य जनक पदार्थ वहाँ मिलते थे। कहा तो ऐसा जाता है कि ब्रह्मांड भर में जितने पदार्थ हैं सभी वहां मिलते थे। जो जिसकी इच्छा होती उसको ही वेचता अथवा खरीदता था। कई देवता भी उस मेले में जाने को मेले के समय की प्रतीक्षा किया करते थे।

आत्माराम ने सब मेला देखा। बहुत प्रकार के सुन्दर पदार्थ होते हुए भी उसे कोई लुभा न सके। एक पेड़ के नीचे एक मनुष्य एक पिटारी लिये बैठा था। साहूकार ने उसके पास जाकर कहा "मित्र ! तेरी पिटारी में क्या है ? तू क्या बेचने को बैठा है ? मैंले कुचैले कपड़े पहने हुए मनुष्य ने कहा "सेठजी ! इस पिटारी में एक भूत है, मैं उसे बेचना चाहता हूँ !" साहूकार ने कहा "वह किस काम में आता है ?" बेचने वाले ने कहा "बहुत काम की चीज है। दिन रात उससे काम लिया जाता है, वह कभी थकता नहीं है, कोई काम कैसा भी भारी हो, कितने ही बलिष्ठ मनुष्य जिसको मिलकर न कर सकें, उसे वह अकेला ही बहुत शीघ्र कर देता है। उसकी सामर्थ्य के आगे भीम या हनूमान की सामर्थ्य भी कुछ नहीं है। ब्रह्मा ने जब उसे निर्माण किया तब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

उसमें आलस्य रखना भूल गया, वह कभी बैठा नहीं रहता।" साहूकार ने कहा "चीज तो अच्छी है क्या उसमें कोई दोष भी है? जो हो तो बता दो" भूत व्यापारी ने कहा एक ही दोष उसमें है। जब उसे काम करने को नहीं मिलता, तब वह मालिक को खा जाता है। जिसका काम कभी न निबटता हो उसके लिये यह बहुत ही काम का है।" आत्माराम जी में सोचने लगा "मेरे यहां तो बहुत बड़ा व्यापार होता है, मेरे यहाँ का काम कभी निबटने वाला ही नहीं है, इसलिये उसमें जो दोष है उसकी कुछ चिन्ता नहीं है।" यह विचार कर भूत व्यापारी से कहा, "वह खाता क्या है?" व्यापारी ने कहा, "काम ही उसका भोजन है, सिवाय काम के और कुछ नहीं खाता।" आत्माराम ने कहा "ठीक! उसके दाम क्या हैं?" व्यापारी ने कहा "एक लक्ष रुपये"। साहूकार ने रुपये दे दिये और व्यापारी ने पिटारी में से भूत निकाल कर दे दिया। भूत साहूकार के सामने खड़ा होकर कहने लगा "काम बता, नहीं तो तुझे खाये जाता हूँ।" साहूकार ने कहा "मुझे डेरे पर पहुंचा दे।" भूत ने साहूकार को अपने कधे पर बैठाकर क्षण भर में डेरे पर पहुंचा दिया और फिर सामने खड़ा होकर कहने लगा "काम बता, नहीं तो तुझे खा जाऊँगा।" साहूकार ने अनेक प्रकार की रसोई बनाने को कहा। भूत ने थोड़ी देर में अनेक प्रकार की रसोई बना दी। और सामने आ कहने लगा "काम बता, नहीं तो तुझे खा जाऊँगा।" साहूकार ने एक बहुत सुन्दर लम्बा चौड़ा मकान बनाने की आज्ञा दी। भूत इस भारी कई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

वर्षों के काम को थोड़ी देर में करके लौट आया और साहूकार के सामने खड़ा होकर कहने लगा "काम बता नहीं तो तुझे खा जाऊंगा।" साहूकार ने एक बगीचा लगाने को आज्ञा दी। भूत बगीचा लगाने चला गया, साहूकार सोचने लगा "भूत बड़ी जल्दी काम करके आ जाता है, इसके लिये काम तैयार कर रखना चाहिये, भूत क्या है, काम करने वाला पूरा खबीस है।" इतने में भूत बगीचा लगाकर आ गया। साहूकार ने कुंवा खोदने को बता दिया। क्षण भर में कुंवा भी खुद गया। इस प्रकार भूत काम बताते ही कर दिया करे और साहूकार को चैन न लेने दे। साहूकार का सुख से खाना पीना भी छूट गया। चार घंटे में हो चिन्ता के मारे शरीर आधा रह गया। वह जी में पछताने लगा "कैसी मुश्किल है। सैकड़ों वर्षों में जो काम पूरा न हो, वह काम भूत ने आधे हो दिन में कर डाला। क्षण क्षण में उसे काम बताना पड़ता है। उसे लेकर मैं बड़ी आपत्ति में पड़ गया।" इस प्रकार पछतावे और भूत को छोड़ना चाहे परन्तु वह न छूटे। दूसरा कोई उसे मोल न ले। ऐसा करते हुए साहूकार को तीन दिन तीन युग के समान व्यतीत हुए। उसने सच्चे दिल से ईश्वर की बहुत ही प्रार्थना की। ईश्वर नें प्रत्यक्ष रूप से तो आकर भूत को अलग न किया परन्तु साहूकार की प्रार्थना से प्रसन्न हो कर एक साधु को उसके पास भेज दिया। साहूकार ने बहुत आदर सत्कार से साधु को भोजन कराया। भोजन के पीछे साधु ने साहूकार को बहुत दुर्बल देख कर कहा "सेठ जी ! इतने दुर्बल क्यों हो गये हो ?" साहूकार नें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कहा "मैं एक बार बटुकनाथ के मेले में गया था, वहां से एक भूत खरीद लाया हूँ, वह काम बहुत ही शीघ्र करता है परन्तु यदि उसे कोई काम न बताया जाय तो वहमालिक कोखाजाय। उसको काम बताते बताते चिन्ता के मारे मैं दुर्बल हो गया हूं। मैं बहुत दिनों में पूरा होने वाला काम बताता हूं, वह क्षणभर में उसे करके मेरे पास लौट आता है और काम मांगता है मैं चाहता हूं कि वह किसी प्रकार चला जाय, तो अच्छा हो, इस आपत्ति से मैं दुखी हूं, आप कोई ऐसा काम बता दीजिये जिससे बारम्बार काम बताने की चिन्ता मिट जाय।" साधु ने कहा "घबराने का कुछ काम नहीं है, बहुत काम करने वाले भूत को छोड़ देना भी अच्छा नहीं है। तू एक सात गांठ का लम्बा बांस लेकर पृथ्वी में गड़वा दे और उस पर बारम्बार चढ़ने उतरने का काम भूत को बतादे, जब तुझे और काम कराना हो तो उसके करने की आज्ञा दिया कर, जब वह काम हो जाय तब फिर बांस पर चढ़ने उतरने को बता दिया कर।" यह युक्ति सुन कर साहूकार प्रसन्न हुआ और साधु को प्रणाम करके कहने लगा "आपने मुझे भूत की बला से निवृत किया है आपका जितना आभार मानूं उतना ही थोड़ा है।" इतने में भूत आ गया और साधु चले गये। भूत से एक सात गांठ का दृढ़ लम्बा बांस मंगवा पृथ्वी में गड़वा उसके ऊपर बारम्बार चढ़ने उतरने की भूत को आज्ञा देकर साहूकार सुखी हुआ। वह भूत अभी तक बांस पर चढ़ उतर रहा है। जब कुछ काम होता है तब साहूकार उससे करा लेता है और फिर उसे उसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

चढ़ने उतरने के पुराने काम में लगा देता है। अब साहूकार आनंद में है और भूत के खा जाने के भय से हमेशा के लिये मुक्त है।

सिद्धान्त :—आत्माराम साहूकार आत्मा है, बटुकेश्वर रूप जीव है संसार उसका मेला है। यहां सब पदार्थों के साथ मन रूप भूत भी बिकता है। भूत का बेचने वाला मैला कुचैला काम है। आत्मा काम कराने के लिये मन को खरीदता है, मन महा बलिष्ठ है जो काम करने को कहा जाता है सत्वर कर देता है। जब काम नहीं दिया जाता तब आत्मा को खाता है–आसक्ति युक्त बुरे संकल्प किया करता है, जिससे आत्मा को अधोगति प्राप्त होती है यह ही आत्मा का खा जाना है। आत्मा जब मन को मोल लेकर जीव भाव को प्राप्त होता है तब चिंताग्रसित होता है। दुःख से बचने के लिये शुभ कर्म सहित ईश्वर की उपासना करता है उससे अंतःकरण मल विक्षेप रहित होता है। शुद्ध अंतःकरण वाला उपदेश का अधिकारी होता है। अधिकारी होने से उपदेशक साधु मिलता है और मन को वशीभूत करने के उपाय और काम लेने की रीति का उपदेश करता है। जो बांस गड़वाया था वह मेरुदंड है उसमें सात ग्रंथि योग के सात चक्र हैं। आधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और अजरामर ये सात चक्र हैं, आधार चक्र गुदास्थान पर, स्वाधिष्ठान चक्र लिंगेंद्रिय में, मणिपुर नाभि में अनाहत हृदय में, विशुद्ध कंठ में, आज्ञाचक्र भ्रुवों के मध्य में और अजरामर सहस्र दल कमल वाला चक्र मस्तक-ब्रह्मरन्ध्र में है। ये चक्र जब पूर्वाभिमुख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

होते हैं, तब वृत्ति जगत् के प्रपंच की तरफ होती है और जब ऊपर आते हुए पश्चिमाभिमुख होतेहैंतब आत्मभाव होताहै। मन अत्यंत चंचल है। उपरोक्त बांस की सातों गाठों पर चढ़ने उतरने का काम देने से वह अनर्थों से बच जाता है, समय पर शरीर निर्वाह आदिक आवश्यक क्रिया उससे करा ली जाती है। निर्मल होने पर वह ही मन आत्मभाव वाला होता है। इन्द्रियों सहित मन जिसको मनोमय कोश कहते हैं वह ही भूत है। जब मन काम में लग जाता है तव इन्द्रियाँ और उनका भाव उसके साथ होता है। मन की प्रवृत्ति ज्ञानेन्द्रिय संयुक्त होती है। योग शास्त्र में बताया हुआ प्रत्याहार मनोमय कोश में होता है, धारणा विज्ञानमय कोश में होती है, ध्यान आनन्दमय कोश में होता है और समाधि आनंदमय कोश से परे होती है। प्रपंच में फँसे हुए मनुष्यों को मन का शुद्ध करना अत्यन्त कठिन है तो भी वैराग्य और अभ्यास के सतत प्रवाह से मन वशीभूत और शुद्ध हो जाता है। उपरोक्त दृष्टांत से मनोमय कोश भली प्रकार समझ में आगया होगा।

वेदान्त का हंस और सोहं का जाप—मनन भी मन की निर्मलता का और आत्मभाव प्राप्ति का हेतु है, वह इस प्रकार है- हंस, जो हं और सो से बना है जीवात्मा का नाम है। हं अपने को कहते हैं और सो का अर्थ वह है। हं बोलने में बाहर का वायु भीतर जाता है और सो बोलने में भीतर का वायु बाहर आता है। बाहर व्यापक अधिष्ठान रूप जो परब्रह्म है और जिस अधिष्ठान में अध्यस्त जगत् की प्रतीति होती है, वह वस्तु रूप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

परब्रह्म 'अहं'–मुझमें भरा हुआ शुद्ध तत्त्व है उस परमात्मा की वस्तु रूप से 'अहं'–मुझसे एकता है इस प्रकार की उपासना से अद्वैतता दृढ़ होती है। व्यवहार निवृत्त मन को अवकाश न देकर इस प्रकार के अभ्यास में लगाना चाहिए।

शास्त्र और गुरु से जो आत्मा के लक्षरण सुने हैं वे लक्षरण मनोमय कोश में नहीं हैं। आत्मा नित्य, अविकारी, अक्रिय, अव्यक्त, अज, अविनाशी, व्यापक, विभु, मुक्तस्वरूप ज्ञानस्वरूप अद्वैत, द्रष्टा और सुख स्वरूप है। मन हमेशा सम भाव में नहीं रहता, ज्ञान से उसका नाश हो जाता है, इसलिए यह नित्यनहीं है, काम,क्रोधादिक वृत्तियुक्त होने से नियम रहित स्वभाववाला है इसलिये विकारी है, क्रिया करता कराता है, इसलिये अक्रिय नहीं है, प्राणियों में पृथक भाव से रहने वाला होने से व्यक्त है; अव्यक्त नहीं है, उत्पत्ति वाला होने से अज नहीं है विषयांतर में जाकर एक भाव से दूसरे भाव को और सुषुप्ति में अभाव को प्राप्त होता है, और अज्ञान के नाश होने से समूल नष्ट होजाता है इसलिये अविनाशी नहीं है, अणु होने से विभु नहीं है बन्धन का और मोक्ष का हेतु होने से ज्ञान स्वरूप नहीं है, अज्ञान का कार्य और परिच्छिन्न होने से ज्ञान स्वरूप नहीं है, प्राणियों में भिन्न भिन्न और द्वैत में प्रवृत्त होने से अद्वैत नहीं है, दृश्य होनेसेद्रष्टा नहीं है और माया में होने से सुख स्वरूप नहीं है परन्तु इन सब से विरुद्ध अनित्य, विकारी, क्रिया वाला, व्यक्त, जन्मने वाला विनाशी, परिच्छिन्न, अणु बन्ध, स्वरूप, अज्ञान स्वरूप, द्वैत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

दृश्य और दु:ख रूप है इसलिये वह आत्मा नहीं है। आत्मा का और उसका एक भी लक्षण नहीं मिलता आत्मा के लक्षणों से उसके सब लक्षण विरुद्ध हैं। इसलिए मन को आत्मा मत मान क्योंकि आत्मा उससे भिन्न अविशेष है।

शिष्य:–मन को आत्मा न मानूं तो किसको आत्मा मानूं? मन सिवाय और कोई आत्मा देखने–समझने में नहीं आता, उससे विशेष कोई है नहीं, वह ही सब कुछ है। जिस मन को आत्मा से विरुद्ध लक्षण वाला दिखलाया है, उस अशुद्ध मन के लक्षण आत्मा से नहीं मिलते हैं, इसलिये अशुद्ध मन को मैं आत्मा न मानूं यह कहो तो ठीक है परन्तु शुद्ध मन तो आत्मा ही है।

गुरु:–जब तू मन को शुद्ध और अशुद्ध बताता है, तब वह विकारी ही हुआ। आत्मा के लक्षणों से विरुद्ध जो मन के लक्षण बताते हैं वे मात्र अशुद्ध मन के ही नहीं हैं किन्तु शुद्धाशुद्ध दोनों प्रकार के लक्षण वाले मन के हैं। शुद्ध मन भी माया के गुणों से रहित नहीं हैं तब जहां माया की गन्ध भी नहीं है ऐसा आत्मा मन किस प्रकार हो? जो जो लक्षण आत्मा के और मन के मैंने बताये हैं उसका सूक्ष्म बुद्धि से विचार कर, मिलान कर तब मुझे मालूम हो जायगा कि मन और आत्मा में महान् अन्तर है। मन के सिवाय आत्मा कहीं नहीं दीखता यह तेरा कहना तेरी स्थिति के अनुसार है मैं तुझे आत्मा का स्वरूप पीछे समझाऊंगा अभी तो मन आत्मा नहीं है इतना ही निश्चय कर।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

शिष्य ने गुरु के उपदेश अनुसार मन और आत्मा के लक्षण मिलाये तो न मिले, तब उसने निश्चय किया कि मन आत्मा नहीं है, और गुरु से कहा:—महाराज ! मैं समझ गया, मन आत्मा नहीं है, इसलिये मैं मन नहीं हूँ, आत्मा स्वरूप हूँ, परंतु मन मेरा है ऐसा मैं कहता हूँ और ऐसा ही होगा क्योंकि उसके ऊपर मेरा स्वामित्व है।

गुरु:—ऐसा भी नहीं है, जैसे मन तू नहीं है ऐसे ही मन तेरा भी नहीं है। मन माया के गुणों से बना है इसलिये माया का है। मन चैतन्य नहीं है क्योंकि वह चैतन्य आत्मा से नहीं बना है। जिससे जिसकी उत्पत्ति होती है उसी का वह होता है। आत्मा किसी को उत्पन्न नहीं करता इसलिये मन उसका नहीं है। स्वामित्व के सम्बन्ध से मन मेरा है, ऐसा कहे तो यह भी नहीं है क्योंकि स्वामित्व समान अवस्था में होता है, मन की और आत्मा की समान अवस्था नहीं है। जिस प्रकार किसी पुरुष को स्वप्न में धन मिले तो उसी अवस्था में उसका धन से सम्बन्ध होता है, जाग्रत में उस धनसे सम्बन्ध नहीं होता, जाग्रत में उसी धन से धनाढ्य नहीं होता है, क्योंकि स्वप्न के धन का जाग्रत में सम्बन्ध नहीं रहता इसी प्रकार माया का मन माया की अवस्था में है, आत्मा माया की अवस्था रहित है, आत्मभाव में माया नहीं है तब माया का मन आत्मा का किस प्रकार हो ? मन से आत्मा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

शिष्य आश्चर्य को प्राप्त होकर बोलाः—आपने कहा है कि आत्मा की सत्ता से सत्ता वाला होकर मन कार्य करता है, फिर यह किस प्रकार हो सकता है ?

गुरु.—आत्मा मन को सत्ता नहीं देता, माया का मन माया में ही प्रवृत्त है। आत्मा की सत्ता तो समान सत्ता है जो ब्रह्मांड भर में समान फैली हुई है। वह अपनी तरफ से मन को कोई विशेष–मुख्य सत्ता नहीं देता और पदार्थों से जो विशेष सत्ता मन में प्रतीत होती है वह मन की निर्मलता का कारण है।

जब मन का भाव होता है तब आत्मभाव नहीं रहता और जब आत्मभाव होता है तब मन का भाव नहीं रहता। वस्तु स्वरूप होने से आत्मा की सामान्यता का अभाव नहीं होता, भ्रान्ति स्वरूप होने से मन का अभाव हो जाता है। मन के भाव में आत्मा कहीं चला नहीं जाता परन्तु अज्ञान से उसका भान नहीं होता। दोनों विरुद्ध होने से एक दूसरे का नहीं हो सकता। यदि कोई कहे कि सूर्य का अँधेरा है तो जैसे वह महामूर्ख है ऐसे ही आत्मा का मन बताने वाला महामूर्ख है। आत्म शब्द कहता हुआ अज्ञान को आत्मा कहे तो ऐसे (अज्ञान) का मन हो सकता है वास्तविक तो मन आत्मा का नहीं है, ऐसे ही मन का आत्मा भी नहीं है, इन दोनों में सम्बन्ध सम्बन्धी भाव ही अयुक्त है। उनका सम्बन्ध समझना महा भूल है, यह भी भूल संसार चक्र में घूमने का हेतु है इसलिये तू निश्चय कर कि तू मन नहीं है और मन तेरा भी नहीं है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आत्म स्वरूप है, तुझमें मन का अवकाश ही नहीं है क्योंकि मन भ्रम स्वरूप है और तू चैतन्य स्वरूप है ऐसा विचार करके जब तू मन से बांधे हुए भ्रान्तिक सम्बन्ध को छोड़ देगा तब मन तेरा कुछ भी अहित न कर सकेगा। तू जो मन को 'मैं' और 'मेरा' कहता है इस अहंता और ममता से बलिष्ठ होकर मन तेरा अहित करता रहता है। जैसे दूध पिलाने से सर्प बलिष्ट हो जाता है और उसके पिये दूध में विष रूप बल होता है, फिर वह सर्प दूध पिलाने वाले को ही काटता है ऐसे मन तुझे दुःख देता है। झूँठ मूँठ के माने हुये सम्बन्ध को तोड़ दे। जो लोग ऐसा कहते हैं कि मन हमारे वश का नहीं है वे मन को यथार्थ रीति से जानते नहीं हैं। तुम अपना ही भाव देकर उसे बलिष्ट करते हो और उससे परास्त हो जाते हो। मन के दाव पेच जो सूक्ष्मता से जान लेता है, वह क्रम क्रम से आत्मा को जान सकता है। जो मन रूप गड्ढे में डूब जाता है, उसको संसार समुद्र से पार होना असम्भव है।

दोहाः—मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
नहिं माने तो देखले, होवे तभी प्रतीत॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विज्ञानमय कोश ।

विज्ञानमय कोश सूक्ष्म शरीर का अंतिम कोश है। यह कोश विशेष ज्ञान का हेतु है इसीसे उसका नाम विज्ञानमय को[श] है। विशेष ज्ञान बुद्धि से होता है इसलिये विज्ञानमय कोश बु[द्धि] का है। मन और बुद्धि दोनों के कोश सूक्ष्म हैं। ज्ञानेन्द्रियों [का] सम्बन्ध दोनों में है किन्तु वृत्तियों का अंतर है। जिस प्रका[र] मनोमय कोश में मन और ज्ञानेन्द्रियाँ हैं उसी प्रकार विज्ञानम[य] कोश में बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। जब ज्ञानेन्द्रियों का मन [से] लम्बन्ध होता है तव मनोमय कोश और जब बुद्धि से संबंध हो[ता] है तव विज्ञानमय कहलाता है। जो इन्द्रियां मनोमय कोश में हैं वे ही विज्ञानयय कोश में हैं इसलिये मनोमय कोश ही सूक्ष्म बुद्धि वृत्ति वाला होने से विज्ञानमय कोश है। मनोमय से विज्ञान मय सूक्ष्म है। संसार की सब रचना विज्ञानमय कोश [से] आरम्भ और संबंध वाली होकर क्रम से स्थूल होती हुई मनो[मय] प्राणमय और अन्नमय कोश में आती है। मनोमय और विज्ञा[न] मय अंतःकरण रूप हैं। अंतःकरण सतोगुण का कार्य होने [से] निर्मल है इसलिये उसमें प्राणमय और अन्नमय कोश से चै[तन्य] का आभास विशेष पड़ता है। जैसे मनोमय कोश में आत्मा [का] सत् आभास बताया है इसी प्रकार विज्ञानमय में आत्मा [का] चित् आभास है, उसको चिदाभास कहते हैं। सामान्यता [से] जीव भी उसी को कहते हैं। जीव की पृथकूता का आर[म्भ] विज्ञानमय कोश से है। अंतःकरण में चित्त और अहंकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

वृत्तियाँ जो कही हैं उनका समावेश भी बुद्धि के साथ है इसलिये वे वृत्तियां भी विज्ञानमय कोश से भिन्न नहीं हैं। यद्यपि चिदाभास को जीव कहते हैं तो भी जीव की कारण रूपता चिदाभास से सूक्ष्म में है किन्तु कारण रूप में जीव की पृथक्ता मालुम नहीं होती इसलिये चिदाभास को ही जीव कहा है। कारण में चित्त और अहंकार की कारण रूपता अप्रत्यक्ष होती है और विज्ञानमय में मालूम होती है इसलिये उसे उसी में समझना चाहिये।

माया कारण और कार्य रूप दो प्रकार की है। आनन्दमय कोश की माया कारण रूप है और विज्ञानमय से लेकर सब कोशों की माया कार्य रूप है। कोई कोई कारण माया को अज्ञान और कार्यं माया को अविद्या कहते हैं। इस अज्ञान का आरम्भ विज्ञानमय कोश से होता है। "शरीर, इन्द्रियादिक में ज्ञान और क्रिया करने वाला मैं हूं" ऐसे बारम्बार अभिमान करने वाला जोव भाव है और पूर्व कर्मों की वासना के अनुसार पुण्य, पाप करने वाला और उसका फल रूप अनेंक योनियों को धारण करके फल भोगने वाला यह ही विज्ञानमय कोश है इस कोश की जाग्रत और स्वप्नावस्था है और सुख दुःखादिक भी इसी को होता है।

आत्मा के समीप होनें से विज्ञानमय कोश प्रकाश वाला है। यद्यपि इससे प्रथम का कोश आनन्दमय है परन्तु वह कारण माया का होने से पथक भाव रहित है। पृथक्ता में विज्ञानमय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कोश की ही आत्मा से समीपता है। आश्रम, धर्म, कर्म, गुण, शरीर, ऐश्वर्य आदिक के अभिमान वाला वही है और उसे ही भ्रम बुद्धि के कारण बारम्बार संसार प्राप्त होता है।

यद्यपि विज्ञानमय कोश जड़ है तो भी आत्मा के मेल से वह विशेष चैतन्य के समान होता है। उसमें रहने वाला आत्मा जब उसके कर्ता भोक्ता भाव के विकारों को अपने में मानता है तब वह उपाधि रूप हो जाता है। लौकिक जितने शास्त्र हैं उन सब की दृष्टि विज्ञानमय कोश से आगे नहीं है। जगत् के ऊँचे से ऊँचे तत्व ज्ञान की समाप्ति उसमें हो जाती है। आत्म बोधक शास्त्रों की वाणी भी यद्यपि उससे संबंध वाली है तो भी वह युक्ति पूर्वक बुद्धि से परे के तत्व का बोध कराती है। एक आत्म तत्व ज्ञान ही ऐसा है, जिसका आरम्भ विज्ञानमय कोश से होकर परब्रह्म तक जाता है। विज्ञान से समझते हुए, 'विज्ञान को छोड़ कर अपने को जानना शास्त्र की एक महा युक्ति है।

विज्ञानमय आनन्दमय का कार्य होने से आनन्दमय की पृथक् अवस्था में ढक जाता है और इसी प्रकार विज्ञानमय की पृथक् अवस्था में मनोमय, प्राणमय और अन्नमय कोश ढक जाते हैं। बुद्धि विकार वाली होने से विज्ञानमय कोश भी विकार वाला है।

एक बार शृंगी ऋषि एकांत वन में एक पर्वत के नीचे तपश्चर्या कर रहे थे। पेड़ों में से रिसते हुए रस को जिह्वा से चाट लेते थे, इसके सिवाय और कुछ भोजन नहीं करते थे। बहुत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

काल तपश्चर्या में व्यतीत होने से, स्वादादिक विषय सेवन न करने से विषयों का ज्ञान और स्मृति नष्ट समान होगई थी। पशु, पक्षी, मनुष्यादिक का संग वहां नहीं था इसलिये स्त्री पुरुष का भेद भी उनकी स्मृति में नहीं रहा था। परमात्मा परायण होकर वे अपनी आयु व्यतीत कर रहे थे। उन्हें अपने शरीर की प्रतीति थी तो भी उनका आचार विदेह मुक्त के समान होगया था। उनके समान त्यागी और तपस्वी उस समय और कोई नहीं था। उसी समय अयुध्यापुरी में महापराक्रमी और धर्मात्मा राजा दशरथ राज्य करते थे। वृद्धावस्था होने पर भी उनके पुत्र न होने से उनके गुरु वशिष्ठजी ने पुत्र प्राप्ति के निमित्त पुत्रेष्ठि यज्ञ करने की सम्मति राजा को दी और कहा कि पुत्रेष्ठि यज्ञ की समाप्ति तब सफल हो सकती है कि जब शृङ्गी ऋषि यज्ञमें आकर यज्ञ करावें। यह बात असंभवित सी थी इसलिये राजा दशरथ ने राज सभा में यह प्रतिज्ञा की कि जो कोई शृङ्गी ऋषि को ले आवेगा उसको मैं सुवर्ण रत्नादिक का बहुत बड़ा पारितोषक दूँगा। शृङ्गी ऋषि की तपश्चर्या और विदेह के समान आचार समझ कर उन्हें राजसभा में लाने को किसी की हिम्मत न पड़ी। उनके तप का प्रभाव जानकर और शाप के भय से कोई भी उन्हें लाने को तैयार नहीं हुआ एक वेश्या जो सब बातों में कुशल थी, उन्हें राज सभा में लाने की प्रतिज्ञा करके उनके स्थान की तरफ चली और स्थान के समीप पहुंच कर सब सामान और मनुष्यों को छोड़कर अकेली ऋषि के आश्रम के समीप पहुंच कर उनके आचार को देखने लगी। उनका आचार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

रखकदे वह भी घबराई परन्तु उसने हिम्मत न हारी। तीन दिन तक प्रातः, मध्यान्ह और सांयकाल को मुकाम से आकर उनकी चेष्टा देखती रहती। तीन दिन देखने से उसे मालूम हो गया कि ऋषि एक पेड़ से टपके हुए रस को दिन में एक बार जिह्वा से चाट लेते हैं। उस पेड़ को उसने पहचान लिया। चौथे दिन वेश्या रस के स्थान पर पेड़ में शहद लगा आई और एक पेड़ के नीचे छुपकर ऋषि की चेष्टा देखने लगी। प्रति दिन ऋषि एक बार रस चाटा करते थे आज उन्होंने दो तीन बार चाटा यह देखकर वेश्या जी में प्रसन्न हुई, दूसरे दिन उस पेड़ पर बहुत सा शहद लगा आई और छुपकर देखती रही। उस दिन ऋषि एक घण्टे तक पेड़ के चारों तरफ से शहद चाटते रहे। तीसरे दिन वेश्या ने पेड़ पर बहुत सा शहद लगा दिया और पेड़ के नीचे मेवा और घी पड़ा हुआ स्वादिष्ट हलुआ बनाकर रख दिया। जब ऋषि रस चाटने आये तो सामने कोई वस्तु रक्खी हुई देखकर उसे उठाकर खाने लगे तो बहुत ही प्रिय मालूम हुई। उस दिन रस चाटना छोड़कर वे अपने आसन पर जा बैठे। धीरे २ ऋषि को अपने वश आते हुए देखकर वेश्या जी में अपने कार्य की प्रशंसा करने लगी। कभी हलुआ, कभी खीर, कभी जलेबी, कभी अमृति, कभी बालूशाही इत्यादि प्रतिदिन पेड़ के नीचे धर आती और ऋषि उन्हें प्रेम से खा लेते। नित्य प्रति मिष्ठान भोजन करने से ऋषि के शरीर में बल आने लगा, इन्द्रियाँ सतेज होने लगीं और स्मृति और बुद्धि भी तीव्र होने लगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

एक दिन वेश्या ने कोई वस्तु पेड़ के नीचे न रक्खी। जब समय पर शृंगी ऋषि आकर भोजन की वस्तु ढूढ़ने लगे तब वेश्या निर्भय होकर एक थाल में उत्तम मिष्ठान लेकर उनके पास पहुंची और उसने उनके सामने रख दिया। ऋषि भोजन करने लगे, वेश्या खड़ी देखती रही। ऋषि ने उसे देखकर क्रोध भी न किया। अब तो प्रतिदिन ऐसा ही होने लगा। वेश्या ऋषि के पेड़ के नीचे आ जाया करे और भोजन लाकर खिला जाया करे।

एक दिन ऋषि पेड़ के नीचे आकर देर तक बैठे रहे परन्तु वेश्या भोजन न लाई तब तो वे घबराकर कहने लगे "हे देव! भोजन ला! भोजन ला!" छिपी हुई वेश्या भोजन लेकर आई और थाल रखकर प्रार्थनाकरने लगी "महाराज! क्षमा कीजिये! ऋषिराज! आज भोजन बनाने में देर हो गई!" ऋषि कुछ न बोले। कुछ दिनों तक इस प्रकार होता रहा। जब ऋषि भोजन मांगते तब वेश्या लाकर देती।

एक दिन जब ऋषि नें भोजन मांगा तब वेश्या ने सूखे टिक्कड़ लाकर सामने रख दिये। ऋषि खाने लगे, वेश्या खड़ी देखती रही। ऋषि उस दिन भोजन करके कुछ प्रसन्न न हुए तब वेश्या हाथ जोड़ कर कहने लगी "महाराज! आज का भोजन स्वादिष्ट नहीं है। आज भोजन का सामान नहीं था। मनुष्य शहर से सामान लेकर नहीं आया।" ऋषि कुछ न बोले। दूसरे दिन वेश्या ने फिर टिक्कड़ रख दिये ऋषि टिक्कड़

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

देखकर कहने लगे "हे देव ! ऐसा भोजन नहीं। प्रथम जैसा भोजन लाता था वैसा ला।" वेश्या प्रसन्न होकर जी में कहने लगी "ऋषि को भले बुरे का ज्ञान हो गया है। उत्तम भोजन खाने की कामना हो गई है।" हाथ जोड़ कर कहने लगी "सायं-काल को प्रथम के समान भोजन लेकर इस स्थान पर आऊंगी और आपको पुकार लूंगी।" ऋषि ने वेश्या की बात मानकर वे मन से टिकड़ खा लिये। सायंकाल को वेश्या अनेक प्रकार के मिष्ठान बनाकर ले आई और कहने लगी "ऋषि जी ! मैं भोजन ले आई हूं, आइये ! आप भोजन कीजिए।" शब्द सुनते ही ऋषि अपने स्थान से उठकर आ गये और भोजन करने लगे। इस प्रकार वेश्या ऋषि को दोनों समय भोजन कराने लगी।

एक दिन सायंकाल में जब ऋषि भौजन कर रहे थे वेश्या कहने लगी "महाराज ! मैं अकेली वन में पड़ी रहती हूं, कल रात्रि को सिंह का शब्द सुन कर मैं डर गई, वह मुझे खा जाता तो आपको भोजन कौन कराता ? ऋषि ने कहा "तू मेरे पास रात्रि को रहा कर।" उस दिन से वेश्या ऋषि के पास रहने लगी। क्रम क्रम से स्त्री पुरुष के भेद का ज्ञान भी उसने ऋषि को करा दिया और इस प्रकार उनको छल लिया।

वह ऋषि की स्त्री होकर रहने लगी और रहते रहते उसके तीन लड़के उत्पन्न हुए। प्रथम लड़का पांच वर्ष का, दूसरा तीन वर्ष का और तीसरा एक वर्ष का था। एक दिन वेश्या ने कहा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

"स्वामिन् ! हम कुटुम्ब वाले हैं। सबका पोषण इस वन में नहीं हो सकता ! जो कुछ मेरे पास था सब खर्च होगया। यदि किसी राजा का आश्रय लिया जाय तो आनन्द से निर्वाह चले।" ऋषि ने कहा "फिर क्या करना चाहिये ? कहां जाना चाहिये?" वेश्या ने कहा "थोड़ी दूर पर दशरथ राजा का राज्य है, वह राजा धर्मात्मा है। तपस्वियों को बहुत मानता है, यदि हम उसके दरबार में चले जाँय तो वह हमारी जीविका बाँध देगा।"

ऋषि ने राजा के पास जाना स्वीकार कर लिया, दोनों छोटे लड़कों को कंधे पर बैठाया और बड़े लड़के का हाथ पकड़ कर आगे आगे ऋषि और पीछे पीछे वेश्या इस स्वाँग से ऋषि दशरथ राजा की सभा में पहुंचे। 'वेश्या शृङ्गी ऋषि को लेकर आ रही है' ऐसा सुनकर सब सभाजन और शहर के लोग देखने दौड़े। लोग वेश्या की चतुराई से प्रसन्न होते थे और ऋषि की दुर्दशा देखकर दुखी होते थे और हँसते भी थे। कोई पूछता था "आप शृङ्गी ऋषि हैं ?" कोई कहता था "आपने बड़ी कृपा करके हमें दर्शन देकर कृतार्थ किया।" ऐसे अनेक प्रकार के व्यंग वचन लोग बोलते थे।

राजा दशरथ ने शृङ्गी के कुटुम्ब को अथवा वेश्या के कुटुम्ब को आदर सहित दिव्य स्थान में ठहराया। राजा की अभिलाषा से शृङ्गी ऋषि ने पुत्रेष्ठि यज्ञ का आरम्भ करके यथा विधि क्रिया से समाप्त कराया। पूर्णाहुति के भोजन में दूर-दूर देश से बहुतसे पंडित और ऋषि लोग आये थे। राजा दशरथ ने विचार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

किया "मेरा कार्य पूर्ण होने पर भी शृङ्गी ऋषि का प्रपंच में फंसा रहना ठीक नहीं है।" यह विचार शृङ्गी ऋषि और उनके कुटुम्ब को सब ऋषियों के साथ भोजन करने को बैठाया। यह देखकर एक त्यागी साधु बोल उठा "अरे राजा। यह क्या अनर्थ करता है ? हम लोगों के बीच में जोरू बच्चों वाले का क्या काम है ?" राजा ने कहा "महाराज। यह शृङ्गी ऋषि और उनका कुटुम्ब है।" त्यागी आश्चर्य युक्त होकर कहने लगा 'क्या। शृङ्गी ऋषि का कुटुम्ब है ? हमने तो सुना है कि वे पूर्ण ज्ञानी और त्यागी हैं ! क्या शृङ्गी ऋषि भ्रष्ट होगये ? हाय माया ! हाय नटनी ! हाय वेश्या ! तू ने ऋषि को भी अपने जाल में फंसा लिया। शृङ्गी में यदि अब भी कोई आत्म शृङ्ग शेष रहा हो तो उस जाल को काट कर भाग सकते हैं !" यह सुनते ही शृङ्गी ऋषि के कान खड़े हुए और उन्हें पूर्व की स्मृति आई। जैसे कोई नींद से चौंक पड़ता है इस प्रकार अपने कर्तव्य को विचार कर दुखो हो पछताने लगे और बड़े भारी उत्साह के साथ उठ खड़े हुए और भागकर वनमें किसी गुप्त स्थान में चले गये। राजा दशरथ ने अपनी प्रतिज्ञानुसार वेश्या को सन्मान सहित बहुत बड़ा पारितोषिक दिया और ऋषि से उत्पन्न हुए तीनों बालकों को पालन पोषण करने और विद्याध्ययन के लिये एक पंडित को सौंप दिया।

सिद्धान्त :—ऋषि आत्म स्वरूप है, एकान्त में रहने वाला और असंग है। वेश्या बुद्धि है, दशरथ रूपी देही राजा अपुत्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

है। उसने जब पुत्रेच्छा की तब माया विशिष्ठ चैतन्य रूप वशिष्ठ ने पुत्रेष्ठि यज्ञ करने का उपदेश दिया। जब तक आत्मा अपने भाव से हट कर बुद्धि के भाव वाला न हो तब तक पुत्रेष्ठ यज्ञ की सिद्धि नहीं होती इसलिये बुद्धि रूप वेश्या ने आत्मा रूपी ऋषि के पास जाकर क्रम २ से उसे अपने भाव वाला बनाती है। बुद्धि वेश्या इसलिये है कि उसका भाव एक पर नहीं रहता अनेकों की तरफ भाव करने वाली है। बुद्धि विज्ञानमय कोश है। स्त्री पुरुषों को वस्तुओं का और राग द्वेष का ज्ञान है अथवा नहीं है यह बुद्धि के सहारे जाना जाता है। जिसमें यह ज्ञान नहीं है वह आनन्दमय कोश है। वह बुद्धि का अभाव रूप होने से बुद्धि से बाहर नहीं है। बुद्धि में जब आत्मश्रृङ्ग-आभास आता है तब आनन्दमय और विज्ञानमय कोशों को सिद्ध करता है और ऋषिरूप आत्मा बुद्धि अनुरक्त होकर उसे अपना मानने लगता है, इस भूल से संसृति चलती है जो तीन पुत्रों के रूप से प्रगट होती है। वे तीनों पुत्र मनोमय, प्राणमय और अन्नमय कोश रूप हैं। जब कोई त्यागी रूप सद्गुरु मार्मिक वचन रूप उपदेश देता है तब आत्मा रूप ऋषि अपनी भूल को जान जाता है और लज्जित होकर सब प्रपंच को छोड़ अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त होता है। आत्मा जिस बुद्धि में अनुरक्त है ऐसी बुद्धि आत्माभास से कर्ता भोक्ता है अथवा बुद्धि से न मिलने वाला होकर भी मिला हुआ मानने वाला आत्मा भूल से कर्त्ता भोक्ता बन बैठता है। वह ही विज्ञानमय कोश कहलाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विज्ञानमय कोश से बंधन-संसार है इसलिये इस कोश की निवृत्ति होना मोक्ष है। आनन्दमय कोश की पृथक सत्ता नहीं है। विज्ञानमय से उसकी सिद्धि होती है और जब विज्ञानमय का समूल नाश हो जाता है तब उसका भी नाश हो जाता है और आत्म प्राप्ति होती है।

जैसे शृङ्गी ऋषि वेश्या से भिन्न थे वैसे ही आत्मा विज्ञानमय से भिन्न है। आत्मा स्वयं कर्ता भोक्ता नहीं है। आत्मा के जो लक्षण शास्त्र में बताये हैं और सद्गुरुओं से सुने जाते हैं वे इस प्रकार हैं:—आत्मा असंग, अक्रिय, अविनाशी, अविकारी, अव्यक्त, अनादि, सत्य, चित् आनन्द स्वरूप, निर्लेप विभु है। वह किसी का कर्ता अथवा कारण नहीं है मात्र द्रष्टा है। बुद्धि संग वाली होने से असंग नहीं है। बुद्धि चैतन्य की सत्ता से भिन्न २ कार्य करती है इसलिये क्रिया वाली है, अक्रिय नहीं है; अनेक भाव वाली होने से विकारी है बदला करती है, मर्यादा में होने से व्यक्त है, अव्यक्त नहीं हैं; अनादि अविद्या की होने से उत्पत्ति वाली है इसलिये अनादि नहीं है; परिणाम और नाश वाली होने से, विकार भाव में रहने वाली होने से अविचल सत्यस्वरूप नहीं है; पर प्रकाश से प्रकाशित होने वाली होने से चित् नहीं है, किन्तु माया की होने से जड़ है; परिच्छिन्न होने से अखंड आनन्द स्वरूप नहीं है, ज्ञान गुण वाली होने से ज्ञान स्वरूप नहीं है; सतोगुण में ज्ञान से, रजोगुण में क्रिया से और तमोगुण में उसका जड़ता से सम्बन्ध है इसलिये विकारी है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

निर्लेप नहीं है; परिच्छिन्न होने से विभु नहीं है; अज्ञान का कार्य है और मन, प्राण, शरीर आदि का कारण है इसलिये वह कार्य कारण से रहित नहीं है; जानी जाती है इसलिये द्रष्टा नहीं है। इस प्रकार आत्मा का एक भी लक्षण उसमें नहीं मिलता, सब लक्षण विपरीत हैं, तब वह आत्मा किस प्रकार हो" बुद्धि आदिक में आत्मभाव करना-मानना ही अज्ञान है इसलिये तू यह निश्चय कर कि ऊपर बताया हुआ विज्ञानमय कोश तू-आत्मा नहीं है।

शिष्य:—(सोचकर) बुद्धि जानने में आती है, आत्मा जानने में नहीं आता, जो आपके उपदेश के अनुसार बुद्धि को आत्मा न समझूँ, उसे छोड़ दूँ तो मैं ही नहीं रहता। यदि मैं पृथक् भाव से दीखता होता–समझ में आता होता तो बुद्धि को भिन्न समझता परन्तु ऐसा नहीं होता इसलिये आपका यह उपदेश इस प्रकार हुआ:–एक रोगी अपने रोग की निवृत्ति के लिये एक वैद्य के पास गया। रोगी रोग निवृत्ति करना चाहता था शरीर की निवृत्ति करना नहीं चाहता था। वैद्य ने कहा "शरीर की निवृत्ति के साथ ही रोग की निवृत्ति होगी" ऐसे कहने वाले वैद्य से कोई भी समझदार मनुष्य अपने रोग की औषधि नहीं करावेगा। मैं बुद्धि ही हूँ क्योंकि इसके सिवाय मैं और कुछ नहीं देखता। जब बुद्धि को छोड़ दूँगा तो मैं ही न रहूंगा फिर बुद्धि छोड़नें का फल किसको होगा?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

संत:—मेरे वचनों को पूर्ण समझे बिना तू अपने ही भाव को प्रगट कर रहा है, जो मैं पूँछू उसका उत्तर दे, रोग कहाँ था और रोगी कौन था ?

शिष्य:—रोग पेट में था और रोगी मनुष्य था।

संत:—यह तेरा कहना विरुद्ध मालूम देता है ! जब पेट में रोग था, तब पेट रोगी हुआ। मनुष्य कैसे रोगी हुआ।

शिष्य:—पेट मनुष्य का था इसलिये मनुष्य रोगी हुआ।

संत:—इसका अर्थ तो यह हुआ कि जब तेरा घोड़ा बीमार होवे तब तू अपने को बीमार माने।

शिष्य:—नहीं !

संत:—क्यों ?

शिष्य:—घोड़ा भिन्न है। मैं भिन्न हूँ ! घोड़ा ही बीमार कहा जायगा, मैं बीमार नहीं कहलाऊँगा। मैं और मेरा पेट एक ही है इसलिये पेट में बीमारी होने से मैं बीमार कहलाऊँगा।

संत:—जब तू और पेट एक ही है तब 'मेरे पेट में दुःख है' ऐसे क्यों कहता है ?

शिष्य:—ऐसा कहने का तो अभ्यास पड़ गया है।

सन्त:—तब तू 'पेट मैं हूँ' 'पेट मैं हूँ' ऐसा दो चार वार पुकार कर सुना दे।

शिष्य:—ऐसा कहने से तो लोग मुझे पागल कहेंगे।

सन्त—सत्य है, पागल ही इस प्रकार कहते हैं। वे कहते हैं और तू मानता है तो क्या तू पागल न हुआ ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

शिष्यः—तब क्या मैं पेट नहीं हूं ?

संतः—नहीं, तू पेट नहीं है, तू अपनी और पेट को एकता करके कहता है, यही तेरा कहना पागलपन–अज्ञान है। जैसे अज्ञान की अवस्था में तू अपने को पेट से पृथक नहीं समझता ऐसे ही बुद्धि को भी पृथक् नहीं समझता। पेट के असाध्य रोग की निवृत्ति पेट के न रहने पर ही होती है, तब वैद्य ने क्या बुरा कहा था ? आत्मा भिन्न है, दर्द वाला पेट भिन्न है, पेट न रहने से आत्मा न रहेगा यह न समझना चाहिये। जब कोई रोगी किसी महान् व्याधि में बहुत समय तक पीड़ा भोगता रहता है और व्याधि निवृत्त न होगी ऐसे निश्चय पर आजाता है, तब अति दुःख से स्वयं अपनी हत्या कर लेता है। अब विचार कर उसने शरीर क्यों त्यागा ? शरीर रहने से आत्मा को दुःख होता है, शरीर जो रोगी है यदि न रहे तो आत्मा को दुःख न हो ऐसा विचार कर ही वह शरीर की हत्या करता है। बुद्धि और आत्मा के सूक्ष्म अंतर को अज्ञान के कारण तू समझ नहीं सकता, इसलिये मेरे कहे अनुसार अपना लक्ष पहुंचाता जा। आत्मा न दीखे तो न सही, मेरे कहे अनुसार आत्म भावना का निश्चय कर। मननादिक जो कहा जाय करता जा, अभ्यास के बाद तुझे स्वयं आत्मा की प्रतीति होने लगेगी। बुद्धिभाव से होने वाले दुःख बुद्धिभाव की निवृत्ति बिना निवृत्त न होंगे। सुषुप्तिमें बुद्धि नहीं दीखती, उस समय 'मैं नहीं था' ऐसा तू कब मानता है। बुद्धि दृश्य है, आत्मा द्रष्टा है तब बुद्धि आत्मा कैसे हो ? बुद्धि भ्रान्तिमय है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

आत्मा सत्य है, यदि उसे तू प्रत्यक्ष रूप से न जाने तो भी उसकी अस्तित्वता को तू मिटा नहीं सकता। बुद्धि भेद भाव में है, नाम रूप के भेद को ग्रहण करती है, आत्मा ज्ञान स्वरूप है, उसके ज्ञान को बुद्धि भेद में बांट देती है। भेद रहित एक रस ज्ञान आत्मा है। इस सूक्ष्म लक्ष से आत्मा और बुद्धि का भेद समझ कर आत्मा को ही 'मैं' मान।

जैसे बुद्धि तू नहीं है ऐसे ही बुद्धि तेरी भी नहीं है। आभास रूप आत्मा बुद्धि में प्रतिबिम्बित होकर उसे अपनी मानता है। शुद्धात्मा में मेरा तेरा नहीं है तब बुद्धि उसकी किस प्रकार हो? आभास अज्ञान में पड़ा हुआ होने से आभास का मानना जो भ्रान्ति का है वह ही संसार है। यदि तुझे परम पद की इच्छा हो तो इस प्रकार मत मान। संसारी बुद्धि से आत्मा को भिन्न मानना नहीं हो सकता क्योंकि संसार ही बुद्धि का व्यापार है, संसार में टिक कर आत्मा को बुद्धि से भिन्न नहीं जान सकते। आत्मभान रहित जिसकी बुद्धि आत्मा बनी है ऐसा पुरुष तेरे समान यह ही कहेगा कि बुद्धि को छोड़ दूँ तो मैं ही न रहूंगा। मेरे कहे अनुसार संसारी भाव की बुद्धि को दूर करके आत्म भाव वाली बुद्धि बना, उस बुद्धि द्वारा संसारी बुद्धि को निःशेष काट दे, तब आत्म भाव वाली बुद्धि से आत्मा पृथक् मालूम होगा। पश्चात् जिस कार्य के निमित्त आत्म भाव वाली बुद्धि बनाई थी उस कार्य के समाप्त होने पर और आत्मा में संसरना रूप बुद्धि का कार्य न रहने से आत्मा का साक्षात्कार हो जायगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जो बात अपनी बुद्धि से समझ में न आवे वह बात झूठी है ऐसा नहीं कह सकते। जब क्रम क्रम से बुद्धि समझने योग्य होजाती है तब प्रथम जो बात समझ में नहीं आती थी, आ जाती है। अभी तेरा अंतःकरण पूर्ण शुद्ध नहीं है, उसे शुद्ध करने के लिये श्रद्धा सहित श्रवण और सत्संग करना चाहिये।

तूने जो प्रथम कहा था कि मैं नहीं रहूंगा, यह तेरा कहना ठीक है। जिस बुद्धिवाला तू बन बैठा है उस बुद्धिवाला अवश्य नहीं रहेगा। आत्मा बनता नहीं है इसलिये बिगड़ता भी नहीं है। आत्मा प्रथम नहीं था, अब आया है और पीछे चला जायगा ऐसा नहीं है। आत्मा का लक्ष आत्म भाव की बुद्धि से करना चाहिये, उसमें भी बुद्धि के अंश को बाध करके लक्ष करना चाहिये। जैसे एक कटोरे में पानी भरा हुआ है, यदि उस पानी को निकाल दें तो क्या रहा ? तू कहेगा कि कुछ भी न रहा क्योंकि तू पानी को ही समझ रहा है। पानी तो न रहा परन्तु पानी जिस अधिष्ठान रूप कटोरे में था वह कटोरा तो कहीं नहीं गया। जब पानी था और जब निकाल दिया गया उन दोनों अवस्थाओं में कटोरा ज्यों का त्यों रहा-विकार को प्राप्त न हुआ। इसी प्रकार जल को बुद्धि और आत्मा को कटोरा समझ। जल कटोरा नहीं है और कटोरे का भी नहीं है और जल सहित कटोरा जल की उपाधि वाला कहा जाता है। जिस प्रकार कटोरे में अपना अहंभाव और जलका ममत्व नहीं है इसी प्रकार आत्मा में अहंभाव नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

और भी देख, जब तू कटोरे के जल को देखता है तब तुझे कटोरे का भान नहीं होता और जब कटोरे को देखता है तब जल का ज्ञान नहीं होता। जो तू कहे कि मैं एक ही समय जल और कटोरा दोनों देखता हूँ तो यह युक्त नहीं है क्योंकि एक क्षण में एक ही वस्तु देखी-जानी जाती है, ऐसे ही जब तक बुद्धि का भाव हटा कर न देखे तब तक आत्मा तेरी समझ में नहीं आवेगा। आत्मा त्रिकाल अबाधित, असंग है, असंग होते हुए भी भ्रांति के संग दोष से बुद्धि के सत्वादिक गुणों से विषयात्मक भाव को प्राप्त होता हैं परन्तु जब बुद्धि का बाध किया जाता है तब असंग प्रतीत होता है सब स्थावर जंगम बुद्धिमय हैं जब बुद्धि का लय होता है तब प्रपंच का लय हो जाता है और जब बुद्धि प्रकट होती है तब सब प्रपंच प्रगट होता है इसलिये ही जगत् बुद्धिमय कहा है। विषयाकार बुद्धि जगत् और बंधन है और बुद्धि का आत्मभाव में लय हो जाना मोक्ष है। इसलिये तू विज्ञानमय कोश नहीं है और वह तेरा-आत्मा का भी नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कारण शरीर

स्थूल और सूक्ष्म शरीर के पीछे सबसे अन्तिम कारण शरीर है। यह अव्यक्त भाव वाली माया का है। स्थूल शरीर हर एक का भिन्न २ है, सूक्ष्म शरीर भी वासना का होने से भिन्न २ मालूम होता है किंतु कारण शरीर अति सूक्ष्म होने से भिन्न मालूम नहीं होता। स्थूल शरीर जगत् का है, सूक्ष्म शरीर संस्कार-वासना स्वरूप है और कारण शरीर अति सूक्ष्म कारण माया का है। तीनों गुणों की साम्यावस्था वाली जो माया है, जिसमें गुणों का पृथक् भेद प्रतीत नहीं होता, उसका कारण शरीर है इसलिये उसमें भी पृथकता नहीं दीखती। कारण शरीर की माया माया का स्वरूप ही है इसलिये कारण शरीर में सबको एक ही समान अनुभव होता है। एक अव्यक्त माया सब का कारण है इसलिये सब शरीरधारी जब माया के कारण भाव में जाते है तब एक हो जाते हैं।

कारण शरीर तमोगुण की विशेषता वाला कहा जाता है। तमोगुण अन्धकारमय है, उसमें अन्धकार विशेष है इसलिये उसमें पृथक् भाव होते हुए भी, अन्धेरा ही दीखता है। विशेष अन्धेरा होने से रजोगुण की क्रिया और सतोगुण का प्रकाश दोनों इतने दब जाते हैं कि वे मालूम नहीं होते। जहाँ तीनों गुणों की भिन्नता मालूम न हो उसे साम्यावस्था कहते हैं। जैसे उजाले में बैठा हुआ एक मनुष्य जब वहां से उठकर अन्धेरे में जाता है तो उसे थोड़ी देर तक कुछ दिखाई नहीं देता किंतु थोड़ी देर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

पीछे उसे अन्धेरे में भी कुछ २ दीखने लगता है और वहाँ उसको क्रिया भी होती है। उजाले से अंधेरे में जाने की हालत कारण शरीर के समान है। कारण शरीर अंधकार वाला एक ही प्रकार का होने पर भी अनेक प्रकार के भावों के बीज सहित है। वह ही बीज वासना रूप और स्थूल रूप होता है। जैसे घास फूंस के बीज जब मिट्टी में मिल जाते हैं तब मिट्टी से पृथक मालूम नहीं होते परंतु जब वर्षा होती हैं तब उग आते हैं और प्रथकता से जाने जाते हैं। इसी प्रकार कारण शरीर में रहने वाली द्वैतता दबी रहती है। यदि वह एक हो जाती तो फिर प्रथम के स्थूल शरीर में नहीं आती। जो जिस दबाव में दबा होता है वह उस दबाव के चले जाने पर ही उसमें से निकलता है इसलिये कारण शरीर वासना के बीज से रहित नहीं होता।

जिस प्रकार बहुत सूक्ष्म वट के बीज में वट का वृक्ष रहता है किंतु दिखाई नही देता इसी प्रकार कारण शरीर में सूक्ष्म और स्थूल शरीर रहते हुएभी दिखाई नहीं देते।जबवे चेष्टा करते हैंतब कारण शरीर सहित ही करते हैं किंतु उन दोनों के भाव रूप में होने पर कारण शरीर पृथक् नहीं समझा जाता। उसको पृथक् समझने के लिये सुषुप्ति अवस्था है। उसमें द्वैतता का दर्शन नहीं है इसलिये वह आत्मा के अत्यन्त समीप कहा जाता है। स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों का कारण कारण शरीर है। जैसे हर एक वस्तु कारण में से कार्य में आती है और कारण कार्य से पृथक् नहीं रह सकता इसीप्रकार स्थूल और सूक्ष्मकी बिना कारण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

स्थित नहीं है। कारण भिन्न हो और सूक्ष्म भिन्न हो ऐसा नहीं है, कारण शरीर सूक्ष्म शरीर का ही सूक्ष्म अंश है इसलिये कार्य रूप सूक्ष्म का समूल नाश होने के पश्चात कारण का नाश करना अवशेष नहीं रहता, सूक्ष्म के समूल नाश होने से ही कारण का नाश हो जाता है। कारण अप्रत्यक्ष और द्वैत भाव रहित है इसलिए उसका पृथक् नाश नहीं करना पड़ता।

कारण शरीर माया की साम्यावस्था का और कार्य में अनुगत होने से बदलता नहीं है। माया अनादि कल्पित होने से कारण शरीर भी उसका होने से अनादि और माया में अंत रहित है परन्तु जब अज्ञान-कल्पना की ज्ञान से निवृत्ति होती है तब कल्पना के दोनों शरीरों की निवृत्ति एक साथ ही हो जाती है और प्रारब्ध के समाप्त होने पर स्थूल शरीर का बाध होकर कैवल्य की प्राप्ति होती है।

सुख दुःख, लाभ हानि, मैं तू, हर्ष शोकादि, जितने द्वन्द्व हैं, वे सब द्वैत में होते हैं, जहां द्वैत नहीं है वहां सुख दुःखादिक भी नहीं है। कारण शरीर में द्वैत की प्रतीत नहींहोती इसलियेसुख दुःख का अनुभव भी नहीं होता। स्थूल और सूक्ष्म शरीर में मैं और तू आदिक का भेद होता है वहां दुःख होता है कारणशरीर में मैं तू का भेद न होने से वह दुःख रहित है। दुःख रहित होने पर भी वह आत्मा अथवा मोक्ष स्वरूप नहीं है क्योंकि दुःख की अत्यन्त निवृति और परमानन्द की प्राप्ति ये दो लक्षण मोक्ष के बताये हैं। कारण शरीर में दुःख की निवृत्ति अवश्य होती है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

किन्तु वह निवृत्ति क्षणिक है। अज्ञान की गहराई में दुःख मालूम नहीं होता इसलिये 'दुःख नहीं है' ऐसा नहीं कह सकते। कारण शरीर में दुःख बीज रूप होने से स्वप्न और जाग्रत अवस्था में फिर दुःख मालूम होता है इसलिए दुःख की अत्यन्त निवृत्ति न हुई।

द्वैत का भाव न होने से कारण शरीर में आनन्द भी मालूम होता है किंतु वह आनन्द विषयों का अभाव रूप है और माया में है इसलिये आत्मा का परमानन्द नहीं है। परमानन्द तो अज्ञान की निवृत्ति और आत्मबोध से ही होता है। कारण शरीर में अज्ञान की निवृत्ति और आत्मबोध नहीं है। कारण शरीर और आत्मा में सूक्ष्म अंतर है। सुषुप्ति और समाधि अवस्था समान दीखती हैं क्योंकि दोनों में विषयों का अभाव है तो भी वे दोनों भिन्न भिन्न हैं, दोनों का मार्ग एक दूसरे से विरुद्ध है। सुषुप्ति अज्ञान स्वरूप है और समाधि ज्ञान–आत्म स्वरूप है। एक विद्वान् पुरुष विद्या के प्रभाव से स्थिर बुद्धि वाला है और दूसरा मूढ़ता के कारण स्थिर दीखता है। जैसे मूढ़ में दीखती स्थिरता का हेतु मूढ़ता होने से वह वास्तविक स्थिरता नहीं है इसी प्रकार कारण शरीर में अज्ञान के घन भाव से दीखती हुई अद्वैतता वास्तविक नहीं है।

सहनशीलता एक शुभ गुण कहा जाता है, यह सहनशीलता शुभ गुणों से और लोभादि दुर्गुणों से भी होती है। जैसे शुभ गुणों से उत्पन्न हुई सहनशीलता ही वास्तविक सहनशीलता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

है और दुर्गुणों के कारण उत्पन्न हुई सहन शीलता यथार्थ नहीं है इसी प्रकार आत्मा और कारण शरीर का भेद है।

जैसे दुकानदार प्रातःकाल होते ही अपनी दुकान खोल कर और माल रख कर बैठता है, यह जीव रूप व्यापारी की स्थूल शरीर रूप जाग्रतावस्था है; और दुकानदार जो माल खरीदता अथवा बेचता है, उसको अपनी वही में लिखता रहता है यह जीव रूप व्यापारी का सूक्ष्म शरीर है क्योंकि वस्तु बिना ही वस्तुओं का और दामों का भाव होता है; और जैसे रात होने पर दुकानदार दुकान पर रक्खी हुई बही सहित सब वस्तुओं को समेट कर भीतर रख देता है और दुकान का ताला लगा देता है तब अन्धेरे में सब वस्तुयें होने पर भी, अलग २ भाव से मालूम नहीं होतीं, मात्र एक दुकान ही रह जाती है, यह जीव का कारण शरीर है। फिर सबेरा होते ही दुकान खोली जाती है, दिन भर बिक्री होती है, रात को दुकान बन्द करदी जाती है इसी प्रकार तीनों शरीर और उनकी अवस्थाओं में बदली हुआ करती है। इस दृष्टाँत से समझ में आगया होगा कि कारण शरीर अविभक्त होते हुए भी विभक्तपने से रहित नहीं है।

गाढ़ी निद्रा रूप सुषुप्ति अवस्था कारण शरीर की है जहां जाग्रत और स्वप्न दोनों प्रकार के प्रपंच वस्तुओं का और अपनें, पराये का भान नहीं होता, उस समय आत्मा बाहर भीतर का भाव छोड़ कर हृदय में टिकता है इसलिये कारण शरीर का स्थान हृदय है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जैसे स्थूल शरीर की बाहर आने वाली वाणी बैखरी और सूक्ष्म शरीर की कंठ स्थान वाली मध्यमा है इसी प्रकार कारण शरीर की अबाह्य रूप पश्यन्ती वाणी है। चौथी वाणी जीवन्मुक्तों की है परम होने से उसका नाम परा है। जैसे स्थूल शरीर का स्थूल भोग और सूक्ष्म का सूक्ष्म भोग है इसी प्रकार कारण शरीर का आनन्द भोग है, वहाँ विषयों के पृथक् भाव की अभाव रूप स्थिति आनन्द है। कारण शरीर की शक्ति द्रव है, जो उसमें से सूक्ष्म और स्थूल शरीर में आती है। चैतन्यता के समीप होने से वह चेतोमुख कहलाता है। तम उसका गुण है। ॐकार कामकार उसकी मात्रा है। उस समष्टि के अप्रत्यक्ष अभिमानी जीव को प्राज्ञ कहते हैं।

जब मैं गुरुदेव के समीप निवास करता था तब मैंने महाराजजी से एक दृष्टांत सुना था। गुरुदेवः—मेरा जन्म एक मल्लाह के यहाँ हुआ था इसलिये मैं छोटेपने से नाव को इस पार से उस पार ले जाया करता था। अज्ञानसर नाम के एक भारी तालाब में मेरी नाव थी। उस तालाब की दक्षिण दिशा में एक भारी शहर था जिसमें सब मल्लाह ही रहते थे। बस्ती बड़ी होने से वहाँ अनेक प्रकार के धंधे होते थे, कई प्रकार की वस्तुएँ पैदा होती थीं, कच्चे माल को बनाने की कई कलें थीं। उनमें अखंड अग्नि जला करता और दिन भर धुँवां निकला करता था। अनेक वाणिज्य की दुकानें, गोदाम और कोठियां थीं। हुंडी परचे का काम और सट्टा भी बड़े जोर से चलता था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

लोग क्षणमें श्रीमान् और क्षणमें भिखारी बन जाते थे। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में जीव जन्तु बढ़ जाते हैं इसी प्रकार वहां की बस्ती बढ़ गई थी और बढ़ती ही चली जाती थी। सब लोग उन्नति उन्नति पुकारते थे और कुछ अपनी मति अनुसार करते भी थे, क्योंकि उनको उन्नति क्षणिक और अधोगति सहित थी। कोई रोता था तो कोई हँसता था, कोई भीख माँगता था तो कोई दान देता था, कोई विवाह करता था तो कोई स्त्री मर जाने का शोक करता था, कोई पुत्र जन्म का उत्सव करता था तो कोई पुत्र की मृत्यु होने से दुःखी होता था। राजमहल के समान हर एक अपना घर बनाना चाहता था। हर एक अच्छा अच्छा खाने पीने, पहिनने ओढ़ने और सैर सपाटे में आयु व्यतीत करता था। संसार भर का धन मेरे ही घर में आ जाय ऐसी हर किसी की इच्छा बनी रहती थी। जैसा मैंने लोगों का वर्णन किया ऐसा ही मैं भी था, दिन रात विषय सेवन में मदोन्मत्त रहता था। कभी घोड़ा गाड़ी में बैठने का, कभी मोटर गाड़ी में सैर करने का और कभी वायुयान में ऊंचे उड़ने का मैं बड़ा प्रेमी था और कभी कभी प्रसंग वश अपनी इच्छा को तृप्ति भी कर लिया करता था।

उस महान् तालाब का दूसरा किनारा कुछ और प्रकार का था। वह दिव्य वन के नाम से पुकारा जाता था। जो जो रचना शहर में थी वह सब ही रचना सूक्ष्म रूप से उस वन में भी थी। वन में मनुष्य विचरा करते थे और शहर के सब काम काज भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

वहाँ देखने में आते थे। वह वन होनें से पेड़, पत्ते और कांटों से भरा हुआ था। वहाँ के सब दुःख भी शहर के समान ही थे किंतु वन में शहर से एक यह दिव्यता विशेष थी कि किसी को कुछ काम नहीं करना पड़ता था, सब का संकल्प सिद्ध था, जिस वस्तु का संकल्प होता था वह ही वस्तु प्राप्त हो जाती थी। संकल्प से ही दुःख होता था तो भी उस समय किसी को यह मालूम नहीं होता था कि उसके संकल्प के अनुसार सब रचना है। मैंने सुख दुःख दोनों का ही अनुभव किया। कभी शहर देखता था, कभी वन में घूमता था और कभी नाव की सैर किया करता था इस प्रकार मैंने अनन्त चक्र लगाये।

जिस तालाब में मैं नाव खेता था उसका जल स्याही के समान काला था और जब नाव पर चढ़ता तब जल के कारण से आकाश में भी अंधेरा हो जाता था। दिन होते हुए भी सूर्य का प्रकाश न दीखता। मैं नाव को अभ्यास की बल्ली से खेता था। जल की कालिमा से जल, मेरी नाव और मेरा शरीर भी नहीं दीखता था। शहर और वन पास होने पर भी दिखाई नहीं देते थे। तीनों स्थानों में चक्र लगाते २ मैं थक गया था, बूढ़ा भी हो गया था, धंधा होता न था इसलिये घबराता था और धंधा छोड़ना चाहता था। शहर वाला अथवा वन वाला जो कोई मुझे मिलता उससे मैं पूछा करता "भाई नाव की बल्ली मेरे हाथ से कैसे छूटेगी ?" इसका उत्तर कोई नहीं देता था यद्यपि वे सब मल्लाह ही थे परन्तु किसी ने बल्ली छोड़ी नहीं थी इसलिये बल्ली के छोड़ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

का उपाय भी किसी को मालूम न था। अन्त में एक बार मैं शहर में घूम रहा था वहां एक प्रकाश वाला परदेशी मैंने देखा। स्वभाव से ही मैं उसकी तरफ आकर्षित हुआ और उसके पास जाकर प्रणाम करके नम्रता सहित बैठ गया। फिर मुझमें और उसमें वह बातचीत हुई:—

मैं:—(नम्रता सहित) हे तेजस्वी ! नाव खेते २ मैं बूढ़ा हो गया हूं ! अब मुझे महान कष्ट मालूम होता है। मेरे हाथ से नाव चलाने की बल्ली कैसे छूटेगी ?

परदेशी:—(हंसकर) अरे सोधे साधे मल्लाह ! जब तू नाव खेना छोड़ देगा तभी बल्ली तेरे हाथ से छूट जायगी।

मैं:—हाय ! यह मुझसे नहीं बन सकता।

परदेशी:—यदि तू ऐसा नहीं कर सकता तो बल्ली किसी दूसरे के हाथ में तो पकड़ा सकता है।

मैं:—हां महाराज ! यह तो कर सकता हूं। बताईये किसको पकड़ा दूं ?

परदेशी:—सुन तेरे साथ एक स्त्री रहा करती है, तालावके अंधेरे के कारण वह तुझे दीखती नहीं है, जब तू नाव पर बैठे तब टटोल कर देखियो, उस स्त्री का हाथ तेरे हाथ में आयगा, उसके हाथ में बल्ली पकड़ा दीजो और तू तुरन्त ही नाव से कूद पड़ियो।

जब मैंने उस परदेशी के कहे अनुसार किया तो क्या देखता हूं कि न तो शहर दिखाई देता है, न सामने वन है, न तालाव है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

न तालाब का जल है। तब से मैंने नाव खेना छोड़ दिया है। अब सुख दुःख रहित प्रसन्न रहता हूँ। इच्छानुसार निस्पृह विचरता हूं।

सिद्धान्तः—मल्लाह जीव है, संसार अज्ञान है, आज्ञानसर कारण शरीर है, उसका काला जल माया है, भ्रांति अन्धेरा है, दोनों किनारे स्थूल और सूक्ष्म शरीर हैं, स्थूल शरीर और जाग्रत अवस्था का सब भोग मल्लाह का शहर है, स्थूल शरीर का व्यापार शहर का व्यापार है, सूक्ष्म शरीर और उसके वासनामय भोग दिव्य वन है, उसकी सब रचना स्थूल शरीर के समान है, दिव्यता मानसिक क्रिया की है, कारण शरीर में से स्थूल और सूक्ष्म शरीरों में आना दोनों किनारों पर नाव ले जाना है। जब जीव रूपी मल्लाह देह रूपी नाव खेते-खेते थक जाता है और उसे दुःख मालूम होता है तब नाव खेना बुरा समझ कर सँसार की निवृत्ति चाहता है और उसका उपाय हर किसी से पूछता है परन्तु सँसारी मनुष्य उसका उत्तर नहीं दे सकते। परदेशी दिव्य पुरुष सद्गुरु है। परदेशी इस कारण है कि उसकी स्थिति सँसार में नहीं है। वह उपदेश देता है कि जीव! तू कर्ता भोक्ता के भाव रूप बल्ली को छोड़ दे। जीव को यह बात कठिन मालूम होती है, तब सद्गुरु कहता है कि अविद्या स्वरूप एक स्त्री तेरे साथ रहती है, वह तेरे साथ होते हुए भी कारण शरीर में नहीं दीखती, उसका कारण अँधेरा है, उस स्त्री का नाम बुद्धि है, तू कर्ता भोक्ता के अभिमान रूप बल्ली को, बुद्धि को टटोल के-पहि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

चान के उसके हाथ में दे दोजो और तुरन्त ही देहाध्यास रूपी नाव पर से नीचे कूद पड़ियां। आत्मा कर्ता भोक्ता नहीं है, कर्ता भोक्ता और प्रपंच का सब भाव माया और उसकी बनी हुई आकृति रूप बुद्धि का है। जब मल्लाह-जीव सब बोझा उस (बुद्धि) पर पटक देता है तब सुख दुःख रहित प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

इस दृष्टाँत से कारण शरीर और उससे मुक्त होने का उपाय समझ में आगया होगा।

स्थूल और सूक्ष्म शरीर को समान कारण शरीर भी आत्मा नहीं है क्योंकि आत्मा के लक्षणों से उसका कोई लक्षण नहीं मिलता। आत्मा द्रष्टा, अविकारी, बोध स्वरूप, व्यापक, अपरिच्छिन्न, नित्य, निर्मल, प्रकाश स्वरूप, चैतन्य स्वरूप, आनन्द स्वरूप और अद्वैत है। इससे विरुद्ध कारण शरीर देखने और समझने में आने से दृश्य है, स्थूल और सूक्ष्म दोनों उसके विकार होने से सुषुप्ति अवस्था में जड़ होने से सूक्ष्म में वासनामय और स्थूल में क्रिया वाला होने से विकारी है, वह अपने और दूसरे को नहीं जानता इसलिये जड़ अबोध रूप है, भ्रान्ति से व्यापक के समान मालूम होते हुए भी अणु है, क्योंकि हृदय उसका स्थान है इसलिये परिच्छिन्न है, सूक्ष्म और स्थूल में परिवर्तन होता है इसलिये अपरिच्छिन्न नहीं है, सदा एक स्थिति में नहीं रहता इसलिये नित्य नहीं है, अपने कार्य के सूक्ष्म संस्कारों से युक्त होने से निर्मल नहीं है, तमोगुण वाला होने से अंधकारमय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

है इसलिये प्रकाश स्वरूप नहीं है, अचेतन होने से चित् स्वरूप नहीं है और आनन्द वाला होने से आनन्द स्वरूप नहीं है, उसका आनन्द अनित्य क्षणिक है माया की एकता में है और आवरण सहित है इसलिये वह आनन्द स्वरूप नहीं है वह अद्वैत समान दीखता है तो भी बीज रूप संस्कार होने से द्वैत रूप है, द्वैत भाव का उसमें अभाव है, पर अद्वैतता उसमें नहीं है और द्वैत का उत्पादक होने से भी वह अद्वैत नहीं है। ऐसे विरुद्ध लक्षणों वाला होने से कारण शरीर आत्मा नहीं है। आत्मा उससे भिन्न-भिन्न है ऐसा निश्चय करना चाहिये।

ऊपर वर्णन किये हुए तीनों शरीर माया के हैं। तू चैतन्य स्वरूप माया का नहीं हो सकता। तू शरीर न होते हुए भी किसी एक अथवा विशेष में आत्मा की भ्रान्ति करके अज्ञानी जीव बन बैठा है, वस्तुतः तुझमें अज्ञान नहीं है। तू संसारी भी नहीं है किन्तु तेरी मानसिक कल्पना का भूत—अज्ञान तुझमें भर जाने से तू अपने को सुखी, दुःखी मानता है।

शिष्यः—आत्मा कारण शरीर नहीं है तब कौन है ? तीनों शरीरों में कारण शरीर सबसे सूक्ष्म है वह भी मैं—आत्मा नहीं हूं तब आत्मा और कौन है ? मेरी समझ में तो आत्मा के लक्षण कारण शरीर से मिलते हैं इसलिये कारण शरीर ही आत्मा हो ऐसा समझ में आता है। आत्मा को अद्वैत, असंग, अक्रिय और निर्विकार कहते हैं, कारण शरीर भी इसी प्रकार का है। कारण शरीर में द्वैत का भान न होने से अद्वैत है, क्योंकि वहां मेरा, तेरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

और अन्य पदार्थ नहीं होते, आत्मा को भी ऐसा ही अद्वैत आप कहते हैं। किसी पदार्थ का संग कारण शरीर में नहीं है, इसलिये आत्मा का असंग लक्षण उसमें घटता है। जैसा आप आत्मा को अक्रिय बताते हैं वैसा ही वह है क्योंकि उसमें स्थूल अथवा मानसिक कोई क्रिया नहीं होती। उसमें कोई विकार भी नहीं है, जो विकार होता तो मालूम होता, विकार मालूम नहीं होता इसलिये उसमें विकार कोई नहीं है। ऐसे लक्षण मिलने पर भी वह आत्मा क्यों नहीं है? यदि उसके सिवाय आत्मा कोई और है तो समझने में क्यों नहीं आता?

संत:—मैं प्रथम समझा चुका हूं फिर भी सुन:—आत्मा की अद्वैतता कारण शरीर के समान नहीं है। आत्मा अखंड अद्वैत है-चेतन है। कारण शरीर में अद्वैतता नहीं है, वहां मात्र द्वैतता का अभाव ही नहीं है, किंतु अभाव भाव को भी प्राप्त हो जाता है, वह जड़ स्वरूप और शून्य स्वरूप है, इसलिये आत्मा के समान नहीं है। वह असंग भी नहीं है किंतु संग वाला है क्योंकि वह कारण होने से कार्य के सूक्ष्म बीज के संग वाला है यदि संग वाला न होता तो स्थूल, सूक्ष्म से कारण में जाकर वहां से उसका आना संभव न था। जैसे नदी में जल मात्र दीखता है और उसके भीतर रहने वाले मिट्टी पत्थर नहीं दीखते इसलिये ऐसा नहीं कह सकते कि नदी में मिट्टी पत्थर नहीं हैं। कारण शरीर अक्रिय भी नहीं है। क्रिया का भान न होने से वह अक्रिय के समान मालूम होता है किंतु यदि उसमें क्रिया न होती तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

उससे सूक्ष्म, स्थूल अवस्था को प्राप्ति किस प्रकार होती, इन अवस्थाओं की प्राप्ति से ही वह विकारी है। आत्मा ऐसा नहीं है। इसलिये सूक्ष्म विचार द्वारा कारण शरीर से आत्मा को भिन्न समझ।

यदि तू यह कहे कि जो मुझे एक बार आत्मा मालूम हो जाय तो मैं शरीर को आत्मा न मानूँ, यह तेरा कहना तेरी योग्यता के अनुसार है, परन्तु इस समय की योग्यता में एक साथ आत्मा को जान जाना असम्भव है। मेरे कहे अनुसार तू निश्चय करता जा। समय आने पर मैं आत्मा का बोध करा दूँगा।

जैसे कारण शरीर आत्मा नहीं है ऐसे ही वह आत्मा का भी नहीं है। जो जिसका होता है उसमें उससे किसी न किसी अंश में समानता अवश्य होती है। कारण शरीर और आत्मा में किसी प्रकार की समानता नहीं है। दोनों का देश भिन्न है, वे दोनों कभी एक देश में नहीं आते। आत्मा का देश परम तत्व है, कारण शरीर का देश माया को भ्रान्ति है। एक देश में हुए बिना कभी 'मेरा' ऐसा सम्बन्ध नहीं हो सकता। उत्तर दिशा और दक्षिण दिशा के समान ये दोनों विरुद्ध हैं। चैतन्य के भाव में माया नहीं दीखती और माया के भाव में चैतन्य नहीं दिखाई देता। फिर चैतन्य आत्मा माया का शरीर किस प्रकार हो?

दोनों का काल भो भिन्न २ है। एक काल में दोनों का होना असम्भव है तब कारण शरीर आत्मा का किस प्रकार हो? आत्मा असंग होने से उसका और कारण शरीर का किंचित् भी मेल नहीं हो सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

यदि तू कहे कि जड़ शरीर चैतन्य के सम्बन्ध बिना चेष्टा किस प्रकार करता है ? तो सुन, विना सम्बन्ध ही अज्ञान से 'मैं' और 'मेरा' रूप मानने रूप भ्रांति के संबंध से, भ्रांति के शरीरों की भ्रांति में चेष्टा होती दीखती है ऐसी भ्रांति को सच्चा मानने वाला अज्ञानी है इसलिए वह माया के कष्टों को अपना मानकर दुःखी होता है।

जिस प्रकार एक नर्तकी स्त्री नाटक घर में पुरुष के कपड़े पहिन कर पुरुष के समान क्रियायें करती दीख पड़ती है और उस समय पुरुष ही है ऐसा मालूम पड़ता है परन्तु वस्तु रूप से देखा जाय तो न तो वह पुरुष है और न उसमें पुरुषत्व का किंचित् अंश है, न उससे और पुरुष से कुछ संबंध है इसी प्रकार मायाके तीनों शरीर चाहे आत्मा-पुरुष के वस्त्र पहन कर आवें, नाचें, और अपने को पुरुष बतावें परन्तु समझने वाले मनुष्य उनकी सूक्ष्म चेष्टा से जान लेते हैं कि वास्तव में वे पुरुष नहीं हैं इसी प्रकार तुझे भी समझना चाहिए।

कारण शरीर ही अज्ञान की जड़ है। अज्ञान की निवृत्ति से उसकी निवृत्ति होती है। अज्ञान भूल को कहते हैं, भूल का निकल जाना ही अज्ञान निकल जाता है। ,मैं कारण शरीर हूं, अथवा मेरा कारण शरीर है' ऐसा मानना ही भूल है, ऐसा न मानना भूल का निकल जाना है।

जैसे अंधेरे और चंचलता आदिक के कारण से जब किसी को रस्सी में सर्प दिखाई देता है तो वह उसे देखकर घबरा जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

है कांपता है अथवा गिर जाता है इसी प्रकार संसार का तमाशा है। देख जैसे रस्सी सर्प नहीं है, उससे सर्प का कोई संबंध भी नहीं है इसी प्रकार माया और उसके तीनों शरीरों को समझ, आत्मरूप रस्सी में तीनों काल में भी शरीर रूप सर्प नहीं है और न शरीर रूप सर्प का उससे संबंध है।

जब तक संसार का भाव रहेगा तब तक आत्मा का बोध कभी नहीं होगा इसलिए प्रथम सँसार के भाव को हटाना चाहिए। संसार का भाव ही आत्मा के जानने में आड़ रूप है इसलिए जितना संसार का भाव हटता जायगा उतनी ही बुद्धि सूक्ष्म होती जायगी। जब बुद्धि आत्म भाव वाली बन जायगी तक आत्मा को जान कर फिर आत्मभाव वाली नहीं रहेगी। स्वयम् तत्त्व शेष रहेगा।

प्रथम गुरु और शास्त्र वाक्य में श्रद्धा करनी पड़ती है आत्मभाव की बुद्धि की प्रवलता से शनैः २ संसार का भाव हटता जाता है और आत्मभाव वाली बुद्धि दृढ़ होती जाती है। जब संसार का विशेष भाव हट जाता है। तब आत्मसंस्कारवाली बुद्धि में से विशेष मलिनता हट जाती है। इसलिए संसार का भाव हटाना और आत्म भाव की बुद्धि करना दोनों को साथ २ काम में लाने से अन्तकरण ज्ञान के ग्रहण करने योग्य होजाता है उस समय सद्गुरु के मुखसे सुने हुए तत्वमसि आदि महावाक्य का भागत्याग लक्षणासे लक्षार्थ ग्रहण करने से आत्मबोध होता है अभी तो 'कारण शरीर मैं नहीं हूं, और वह मेरा नहीं है, आत्मा उससे पृथक हूं' इतना ही निश्चय कर।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

आनन्दमय कोश

जब मनुष्य सो जाता है और गहरी नींद में पड़ जाता है तब वह सुषुप्ति अवस्था कहलाती है और जिस शरीर में वह होती है, उसे कारण शरीर कहते हैं, उसमें ही आनन्दमय कोश है। जहाँ कोई पदार्थ नहीं होता, जहाँ किसी पदार्थ की कामना नहीं होती, जहाँ किसी प्रकार का स्वप्न नहीं दिखाई देता, जहाँ किसी प्रकार का विचार नहीं होता, जहाँ विषय और विषयी नहीं होते, और जहाँ द्वैत की प्रतीति नहीं होती ऐसी अवस्था को आनन्दमय कोश, कारण शरीर, अथवा सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। जहाँ से जाग्रत होने के पीछे मनुष्य कहता है कि मैं सुख से सोया था और जहाँ कुछ कहना नहीं बनता वह आनन्दमय कोश है। कारण शरीर का आनन्दमय कोश पांचों कोशों में सूक्ष्म से प्रथम और स्थूल से अंतिम है। जैसे स्थूल शरीर में एक अन्नमय कोश है इसी प्रकार कारण शरीर में एक आनन्दमयकोश ही है। चारों कोशों के आनन्द से उसमें विशेष आनन्द होने से वह आनन्दमय कोश कहलाता है। तीनों शरीरों में जिस आनन्द का भान होता है वह आनन्द आत्मा का है, परंतु पदार्थ के सहारे से भान होने के कारण वह आत्मा का आनंद आवरण सहित ही है जब किसी पदार्थ केसहारे चित्तकी एकाग्रता होती है तब उसपदार्थमें आत्मा के आनन्द का भान होता है। स्थूल और सूक्ष्म शरीरों में तो पदार्थ के सहारे ही आनन्द का भान होता है और आनन्दमयकोश में यद्यपि कोई पदार्थ नहीं है तो भी पदार्थ का अभाव रूप अव-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

लम्बन अवश्य है, इसलिये पदार्थ के अभाव में एकाग्रता होने से वहां का आनन्द भी मायिक है, वह आनन्द स्वरूप आत्मा नहीं है। वह आनन्द अविद्या के सहारे है। कारण शरीर अविद्या में है इसलिये निर्विषय आत्मानन्द नहीं है। आत्मानन्द स्वाश्रय है, आनन्दमयकोश पराश्रय है। बुद्धि जाग्रत और स्वप्नावस्था का ग्रहण करने वाली है, सुषुप्ति में वह सोई हुई–दबी हुई होने के कारण प्रत्यक्ष न होने से आनन्दमय के आनन्द को ग्रहण नहीं करती। ग्राहक, ग्राह्य और ग्रहण त्रिपुटी में होता है, सुषुप्ति में त्रिपुटी का भान नहीं रहता किन्तु जीवात्मा सुषुप्ति की स्थिति-आनन्द की स्मृति रखता है, जब बुद्धि सचेत होती है तब वह (बुद्धि) जीव के अनुभव किये हुए आनन्द का वर्णन करती है। जहाँ त्रिपुटी का अभाव होता है, वहां दुःख का अभाव रूप आनन्द होता है अर्थात् वह स्थिति आनन्द के समान है। जैसे कोई मनुष्य चलते चलते दोपहरी में जब थक कर किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाता है तो उसे वहां दुःख का अभाव रूप आनन्द मालूम होता है, इसी प्रकार जीवात्मा जब स्थूल और सूक्ष्म विषयों में घूमते घूमते थक कर अपने कारण रूप अविद्या में जाता है तब उसे विषयों का अभाव रूप जो विश्रान्ति मिलती है, वह ही आनन्दमय कोश है।

आत्मा आनन्द स्वरूप है, जब उसका आभास अविद्या रूप कारण शरीर में पड़ता है तब वह आनन्दमय कोश कहलाता है। वह आनन्द अविद्या के कारण होने के सिवाय निर्विषय है वहां से जब वह बुद्धि रूप दूसरे आवरण में प्रतिबिम्बित होता है तब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

वह बुद्धि के साथ में चित्–चैतन्य कहलाता है, और फिर जब मन रूप आवरण में प्रतिबिम्बित होता है तब मन के साथ सत्य कहलाता है। एक ही आत्मा का आनन्द स्वरूप तीन आवरण के साथ तीन प्रकार का भासता है। मायिक सहारे सहित भास मायिक है, क्षणिक है और दृश्य है, आनन्दमय भी ऐसा ही है इसलिये आत्मा नहीं है। तुझे पूर्व समझा चुका हूं कि कारण शरीर माया का है तब उसमें रहने वाला कोश भी माया ही का है। आत्मा अखंडित आनन्द स्वरूप है, आनन्दमय कोश ऐसा नहीं है, फिर आनन्दमय आत्मा कैसे हो सकता है ?

कारण शरीर रूप अविद्या में जो मलिन सत्य है, उसमें प्रिय, मोद, प्रमोद नामक अति सूक्ष्म वृत्तियाँ होती हैं, उनमें जो आनन्द होता है उसको आनन्दमय कोश कहते हैं। अनुकूल पदार्थ देखकर जो आनन्द होता है उसको प्रिय, उसके प्राप्त करने से जो सुख होता है उसको मोद, और उसके भोग में जो सुख होता है उसको प्रमोद कहते हैं। प्रपंच के विषयों से रहित, दुःखों से रहित प्रिय है, निर्विषयता की प्राप्ति मोद है और उसमें टिकना प्रमोद है। अप्रत्यक्ष सूक्ष्म वृत्तियां मायिक हैं आनन्दमयकोश प्रकाश्य है, आत्मा उसका प्रकाशक है। तू आत्मा सब शरीरों का और कोशों का द्रष्टा है और वे सब तेरे दृश्य हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं को तू जानता है, तू सच्चिदानन्द है। तीनों काल में एकसा रहता है, इसलिये सत् है, सब अवस्थाओं को जानता है, इसलिये चित् है और परमानन्द का विषय स्वयं होने से आनन्द स्वरूप है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

शिष्यः—आपने कहा कि तू तीनों शरीरों और पंचकोश को जानता है सो मैं किस प्रकार जानता हूं ? जाग्रत और स्वप्न को तो मैं जानता हूँ, परन्तु कारण शरीर की सुषुप्ति को मैं किस प्रकार जानता हूं ? जब मैं सुषुप्ति में जाता हूं तब मैं ही नहीं रहता तो जाने कौन ? कारण शरीर का भान मुझे नहीं होता, मैं जाग्रत में आकर कहता हूँ कि मैंने कुछ नहीं जाना, तब उसे जानने वाला मैं किस प्रकार हुआ ? जो आनन्दमय कोश रूप ही मैं होऊँ तो मेरा जानना मुझ से न हो परन्तु आप मुझे उससे भी भिन्न बताते हैं, मैं भिन्न मालूम नहीं होता और कारण शरीर को भिन्न जानता भो नहीं, यदि जानता होऊँ तो आप बताइये कैसे जानता हूं।

संतः—स्थूल और सूक्ष्म शरीर को तू किस प्रकार जानता है ? तेरी बुद्धि के अनुसार तो तू किसी शरीर को भी नहीं जानता। स्थूल शरीर की जाग्रत अवस्था को तू तभी जान सकता है जब तू उससे पृथक् हो। जाग्रत अवस्था होकर तू जाग्रत को नहीं जान सकता तो स्वप्न और सुषुप्ति को भी नहीं जान सकता। सुनः–तू इसप्रकार जानने वाला है। स्वप्न की स्मृति से स्वप्न का जानने वाला तू सिद्ध होता है क्योंकि बिना अनुभव किसी को स्मृति होती नहीं। स्वप्न अथवा सुषुप्ति की स्मृति के लक्ष से ही जाग्रत अवस्था का बोध होता है, इसी प्रकार जाग्रत और सुषुप्ति की स्मृति से स्वप्न का और जाग्रत और स्वप्न की स्मृति से सुषुप्ति का बोध होता है। इस प्रकार तू तीनों अवस्थाओं का जानने वाला है। जाग्रत आदि अवस्थाओं के बदलते हुए भो तू

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

नहीं बदलता। यह तो तू जानता ही है कि तू वह का वह ही है। सुषुप्ति में तू शून्य सा होजाता है। तब तू जाग्रत में आकर अपने को शून्य नहीं मानता, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति के अनेक चक्र घूमने पर भी तू अपने को जैसे का तैसा मानता है। इससे सिद्ध होता है कि तू तीनों शरीर और उनकी अवस्थाओं का अविकारी द्रष्टा है। तू ज्ञान स्वरूप है इसलिये सब प्रकार के अज्ञान का द्रष्टा है। कारण शरीर का कारण अज्ञान और सूक्ष्म स्थूल का कार्य अज्ञान तेरे जानने का विषय है, तेरा दृश्य है और तू उसका द्रष्टा है। सुषुप्ति से उठकर तू कहता है कि मैंने कुछ नहीं जाना, यह ही अज्ञान है। अज्ञान का अर्थ ज्ञान का न होना नहीं है किंतु उलटे भाव का ज्ञान ही अज्ञान है। ज्ञान का अर्थ जानना है चाहे वह जानना सीधे भाव से हो चाहे विरुद्ध से हो। जब तू कहता है कि मैंने कुछ नहीं जाना तो यह तेरा कहना कुछ न कुछ जानकर ही है यदि तू जानता ही नहीं तो ऐसा कहना ही नहीं बनता। तू जिसको 'कुछ' कहता है वह तेरा 'कुछ' यह प्रपंच था और उस प्रपंच का अभाव था इसलिये तूने वहाँ प्रपंच के अभाव को जाना था। उसी का तू द्रष्टा है।

शिष्यः—यह तो आपने जाग्रत की बात कही, जहां जिस समय कोई वस्तु नहीं होतो वहां किसी को नहीं जाना जाता। जाग्रत अवस्था में सुषुप्ति नहीं है, तव जाग्रत में मैं उसे कैसे जानू और सुषुप्ति में सुषुप्ति को जान ही नहीं सकता तब मैं किस प्रकार उसका द्रष्टा हूं ? यदि मैं सुषुप्ति में सुषुप्ति को जानता होता तो द्रष्टा हो सकता था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

संतः—मैं तुझसे पूर्व कह चुका हूं फिर भी सुनः—मेरा कहना यह नहीं है कि जाग्रत में तू सुषुप्ति को जानता है, किंतु सुषुप्ति में सुषुप्ति को जानता है यह मेरा कहना है। सुषुप्ति में बुद्धि न होने से उसको उस समय कह नहीं सकता। जाग्रत में सुषुप्ति की जो स्मृति होती है वह बिना अनुभव नहीं होती, अनुभव ही जानना है। जानते हुए भी बुद्धि और इन्द्रियों का अभाव होने से पृथक् भाव रहित में कहना नहीं बनता, उसको समझने के लिये एक दृष्टाँत सुनाता हूं।

एक स्थान पर एक साहूकार ने भोजन करने को मेरा निमंत्रण किया। मैं समय पर वहां पहुँचा। साहूकार ने भोजन की अनेक सामग्री प्रेम पूर्वक तैयार कराई थीं। पूर्ण सत्कार सहित उसने मुझे भोजन करने को बैठाया। उस समय मैंने मौन होकर भोजन करने का नियम कर रखा था और पात्र में जितना भोजन हो सभी खाजाता था, शेष नहीं छोड़ता था। कभी भोजन से विशेष होता तो भी मैं खा जाया करता था, मैं भोजन करने लगा। अनेक प्रकार के मिष्टान्न थे और कई प्रकार के आचार और तरकारियां भी थीं। उनमें तोरई की तरकारी भी थी जब मैं उसे खाने लगा तो मालूम हुआ कि तोरई कड़वी थीं, प्रथम तो मैं थोड़ा थोड़ा मिष्टान्न खाता रहा, फिर मेरे जी में विचार आया कि मिष्टान्न खाने के पीछे पेट भर जाने पर कड़वी तोरई खाई न जांयगी और मुझे भोजनों में से कुछ छोड़ना नहीं है इसलिये तोरई प्रथम ही खा लेनी चाहिये। यह विचार कर तर-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

कारी बहुत बहुत खाने लगा, और मिठाई बहुत कम खाई, साहूकार की स्त्री जो मेरे भोजन के थाल को देख रही थी, थाल में तोरई कम देखकर और तोरई ले आई और मेरे मने करने से प्रथम ही उसने बहुत सी तोरई परोस दीं। मैं तो तरकारी निबटाना चाहता था, बहुत सी परोसी हुई देखकर घबराया परन्तु करूँ तो क्या करूँ ? मौन रहने के कारण मुख से कह नहीं सकता था और वे मुझे बहुत ही कड़वी मालूम होती थीं, खाई नहीं जाती थीं, धीरे-धीरे खाने लगा, सबसे प्रथम मुझे ही भोजन करने को बैठाया था, घर वाले किसी को मालूम न था कि तरकारी कड़वी है, मुझे खबर थी परन्तु मैं कह नहीं सकता था। फिर मैंने तरकारी खाना आरम्भ किया और मुझे विशेष तरकारी नहीं चाहिये यह जताने के लिये थाल के एक तरफ हाथ रख कर मैं भोजन करने लगा। उस स्त्री ने मेरी दृष्टि चुकाकर तोरई की तरकारी फिर थाल में परोस दी। अब क्या करना ? वह स्त्री समझती थी कि महाराज को तोरई की तरकारी बहुत स्वादिष्ट लगती है। अन्त में जैसे तैसे मैं भोजन करके उठा, बहुत सी तरकारी और मिठाई खाने से मैं घबरा गया था इसलिये उसी स्थान पर लेट गया पश्चात् दो चार कै हुईं। घर वाले मुझे बेहोश देखकर घबरा गये। उस दिन मैं अपने स्थान पर न पहुंच सका, वहीं रहा। जब कुछ शान्ति हुई तब मैंने तोरई की कथा सुनाई, सुनकर सब बहुत ही दुःखी हुए। तब मैंने उन्हें समझाया कि इसमें तुम्हारा क्या दोष है, तुम्हें तरकारी का हाल मालूम न था। इस प्रकार समझाकर मैं वहां

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grants

ही लेट रहा उस दिन से मैंने मौन रहने का और भोजन में से शेष न रखने का नियम तोड़ दिया।

जैसे मैं जानते हुए भी मौन रूप आड़ होने के कारण बोल न सका इसी प्रकार सुषुप्ति अवस्था का हाल है उस समय बुद्धि के अभाव रूप मौन से जीव जानता हुआ भी कुछ नहीं कह सकता। जैसे मैंने भोजन के पीछे तोरई की बात कही थी क्योंकि उस समय मौन का बन्धन न था इसी प्रकार जब बुद्धि भाव रूप में आती है तब जीव अपने अनुभव का वर्णन करता है। सायं-काल को साहूकार, मैं, और उसके दो मनुष्य चाँदनी में लेटे हुए थे, साहूकार ने जानकर भी न बोलने का अपने ऊपर बीता हुआ प्रसंग इस प्रकार सुनाया।

साहूकारः—महाराज ! मुझ पर एक समय महान् आपत्ति आई थी, कोई चार वर्ष हुए इन ईशरा और सरदारसिंह (दोनों आदमियों के नाम) के सामने की बात है। एक रात्रि को मैं घर पर अकेला था, स्त्री लड़के अपने ननसाल गये थे, ईशरा उन्हें पहुँचाने गया था और यह जमादार (सरदारसिंह) दो कोश एक ग्राम में उगाही के लिये गया था। रात्रि को चार चोर मेरे मकान में घुसे और मेरे सिवाय और किसी को घर पर न देखकर उन्हें हिम्मत बढ़ गई, वे मुझे धमकाने लगे। मैंने अपनी माल मिलकियत जहाँ रक्खी थी सब बता दी। उस दिन घर में विशेष माल न था, जेवर स्त्री के साथ चला गया था, जो कुछ थोड़ा रह गया था सब मैंने बता दिया। चोरों ने मेरे मुख में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कपड़ा ठूंसकर मेरा मुखबन्द कर दिया और हाथ पैर बांध दिये जिससे मैं बोल न सकूं और भाग न जाऊं। मेरी दिखाईवस्तुयें वे निकालने लगे उनमें थोड़ा सा चांदी का जेबर था और बिशेष कर कीमती कपड़े ही थे, एक बहुमूल्य नथ भी थी जो चाँदी के जेबर के साथ डिब्बे में रक्खी थी। मेरा मुख और हाथ बन्द थे परन्तु नेत्र खुले हुये थे। चोर जो जो अलमारी खोलते थे और उनमें से जो जो निकालते थे मैं सब देखता था परन्तु बोल नहीं सकता था इसी प्रकार आज महाराज का हाल हुआ।

मैं:—भला फिर क्या हुआ?

साहूकार:—थोड़ी देर में आसपास के लोग जाग गये, बहुत से आदमी दौड़ आये। इतने ही में सरदारसिंह भी उगाही न मिलने से और घर पर मुझे अकेला समझकर लौट आया। पड़ोस में आकर उसने सुन लिया था कि मेरे मकान में चोर घुसे हैं। चोर सब सामान की गठरी बांध चुके थे इतने ही में बाहर से कोलाहल सुनकर भागने लगे। एक चोर गठरी लेकर भागा परन्तु जब गठरी भारी देखी तब कुएं में डाल दी। गठरी ठीक न बंधी होने के कारण खुल गई और सब वस्तुयें कुंए में गिर गईं। चोर भाग गये, पड़ोसी और सरदारसिंह घर में घुस आये। मुझे बँधा हुआ देखकर सब ने मुझे बंधन से मुक्त किया तक मैंने वृतान्त सुनाया।

मैं:—तुम्हारी कथा ठीक ठीक सुषुप्ति की अवस्था के समान है। सब कुछ होश होते हुए भी तुम बोलने और भागने को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अशक्त थे। मुक्त होने के पीछे तुमने सब हाल सुनाया। जब मनुष्य गाढ़ी नींद में पड़ जाता है तब इन्द्रिय रूपी हाथ और मुख रूपी अन्तःकरण अज्ञान के बंधन में फंस जाता है इसलिये उस समय वह क्रिया नहीं कर सकता, साक्षी उस समय सचेत होता है, इन्द्रिय और अन्तःकरण छूटने के पीछे वह वहां का वर्णन कह सुनाता है।

ईशराः—महाराज ! सुबह में आगया। सेठजी ने कुंए में से सब सामान निकालने को कहा। मैं कुंये में उतरा। सेठजी और सरदारसिंह ऊपर रहे। मैं जो जो कपड़ा मिलता था, उसे टोकरी में रख देता था और सेठ जी और सरदारसिंह ऊपर खींच लेते थे। सब वस्तुयें निकल आईं परन्तु नथ वाला डिब्बा खुल गया था खाली डिब्बा और ढक्कन मिल गये, नथ न मिली सब कपड़ों से नथ विशेष कीमती थी। कुंआ गहरा था। सेठ जी ऊपर से 'नथ मिली' 'नथ मिली' बारबार पुकारते थे। मैं कुछ बोल नहीं सकता था। नथ नहीं मिली मैं जानता था परन्तु कह नहीं सकता था। इस प्रकार ढूंढते ढूढते एक घंटे पीछे नथ मिली तब मैंने जल में से बाहर आकर कहा 'नथ मिल गई है'। फिर मैं ऊपर आ गया।

मैं:—तेरा यह वृत्तांत सुषुप्ति अवस्था को समझाता है। वाचा का देवता अग्नि है, जल से उसका बैर है, इसलिये जल में वाचा बोल नहीं सकी यद्यपि तू समझता था कि नथ मिली अथवा न मिली। जब वाचा जल के आवरण से मुक्त हुई तब किये हुये अनुभव को कह सकी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सरदारसिंह:—महाराज ! मैं एक बार आप जैसे एक महात्मा का दर्शन करने गया, उस समय पुलिस में नौकर था। महात्मा जी ने मुझसे पूछा "कल रात्रि में रस्ते के ऊपर किसका पहरा था ?" मैंने कहा 'मेरा" महात्मा जी ने कहा 'रात्रि को दो बजे रस्ते के ऊपर कौन था ?" मैंने कहा "कोई नहीं !" महात्मा ने कहा "कोई नहीं था, यह तूने कैसे जाना ?" मैंने कहा "मैं पहरे पर था, कोई होता तो मालूम होता !" महात्मा ने कहा "जब तू था तो कोई न था यह क्यों कहता है ? तू तो था हीं ! परन्तु तेरे सिवाय और कोई नहीं था, ऐसा कह।" मैंने कहा "हाँ ! मैं था !" महात्मा ने कहा "इससे क्या समझा ? इस समय सुषुप्ति अवस्था संबंधी प्रसंग चल रहा था। जैसे तू होते हुए भी कोई न था ऐसा कहता है इसी प्रकार गहरी नींद में पड़ कर जब मनुष्य जागता है तब कहता है कि मैंने कुछ नहीं जाना। कोई जानने वाला ही न हो तो ऐसा कोन कहे ? वहां पर जानने वाला अवश्य होता है तब ही तो कहता है।"

इस प्रकार सरदारसिंह का वृत्तांत सुनकर और सुषुप्ति अवस्था के विषय में बात चीत कर हम सब सोगये। प्रातःकाल मैं अपने स्थान पर आगया।

आनन्दमय कोश का आनन्द, जाग्रत और स्वप्नावस्था में किये हुए कर्म (श्रम रूप यज्ञ) का फल हैं। इस प्रकार कर्म से उसकी उत्पत्ति है और उसकी निवृत्ति भी हो जाती है। आनन्द स्वरूप आत्मा किसी का फल स्वरूप नहीं है, उसकी नवीन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

उत्पत्ति नहीं होती उसकी निवृत्ति भी नहीं होती। पापी पुण्यात्मा और सब अज्ञानियों को सुषुप्ति का आनन्दमय रूप फल अप्रयत्न, स्वाभाविक क्रिया से प्राप्त होता है। वह उत्पत्ति और नाश वाला है, क्षणिक है, माया में है, स्व अज्ञान स्वरूप है, शरीर वाला और अवस्था वाला है इसलिये आत्मा नहीं हो सकता।

आनन्दमय कोश जिस प्रकार आत्मा नहीं है इसी प्रकार आत्मा का भी नहीं है। दोनों एक दूसरे से विरुद्ध हैं, उनमें किंचित् भी समानता नहीं है इसलिये उनका संबंध होना असम्भव है। वह आत्मा का नहीं है किंतु माया का है। संबंध न होते हुए भी संबंध मानना अज्ञान है, इसलिये ज्ञान प्राप्ति की इच्छा वालों को आत्मा और आनन्दमय कोश का संबंध मानना उचित नहीं है।

शिष्यः–यदि मैं आनन्दमय कोश को ही अपना आत्मा मानूँ तो मेरी क्या हानि है? हानि दुःख रूप है, आनन्दमय कोश में दुःख है नहीं। फिर आत्मा मानने में क्या हानि है? शांति, प्रिय, मोद और प्रमोद ये भी उसमें प्राप्त होते हैं। संसार कीविविधता (अनेक पना) भी उसमें नहीं है, इसलिये संसार भी उसमें नहीं हैं क्योंकि संसरने का उसमें अभाव है तब संसार से परे आनन्द वाला वह ही आत्मा हुआ।

संतः–नहीं, जिस प्रकार तू आनन्दमय को आत्मा मानने को कहता है ऐसा मानना न चाहिये, आनन्दमय किसी प्रकार आत्मा नहीं हो सकता। उसके आत्मा मानने में क्या क्या हानि हैं सो सुनः—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

आनन्दमय क्षणिक है, इसलिये तू भी क्षणिक हो जायगा, आनन्दमय में प्रत्यक्ष सुख नहीं है किंतु अभाव रूप संस्कार है। काम क्रोधादि सब द्वन्द्व उसमें दबे रहते हैं प्रगट होकर संसरण रूप संसार उत्पन्न करते हैं। कारण शरीर अकेला नहीं रहता, यह बात मैं प्रथम बता चुका हूं, वह सदा विज्ञानमय की सूक्ष्मता सहित रहता है, यदि अकेला रहे तो कारण किसका कहा जाय? इसलिए उसको आत्मा मानने से संसार की निवृत्ति कभी नहीं होगी और संसार की निवृत्ति न होने से जन्म मरणादिक दु:खों की निवृत्ति भी न होगी।

शांति, प्रिय, मोद और प्रमोद जो तूने बताये वे आत्मा के नहीं हैं, माया के हैं इसलिये माया में ही हैं। उनके रहते हुए अज्ञान् की निवृत्ति कैसे हो सकती है? जो कोई आनन्दमय को आत्मा मान कर उपासना करता है–भाव दृढ़ करता है तो उपासक उसका फल स्वरूप जड़ हो जाता है, पाषाण के समान मूढ़ हो जाता है। शून्यवादी ऐसा ही मानते हैं और शून्य की भावना करने से शून्य रूप मूढ़ योनियों को प्राप्त होते हैं। आनन्दमय कोश आत्मा नहीं है किन्तु तमोगुण का कार्य है, उसकी भावना करने वाला तमोगुण रूप जड़ता को प्राप्त होता है; तमोगुणी भाव वाला गुणातीत आत्म स्वरूप को कभी प्राप्त नहीं हो सकता।

आनन्दमय की भावना में जितनी दृढ़ता और काल लगेगा, हम उसी के अनुसार जड़तारूप फल को प्राप्त करके उतने ही काल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

में निवृत्ति होंगे और पूर्व वासना के अनुसार जन्म धारण करके संसार चक्र में घूमते रहेंगे। आनन्दमय को आत्मा मानने से अनेक जन्मों के संचित कर्मों का नाश नहीं होता किन्तु वे जड़ता रूप फल के समय दबे रहते हैं और उसके निवृति होने पर उनका उद्भव होता है। सारांश यह है कि उसे आत्मा मानने से दुःखों की अत्यंत निवृत्ति नहीं होती किन्तु आत्मा में आत्मभाव करने से ही अज्ञान का भाव निवृत्त होता है। जब आत्मभाव और जगत् भाव दोनों की निवृत्ति हो जाती है तब संचितादि सब प्रकार के कर्मों का नाश हो जाता है। माया के सब प्रपंच का मूल सहित नाश होने पर वस्तु स्वरूप आत्मा को जो प्राप्ति होती है वह कभी निवृत्त नहीं होती।

आत्मप्राप्ति आत्मभाव का फल स्वरूप नहीं है। आत्मभाव का फल अज्ञान का अभाव है। अज्ञान के निवृत्त करने को आत्मभाव किया जाता है, उसे निवृत्त करने को और किसी प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है। जैसे अग्नि लकड़ियों को जला कर आप भी शांत हो जाती है ऐसे ही आत्मभाव शाँत होकर अपने निर्मल स्वरूप को प्राप्त होता है। यह प्राप्ति उत्पन्न नहीं होती इसलिये उसका नाश भी नहीं होता। आनन्दमय को आत्मा मानने से ऐसा नहीं होता। यदि पाषाण समान जड़ होने की और सूक्ष्म योनियों को प्राप्त होने की तेरी इच्छा हो तो आनन्दमय कोश को आत्मा समझ, आत्मा को सून्य मान, परन्तु मैं जानता हूं कि तू ऐसा होना नहीं चाहता। आत्मभाव के सिवाय अनात्म के जितने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

भाव हैं वे सब बनने और बिगड़ने वाले हैं, सुख स्वरूप कोई नहीं है। आनन्दमय कोश को आत्मा मानने से दुःख की अत्यंत निवृत्ति नहीं होगी और न परमानन्द की प्राप्ति होगी। उसको आत्मा मानता है तो उसे क्यों छोड़ देता है यह तो तुझे प्राप्त होता ही रहता है। जितने समय तक विश्रांति का फल होता है उससे अधिक वह नहीं रह सकता इसके अनुसार मूढ़ योनियों का जन्म भी विशेष नहीं रह सकता। तात्पर्य यह हैं कि आनन्दमय कोश को आत्मा मानने से नीच गति की प्राप्ति होती है।

शिष्यः—महाराज ! मैं आनन्दमय कोश को आत्मा नहीं मानूंगा किंतु आत्मा का आनन्दमय कोश मानने में क्या हानि है ? आपने प्रथम कहा है कि वह आत्मा के अति समीप है और आत्मा के आनन्द का प्रतिबिम्ब भी उसमें पड़ता है।

संतः—नहीं, आनन्दमय कोश को आत्मा का भी न मानना चाहिये। जो आपत्तियाँ उसको आत्मा मानने में होती हैं वे ही आत्मा को मानने में होती हैं। तेरे कहे समान माननेवालाकभी अज्ञान से मुक्त न होगा। आनन्दमय कोश को तुच्छ, अभाव मात्र, भ्रमात्मक, अवस्तु स्वरूप मानने से ही कल्याण होता है। आत्मा पवित्र, निर्मल, और सत्य है, आनन्दमय कोश अपवित्र मलिन और मिथ्या है। ऐसे विरुद्ध स्वभाव वालों का संबंध किस प्रकार हो सकता है ? आत्मा अपनी महिमा में टिका है आनन्दमय अज्ञान में टिका है। आत्मा का संबन्धी तो वह हो ही क्या सकता है। यदि आत्मा उसकी गंध भी लेगा तो आत्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

भाव से रहित ही होगा। आनन्दमय कोश को अपना मानने वाले आत्मा को, आत्मा नहीं समझना चाहिए, वह तो आत्मा को आड़ में रहने वाला एक भूत ही है। उसको आत्मा की समीपता जो बताई थी वह और कोशों की दूरी निर्णय कराने को ही थी और आनन्द का प्रतिबिम्ब अविभक्त माया में पड़ा कहा था इसलिये उससे आत्मा का कुछ सम्वन्ध न हुआ क्योंकि आत्मा व्यापक है और जहाँ जहाँ अभिभक्त मायी होती है वहाँ वहाँ आत्मा का प्रतिविम्ब स्वाभाविक होता है इसलिये वह संबंध वाला नहीं हुआ। जितना मैंने तुझे श्रवण कराया है उसको शुद्ध बुद्धि से श्रद्धा सहित विचार और निश्चय कर कि आनन्दमय कोश आत्मा नहीं है, आत्मा का भी नहीं है, आत्मा उससे पृथक् है और उसका प्रकाशक है।

इस प्रकार अवस्था सहित तीनों शरीर जिनमें पांच कोश हैं सब आत्मा से पृथक् हैं, आत्मा आत्मा ही है और इनसे भिन्न सब अनात्मा है ऐसा तू निश्चय कर। जिस प्रकार मूंज में से ऊपर के छिलके क्रम से अलग करके मध्य की सलाई का ग्रहण करते हैं इस प्रकार पांचो कोशों का बाध करके यानी ये नहीं हैं ऐसा समझ कर उसके आधार स्वरूप शेष रहा हुआ आत्मा है ऐसा निश्चय कर। पंच कोश का बाध पूर्वक आत्मा का ग्रहण करना पंच कोश विवेक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

तीन अवस्थायें और आत्मा

एक मुमुक्ष जो कुछ सत्संग करता था परन्तु विक्षेप दोष की अधिकता से उसे अनेक प्रकार की शंकायें हुआ करती थीं उसनें एक समय विचार करके चौदह शंकायें लिख डाली और सद्गुरु के पास जाकर साष्टांग प्रणाम करने के बाद बोला:-महाराज! मुझे आत्मा और शरीर की अवस्था में कई शंकायें होती हैं उनको मैं लिख लाया हूं आपकी आज्ञा हो तो सुनाऊं मैं आपसे उनका उत्तर सुन कर अपना समाधान करना चाहता हूँ।

गुरु:—तू बड़ा ही चंचल बुद्धि है बहुत समय से मेरे पास आकर उपदेश श्रवण करता है, अब भी तेरी शंकायें नहीं जातीं? तू जो जो श्रवण करता है उसे यथार्थ धारण नहीं करता। समझ कर दृढ़ता से धारण कर। ठीक न समझ कर कुछ का कुछ से मिलान कर देने में ही शंकायें हुआ करती हैं। कह तेरी शंकायें क्या हैं?

मनुष्य:-(१) सोता कौन है, स्वप्न कौन देखता है औरजागता कौन है? (२) जो वह एक ही है तो स्वप्नावस्था में उसकोइसबात की स्मृति क्यों नहीं रहती कि मैं वही हूं जो स्वप्न के प्रथमजागता था और अब स्वप्न देख रहा हूं। जागने पर उसे ऐसी स्मृति क्यों होती है कि मैं वही हूं जो सोते समय स्वप्न देख रहा था?(३)यदि प्रत्येक अवस्थावाला भिन्न २ है तो जाग्रतअवस्था वालेका स्वप्न-अवस्था में और स्वप्नावस्था वाले काजाग्रतअवस्था में क्याहो जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

? (४) कोई कहते हैं कि स्वप्नसृष्टि स्वप्नद्रष्टा से भिन्न और जाग्रत सृष्टि से स्वतंत्र है तो उसका सृष्टा कौन है और स्वप्नमें ऐसे चिन्ह क्या हैं जो स्वप्न द्रष्टा को स्वप्नावस्था में स्वप्नऔर जाग्रत का भेद बतायें ? (५) सामान्यता से जानी हुई जाग्रत और स्वप्न सृष्टि के सिवाय क्या और भी कोई सृष्टिहै कि जहां मरने के बाद गमन होता है और क्या कोई ऐसी भी सृष्टि हैजोनित्य और अपरिवर्तन वाली हो ? (६) क्या एक सृष्टि से दूसरी सृष्टि में खबर आ जा सकती है ? यदि ऐसा हो सकता है तो क्या स्वप्नावस्था का जीव जाग्रत सृष्टि के अपने मित्र से औरजाग्रत सृष्टि का जीव स्वप्न सृष्टि के अपनेमित्र से बातचीत कर सकता है ? (७) कोई कहते हैं कि जैसे स्वप्न सृष्टि मिथ्या है वैसे ही जाग्रत सृष्टि भी मिथ्या है तबपूछते हैं कि स्वप्न के मिथ्यापनेका अनुभव जैसे उससे ऊंची जाग्रत अवस्था में होता है, इसीप्रकार जब जाग्रत के मिथ्यापने का अनुभव उससे ऊंची ज्ञान की अवस्था में होता है तब अपनी अपेक्षा से ऊंची अवस्था में वह (ज्ञान की अवस्था) भी स्वप्न क्यों न हो और इसी प्रकारउत्तरोत्तर अवस्थाओं में पूर्व २ अवस्थायें मिथ्या होती क्यों न चली जांय ? (८) क्या स्वप्न द्रष्टा को स्वप्नावस्था में यह बोध रहना सम्भव है कि मैं स्वप्न देखरहा हूँ ? (९) यदि स्वप्नद्रष्टास्वप्नावस्था में ऐसा जान जाय कि यह स्वप्न है तो क्या उनका स्वप्न देखना बन्द हो जायगा अथवा वह स्वप्न देखता ही रहेगा ? (१०) यदि कोई अपने स्वप्न को बन्द करना, बदलना, अथवा उत्पन्न करना चाहे तो क्या वह ऐसा कर सकता है ? ऐसा होता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

हो तो उसका क्या यत्न है ? (११) सुषुप्ति अवस्था में 'यह मेरी सुषुप्ति है' क्या ऐसा बोध रहना संभव है ? (१२) शरीर की मृत्यु के बाद जीव को किस प्रकार का बोध रहता है, क्या वह जीता रहता है, और क्या वह जानता है कि मैं मर गया हूँ ? (१३) जाग्रत और स्वप्न सृष्टि के जीव अपनी २ सृष्टियों में अपने सृष्टा अथवा स्वप्न द्रष्टा को कैसे जान सकते हैं ? (१४) सब अवस्थाओं अर्थात् सब सृष्टियों में क्या कोई ऐसी अन्तिम सत्ता है जो नित्य, ज्ञान स्वरूप, और सर्व व्यापक हो और क्या किसी ऐसे उपाय से उसको जान सकते हैं जो सब जाति और सब मत वालों को माननीय हो और सब काल और सब देश के प्रत्येक मनुष्य के अनुकूल हों ?

दो:—तीन अवस्था, तीन गुण, तीन लोक विस्तार।
उनका द्रष्टा एक तू, तीनों ही से पार।। १।।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थायें जीव की हैं। दूसरी रीति से कहा जाय तो अवस्थायें चिदाभास युक्त बुद्धि की हैं अथवा उन्हें जीवित शरीर की भी कह सकते हैं। तीनों अवस्थायें भिन्न २ हैं किंतु उनमें रहने वाला जीव भिन्न नहीं है। उपाधि के भेद से अवस्थाओं का भेद है और उपाधि के अभिमान से एक ही जीव तीन नामों से कहा जाता है। जिस समय जीव जाग्रत अवस्था में होता है तब विश्व कहलाता है, जब वह स्वप्नावस्था में होता है तब उसे तैजस् कहते हैं और जब वह सुषुप्ति में होता है तब उसका नाम प्राज्ञ होता है। जाग्रत अवस्था में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जीव बाहर के विश्व को देखता है इसलिये विश्व कहलाता है, स्वप्न में अपने तेज में ही त्रिपुटियों का अनुभव करता है इसलिये तैजस् कहलाता है और सुषुप्ति में प्रपंच के अभाव को जानता है इसलिये प्राज्ञ कहलाता है। माया के तादाम्य अध्यास-संसर्ग भ्रम से ये तीनों अवस्थायें जीव को अपने में अज्ञान से प्रतीत होती हैं। इन तीनों अवस्थाओं के भाव रहित चौथी अवस्था जीव का शुद्ध आत्म स्वरूप है। अवस्थायें होते हुए भी जीव का शुद्ध स्वरूप जो कूटस्थ है उसमें किसी प्रकार का विकार अथवा न्यूनता नहीं आती, वह तीनों अवस्थाओं में साक्षी रूप ज्यों का त्यों बना रहता है। मिथ्या माया के मिथ्या संबंध अज्ञान से ये तीनों अवस्थायें जीव में न होते हुए भी जीव की कहलाती हैं। यह अविद्या तीन प्रकार के भेद वाली हैं:-(१) अविभक्त (२) संस्कार भेद को प्राप्त हुई और (३) विभक्त भाव से विकसित होकर स्थूल रूप वाली। जहां किसी प्रकार का भेद न हो ऐसी अविभक्त अविद्या को कारण और पिछली दोनों प्रकार की अविद्या को कार्य अविद्या कहते हैं। कार्य अविद्या में प्रथम की सूक्ष्म और दूसरी स्थूल है। जब जीव कारण अविद्या की उपाधि युक्त होता है तब सुषुप्ति अवस्था होती है। वह ही कारण अविद्या कारण सहित जब कार्य में विभक्त संस्कार रूप होती है तब उससे युक्त जीव की स्वप्नावस्था कही जाती है और वहां से कारण और सूक्ष्म सहित जब स्थूल में विकसित होती है, तब उनसे युक्त जीव की जाग्रता-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

वस्था होती है। सुषुप्ति कारण रूप है, स्वप्न सूक्ष्म रूप है और जाग्रत स्थूल रूप है।

सुषुप्ति अवस्था में सब प्रकार की पृथकता की एकता हो जाती है। वहां द्रष्टा, दर्शन दृश्य त्रिपुटी का अभाव हो जाता है, सब अपने कारण भाव को प्राप्त हो जाते हैं। बुद्धि सहित देखने वाला जीव भी वहां पृथक् भाव से नहीं रहता, जिस स्थूल शरीर में सुषुप्ति होती है वह शरीर जाग्रत सृष्टि में रहता है, कारण में लय नहीं होता क्योंकि वह स्थूल भोग के कारण इतना स्थूल है कि वह स्वरूप से कारण में लय नहीं हो सकता, मात्र उसका भाव ही कारण में लय होता है। स्वरूप से पदार्थ के लय न होने में अति स्थूलता ही कारण है। अविद्या परिणाम वाली है। जो परिणाम है, वह निवृत्त नहीं होता इसलिये कार्य रूप शरीर कारण में लय नहीं होता। स्वप्न का सूक्ष्म भाव इतने विकार को नहीं प्राप्त होता कि अपने कारण में न मिल सके इसलिये वह अपने कारण में मिल जाता है किन्तु फिर भी निर्बीज नहीं मिलता, बीजसहित मिलता है। सुषुप्ति में बुद्धि तथा स्मृति अपने कारण अज्ञान में दब जाती है, इसलिये इस अवस्था में किसी प्रकार का बोध और स्मृति नहीं होती, अपने और पराये किसी का भी बोध नहीं रहता जहाँ जड़ता के समान गाढ़ अज्ञान होता है वह सुषुप्ति कही जाती है और यदि जीव को स्वबोध रहे तो समाधि कहलाती है क्योंकि जीव को अपने बोध के लिये बुद्धि की आवश्यकता नहीं है। अज्ञान के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

दबाव से निकल जाना हो उसका स्वबोध है। समाधि को सुषुप्ति नहीं कह सकते क्योंकि समाधि स्वरूपमय है और सुषुप्ति अज्ञानमय है, यह ही इन दोनों का अन्तर है। "यह मेरी सुषुप्ति है" ऐसा बोध हो जाने पर सुषुप्ति नहीं रहती क्योंकि ऐसा बोध होने पर वह अवस्था जाग्रत हो जाती है। सुषुप्ति में सुषुप्ति का बोध रहना असंभव है क्योंकि सुषुप्ति में दबा हुआ जीव पृथक् भाव रहित होता है, पृथक् भाव बिना सुषुप्ति को किस प्रकार जाने? इससे जाना जाता है कि बुद्धि भी वहां नहीं होती। सोने वाला, स्वप्न देखने वाला और जागने वाला एक दूसरे से पृथक् नहीं हैं क्योंकि जो पृथक् हों तो जागने के पश्चात् 'मैं गहरी नींद में सोता था, और स्वप्न देखता था और अब जागता हूं" यह जो बोध होता है नहीं होना चाहिये। सुषुप्ति के अज्ञान का ज्ञान जाग्रत में होता है। जो सुषुप्ति में सब भाव निर्बीज हो गए होते तो सुषुप्ति से उत्थान न होता, उत्थान होता है इसलिये जाना जाता है कि सबीज एकता हुई थी। जागने वाला भी वही होता है जो सुषुप्ति से पहिले जागता था क्योंकि सुषुप्ति से जाग कर जो कार्य प्रथम अपूर्ण रक्खा था उसको पूर्ण करता है इसलिये सोने वाला ही जागता है, सोने वाला न रहता हो और दूसरा कोई जागता हो ऐसा नहीं होता; किन्तु एक ही जीव की तीनों अवस्थायें आविर्भाव और तिरोभाव रूप हैं। जाग्रत के आविर्भाव में स्वप्न और सुषुप्ति का, स्वप्न के आविर्भाव में जाग्रत और सुषुप्ति का, और सुषुप्ति के आविर्भाव में जाग्रत और स्वप्न का तिरोभाव हो जाता है। जब जाग्रत का आविर्भाव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

होता है तब स्वप्न और सुषुप्ति की स्मृति रहती है, क्योंकि जाग्रत बुद्धि में सूक्ष्म और कारण सहित पूर्ण विकसित होती है स्वप्न के आविर्भाव में सुषुप्ति के अभाव की स्मृति-बुद्धि होती है क्योंकि स्वप्न में बुद्धि अर्धविकसित होती है और उसमें कारण सम्मिलित होती है। स्वप्न में जाग्रत की स्मृति नहीं रहती क्योंकि बुद्धि-स्मृति के विकसित भाव का तिरोभाव होता है, वह इस अवस्था में हटी हुई होती है। सुषुप्ति के आविर्भाव में किसी प्रकार की बुद्धि–स्मृति नहीं रहती। सुषुप्ति स्वयं अभाव रूप है और स्वप्न जाग्रत का अर्ध विकसित और विकसित बुद्धि-स्मृति का वहां तिरोभाव होता है इसलिये सुषुप्ति में अभाव के सिवाय और किसी प्रकार का बोध नहीं होता। सुषुप्ति का स्थान हृदय है।

किचनसिंह नाम का एक सरदार एक समय समुद्र के किनारे वन में घूम रहा था वहां उसने एक प्रकार का नाद सुना। "यह शब्द कहां से आरहा है" यह जानने के लिए वह इधर उधर देखने लगा पर कोई मनुष्य अथवा पशु उसे दिखाई न दिया। एक स्थान पर टूटे फूटे शंख और उनके टुकड़े देख कर वह उन्हें एकाग्र चित्त होकर देखने लगा तो उनमें एक भारी शंख देख पड़ा जो और शंखों से बड़ा था। उसका मुख बड़ा था और जहां से बजाया जाता है वहां एक छोटा छिद्र था। मुख से वायु का प्रवेश होकर छोटे छिद्र द्वारा वायु निकलने से शब्द होता था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

किचनसिंह ने उस शंख को उठा लिया। जड़ पदार्थ को बोलता हुआ देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और आगे चला। मार्ग में उसे एक चक्र मिला वह भी सुन्दर था। किचनसिंह ने उसे उठाकर शंख को उसके मध्य में रख दिया। शंख में से निकली हुई वायु लगने से चक्र घूमने लगा। चक्र को घूमता हुआ देखकर किचनसिंह को बहुत ही आश्चर्य हुआ और उसे शंख सहित बच्चों के आनन्द के लिए घर ले आया। उसका एक छोटा बच्चा था, उसके खेलने की एक लकड़ी की खिलौना गाड़ी थी। किचनसिंह ने विचार किया कि यदि इस चक्र को शंख सहित इस गाड़ी में जोड़ दिया जाय तो गाड़ी चलने लगेगी। यह विचार कर उसने वैसा ही किया। गाड़ी चलने लगी! गाड़ी को चलती हुई देखकर लड़के प्रसन्न हो गये।

इस दृष्टांत के अनुसार तीनों अवस्थाओं और उनके अभिमानी जीव को समझना चाहिये। किचनसिंह जीव है। शंख सुषुप्ति अवस्था है। शंख उठा लेना सुषुप्ति युक्त होना है। जिस प्रकार शंख में वायु आता जाता है इसी प्रकार सुषुप्ति में प्राणही चलता है। शंख में चक्र मिलना स्वप्नावस्था है। जिस प्रकार चक्र अपनी धुरी पर ही घूमता है इसी प्रकार स्वप्नावस्था अपने मेंही होती है, घूमती है। उस समय शंख रूप सुषुप्ति और चक्र रूप स्वप्नावस्था दोनों ही होती हैं इसलिये वहाँ सुषुप्ति की अबोध एकता और स्वप्न की पृथक्ता दोनों की स्मृति का संभव है परन्तु गाड़ी का अनुसन्धान न होने से उसकी स्मृति नहीं होती। जब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

घर पर आकर लड़कों की खेलने की गाड़ी से चक्र और शंख को युक्त कर दिया जाता है तब गाड़ी का चलना रूप जाग्रत अवस्था स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था सहित है इसलिये वह तीनों की स्मृति वाली और बाहर घूमने वाली है। किंचनसिंह रूप जीव शंख रूप सुषुप्ति, चक्र रूप स्वप्न और गाड़ी रूप जाग्रत तीनों अवस्थाओं को देखता है तो भी तीनों से पृथक रहता है। तीनों अवस्थायें जीव से युक्त हैं और जीव तीनों में एक ही है। ऐसा होते हुए भी यदि अज्ञान के कारण वह अपने को न जाने तो अज्ञानी है।

अथवा यों समझो कि एक व्यापारी अपने व्यापार केनिमित्त १ रोकड़, २ खाता और ३ वार्षिक चिट्ठा–ऐसी तीन पुस्तकेंरखता है। रोकड़ में दिन दिन का क्रम क्रम से हिसाब लिखा जाताहै, खाते मेंखाते खाते की रकम लिखी जाती है, विस्तारनहीं होता और रोकड़ की तरह एक दिन के हिसाब के पश्चात् दूसरेदिन का हिसाब ऐसा भी नहीं होता, और वार्षिक चिट्ठे में कुछ भी नहीं होता केवल नफा या नुकसान एक ही रूप का होता है। रोकड़ जाग्रत के समान है, खाते में रकम चढ़ जाने पर भी उसमें दिन का क्रम नहीं रहता, इसलिए वह स्वप्न के समान है, जिससमय जो खाता खोलते हैं उसीका बोध होता है। वार्षिक चिट्ठेमेंएक ही बोध होता है, इसलिए वह सुषुप्ति के समान है। जैसे रोकड़ में खाता और वार्षिक चिट्ठा सहित रोज २ का विस्तीर्णहिसाब होता है इसीप्रकार जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति की स्मृति सहित है, जो विशेषता रोकड़ में है वह खाते में नहीं है खाते में मात्र रकम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

ही है किन्तु वह वार्षिक चिट्ठे सहित है इसी प्रकार स्वप्न में सुषुप्ति की स्मृति होती है और सुषुप्ति स्मृति रहित होती है, जैसे रोकड़, खाता, चिट्ठा व्यापारी के हैं, व्यापारी भिन्न है इसी प्रकार जीव रूप व्यापारी तीनों अवस्थाओं रूप पुस्तकों से भिन्न है और तीनों का द्रष्टा है।

स्वप्नावस्था कंठ में रहने वाली हिता नाम की एक नाड़ी में होती है जाग्रत का देश काल विस्तीर्ण है और उसकी अपेक्षा स्वप्न का देश काल अल्प है। स्वप्नावस्था को संध्य कहते हैं। जाग्रत और सुषुप्ति को जोड़ने वाली–संध्य है। सँधि से दोनों अवस्थायें एक दूसरे से मिलती हैं। सुषुप्ति अवस्था में बुद्धि स्मृति आदिक जो दबे होते हैं वे ही स्वप्न में होते है उनसे पृथक नहीं होते। सुषुप्ति में बुद्धि बिलकुल दब जाती है और स्वप्न में कुछ विकसित होती है इसलिये स्वप्न में जो द्वैत दीखता है वह सुषुप्ति से पृथक नहीं होता। स्वप्न सृष्टि स्वप्न द्रष्टा से भिन्न नहीं है, स्वप्न का अभिमानी जो तैजस् है वह ही अपने तेज में द्रष्टा दर्शन और दृश्य त्रिपुटी रूप से होता है। स्वप्न के पदार्थ स्वप्न अवस्था में स्थूल दीखते हैं तो भी वे स्थूल पदार्थों के समान स्थूल नहीं होते क्योंकि वे अपंचीकृत भूतों के हैं और स्थूल पदार्थ पंचीकृत महाभूतों के हैं। स्वप्न में स्थूल पदार्थों के योग्य देश काल नहीं है।

स्वप्न द्रष्टा स्वप्न में शरीर से बाहर निकलकर स्थूल पदार्थों और देश को देखे ऐसा नहीं है क्योंकि एक मनुष्य जो स्वप्न में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

आगरे से कलकत्ते जाता है और जब वह कलकत्ते में हो तभी जाग जाता है तो वह कलकत्ते में नहीं होता किंतु आगरे में ही जिस स्थान पर सोया था वहीं होता है। यदि वह कलकत्ते गया होता तो कलकत्ते में ही जागना चाहिये था। स्वप्न द्रष्टा स्वप्न में जिस अपने मित्र से बात चीत करता है, उससे जब जाग्रत में मिलता है तो मिलने का हाल उसके मित्र को मालूम नहीं होता इसलिये वह शरीर से बाहर जाकर अपने मित्र से नहीं मिला है किंतु मित्र का भाव रूप सूक्ष्म मित्र जो उसने अपने अन्तःकरण में रख छोड़ा है उसी से वह मिला है। स्वप्न में वह अपने भावना के चित्र को ही देखता है जो किसी प्रकार उसके अन्तःकरण में संस्कार रूप से विराजमान है। जिस प्रकार किसी एक मित्र का विचार करने से उस मित्र के मन में रहने वाला चित्र देखते हैं इसी प्रकार का वह चित्र है। स्वप्नमें दीखने वाले संस्कार किसी प्रकार से अन्तःकरण में पड़े हुए होते हैं, वे भूत, भविष्य अथवा वर्तमान के होने संभव हैं, सुने हुए, अनुभव किये हुए, स्मरण किये हुए अथवा प्राण द्वारा अज्ञात प्रवेश किये हुए होते हैं और शरीर के तत्वों की विक्रिया से भी उत्पन्न होते हैं। स्वप्न का संसार क्रम पूर्वक नहीं दीखता कभी कम, कभी अधिक और कभी विपर्य होता है। जाग्रत की अपेक्षा स्वप्न दृश्य शीघ्र गति वाला है कभी कभी किसी संस्कार का कुछ अंग और साथ ही दूसरे संस्कार का कुछ अंग प्रतीत होता है, इन दोनों का एक मिलान करने से विपर्य हो जाता है कभी न दीखे हुए भयंकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

दृश्य इस प्रकार दीखते हैं:- जैसे मनुष्य का धड़ और शेर का शिर अथवा स्वप्न द्रष्टा अपना ही शिर कटा हुआ देखता है परंतु जो कुछ वह अनुभव कर चुका है वह ही देखता है। एक का अंग दूसरे में मिलाकर समझना ऐसा जो विपर्य हैवह स्वप्न दोष सेहोता हैइसलियेस्वप्नवासनामय होनेपर भीछिन्नभिन्न और संबंध रहित दीखता है। जाग्रत की अपेक्षा स्वप्न मिथ्या है तो भी वह जाग्रत से सूक्ष्म सम्बन्ध वाला है। स्वप्न में भोजन करने से जाग्रत का स्थूल शरीर तृप्त नहीं होता किंतु वीर्य पतन स्वप्न में होने पर भी जाग्रत में दीखता है। स्वप्न का तीव्र भाव स्वप्न से स्थूल जाग्रत अवस्था वाले स्थूल शरीर में निकल आता है। कोई कोई स्वप्न में जो चेष्टा करता है स्थूल शरीर में भी उस समय वह चेष्टा होती है। इससे सिद्ध है कि जाग्रतवाला ही स्वप्न में होता है। स्वप्न स्वतंत्र अवस्था नहीं होने से उसका क्रम ठीक नहीं रहता। जाग्रत अवस्था जन्म से मरण पर्यन्त एक है और स्वप्नावस्था स्वप्न के आरम्भ से अंत तक एक होती है, और निद्रा दोष से सम्मिलित होती है। स्वप्न जाग्रत से स्वतंत्र नहींहै इसलिये जाग्रत सृष्टि के कर्ता सिवाय और कोई उसका कर्ता नहीं है। जाग्रत सृष्टि का समष्टि भाव ईश्वर जो वैश्वानर है उसकी सूक्ष्म समष्टि हिरण्यगर्भ है वह स्वप्न स्थान है। न तो स्वप्न सृष्टि स्वतन्त्र है और न वहां का जीव स्वतन्त्र है इसलिये स्वप्न सृष्टि के जीव को अपने बनाने वाले ईश्वर को जानने की आवश्यकता नहीं है वह अवस्था अपूर्ण है उसमें जीव अपने सृष्टा को जान नहीं सकता। स्वप्नावस्था जाग्रत की अपेक्षा से भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

मायामात्र कहलाती है। कभी कभी वह जाग्रत के भविष्य की सूचक होती है क्योंकि भविष्य संस्कार भी उसमें होते हैं। स्वप्न जीव जिसका स्वप्न है उससे उसकी जाग्रत भिन्न नहीं होती। प्रत्येक जीव की तीनों अवस्थायें होती हैं किन्तु अपने उत्पन्न करने वाले को जाग्रत में ही जान सकते हैं और विशेष करके मनुष्य जन्ममें ही शुद्ध अन्तःकरण से प्रयत्न करके जान सकते हैं और यथार्थ जानने के समय जाग्रतादि सब अवस्थाओं के दबाव को छोड़ दिया जाता है। स्वप्न द्रष्टा की सृष्टि मनुष्य के एक शरीर के समान समझो। उसमें जो २ पदार्थ जीव देखता है वे उस जीव के अंग उपांग ही हैं, जैसे एक मनुष्य के हाथ, पैर, नाक, कान, नेत्र इत्यादि। सब को अपने कर्ता को जानने की आवश्यकता नहीं है परन्तु जिसका शरीर कहा जाता है वह ही जाग्रतावस्था में सृष्टा को जानने का प्रयत्न कर सकता है। स्वप्नावस्थामें रहने वाली बुद्धि वहां के ही पदार्थों और क्रियाओं के जानने योग्य है और स्मृति भी उन्हीं के ग्रहण करने योग्य है विशेष नहीं ग्रहण कर सकती, इसलिये अपूर्ण बुद्धि सृष्टा के बोध का आरम्भ करने में अयोग्य होती है। स्वप्न के शरीर इन्द्रियादिक स्थूल नहीं होते, विकसित नहीं होते, वहाँ जाग्रत के समान स्थूल पदार्थ दीखने का कारण यह है कि वहाँ द्रष्टा भी उसी भाव का बना होता है इसलिये वह सूक्ष्म को नहीं पहचान सकता। एक ही समान सब होने से वहां स्थूल ही दीखता है। जो जाग्रत की स्मृति वहाँ हो तो जाग्रत से वह सूक्ष्म है ऐसा हो सके, परन्तु जाग्रत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

का वहां अभाव है, इसी कारण से 'यह मेरी स्वप्नावस्था है' ऐसा जानना स्वप्नावस्था में नहीं बनता। ऐसा जाना जाय तो स्वप्न देखना बन्द हो जायगा। जब वह ऐसा जानता है तब स्वप्न नहीं रहता, जाग्रत में आकर ही वह ऐसा जानता है। स्वप्न जाग्रत के अनुसंधान रहित ही होता है। यदि स्वप्न संस्कारों के साथ 'यह स्वप्न है" कोई ऐसा संस्कार उत्पन्न हो तो उसे स्वप्न में ही ऐसा बोध होता है, स्वप्न से जाग्रत होकर नहीं होता और जब तक वह ठीक जाग्रत न होगा तब तक स्वप्न बन्द न होगा। "यह स्वप्न है" ऐसा जो किंचित् बोध होता है वह स्वप्न दोष से ही होता है इसलिये वह स्वप्न का ही दृश्य है। वास्तविक रीति से वह स्वप्न को नहीं जानता। स्वप्नावस्था में रहकर "यह स्वप्न है" ऐसा जानने का कोई उपाय नहीं है। अर्ध विकसित और विकसित इस प्रकार दो बुद्धियां एक समय में नहीं होतीं। एक ही बुद्धि की ये दो प्रकार की स्थितियां हैं।

यदि जाग्रत का जीव और स्वप्न का जीव भिन्न भिन्न हों तो दो बुद्धियां हो सकें किंतु ऐसा नहीं है। स्वप्नावस्था में जाग्रत का अनुसंधान–स्मृति न रहने से ही आत्मा का असंगपना सिद्ध होता है। यदि आत्मा संगी होता तो बुद्धि की अर्ध विकास और पूर्ण विकास वाली अवस्थाओं का बोध स्वप्न में रख सकता किंतु असंग होने से वह बुद्धि का बोध नहीं रखता। जैसे स्फटिकमणि के ऊपर रक्खे हुए गुड़हर के पुष्प को लाली स्फटिक में दीखती है यद्यपि स्फटिक लाली का अंग नहीं करता। जैसे स्फटिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

असंग होने के कारण पुष्प हटा लेने से किंचित् भी लाली नहीं रहती इसी प्रकार आत्मा असंग होने से ज्ञान स्वरूप होने पर भी जाग्रत का ज्ञान स्वप्न में नहीं रखता। आत्मा साक्षात् प्रपंच का ज्ञान नहीं रखता किंतु बुद्धि के द्वारा प्रपंच का ज्ञान करने वाला है। स्वप्न में बुद्धि अर्ध विकास वाली होने से स्वयं जाग्रत का ज्ञान नहीं रख सकती और आत्मा असंग है तब स्वप्न में स्वप्न और जाग्रत का भेद कौन दिखावे ?

स्वप्न में जाग्रत के समान इच्छानुसार कोई वर्त नहीं सकता न स्वप्न को बदल अथवा बन्द कर सकता है, क्योंकि जाग्रत से वह अल्प है, उसमें बुद्धि विकसित नहीं होती, मात्र सूक्ष्म भोग के निमित्त होती है, भोगोत्पादक नहीं होती। इस प्रकार जाग्रत और स्वप्न दो सृष्टियां नहीं हैं, एक ही सृष्टि की दो अवस्थायें हैं। जो कोई भयंकर स्वप्न को बदलना चाहे तो उसका उपाय जाग्रत में कर सकता है क्योंकि स्वप्न जाग्रत की ही छाया है।

स्वप्न सृष्टि जाग्रत सृष्टि के जीव से भिन्न नहीं है इसलिये आपस में बातचीत करना असंभव है, स्वप्न और जाग्रत एक ही पुरुष की दो अवस्थायें हैं। दो अवस्था के दो होकर एक समय में मिल नहीं सकते, फिर बात चीत किस प्रकार कर सकते हैं? एक ही पुरुष जो एक का पिता है और दूसरे का पुत्र है वह एक ही होने से बिना पुत्र किस प्रकार बात करे ?

एक बनियां है। वह लेन देन का व्यापार करता है। लोग बहुत सी वस्तुयें उसके पास गिरवीं रखते हैं। गिरवीं रक्खी हुई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

वस्तुओं से भरे हुए बाक्स एक अंधेरी कोठरी में रक्खे रहते हैं। कोठरी बंद रहती है। जो जो चीजें धरोहर रक्खी जाती हैं उनको वह ही जानता है, कोई कोई वस्तु बहुत पुरानी होने से उसे स्वयं याद नहीं रहतीं। बनियाँ सब के सामने वस्तुयें खोलकर देखना नहीं चाहता। कभी कभी जब जरूरत होती है तब रात्रि के समय जब सब सो जाते हैं तब कोठरी में जाकर बाक्सों को खोलकर देखता है,। "मेरी वस्तुयें घर वाले जान न जांय, घर में से कोई आ न जाय" इस डर से घबराता हुआ वस्तुओं को देखता है। घबराहट के कारण स्थिर चित्त से वस्तुओं को नहीं देखता। किसीका एक अंग देख लेता है और अनुमान से उसका रूप मन में समझ लेता है, समझने में भूल भी हो जाती है, विपर्य हो जाता है। इस प्रकार देखना जीव रूप व्यापारी का स्वप्न है। संस्कार रूप वस्तुयें हैं। अंतःकरण रूप कोठरी है। स्थूल इन्द्रियाँ आदिक घर के मनुष्य हैं। इन्द्रियाँ सो जाती हैं तब जीव स्वप्न देखता है।

अथवा यों समझो कि बिजली से चलने वाला एक पंखा है। जब वह बहुत तेज चलता है तब उसके पत्ते अलग अलग नहीं दीखते, एक चक्र हो इस प्रकार दीखते हैं। जब पंखा कुछ मंद हो जाता है तब पत्ते अस्पष्ट दीखते हैं और जब बहुत ही मंद पड़ जाता है या ठहर जाता है तब स्पष्ट रूप से एक एक पत्ते की संपूर्ण आकृति दीखती है। माया चक्र रूप है। चक्रका तेजी से घूमना तमोगुण की सुषुप्ति अवस्था हैं, मंदता से घूमना रजोगुण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

की स्वप्नावस्था है और बहुत मंद घूमना सतोगुण की जाग्रतावस्था है।

जाग्रत अवस्था में जितने कार्य होते हैं वे कारण में से सूक्ष्म और स्थूल में आकर होते हैं। जाग्रत में भोग और नये संस्कारों की उत्पत्ति दो वस्तुयें होती हैं। उनमें प्रथम को प्रारब्ध और दूसरी को आगामी कर्म कहते हैं। स्थूल शरीर के सहारे से भोग भोगनै के समय आसक्तियुक्त जो भाव होता है वह ही संस्कार रूप होता है, जो आगे होने वाले भोग का हेतु होता हैं। जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टियों की भी गिनती नहीं हो सकती। प्रत्येक मनुष्य का व्यवहार उसकी सृष्टि में ही होता है अन्य की सृष्टि में उसकी सृष्टि का व्यवहार नहीं हो सकता। अपनी सृष्टि अपने अज्ञान में और दूसरे की दूसरे के अज्ञान में है। सृष्टि वस्तु स्वरूप नहीं है परब्रह्म ही वस्तु रूप है उसमें सृष्टि का अभाव है। जड़ चैतन्य की ग्रन्थि अज्ञान है। उन दोनों की ग्रन्थि होना असम्भव है। ग्रन्थि न होते हुए भी ग्रन्थि मानना अज्ञान है। अज्ञान कारण रूप से एक होने पर भी कार्य रूप में भिन्न भिन्न है। कार्य अज्ञान के हेतु, फल, आश्रय, और अवलम्बन भिन्न भिन्न हैं इसलिये वासनायें भी भिन्न भिन्न हैं। वासनाओं के अनुसार सृष्टियां भिन्न भिन्न हैं। कार्य अज्ञान एक नहीं है इसलिये एक सृष्टि से दूसरी सृष्टि में व्यवहार नहीं होता। जीव की सृष्टि जाग्रत ही है, स्वप्नावस्था उसकी सृष्टि नहीं है और स्वतंत्र भी नहीं है वह जाग्रत का मात्र अस्पष्ट रूप है। जाग्रत में स्वप्न और सुषुप्ति सम्मिलित हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

इसलिये दोनों की स्मृति सहित जाग्रत में व्यवहार होता है। जो जो चेष्टा होती है उसकी उत्पत्ति का स्थान कारण अंश है उसका संकल्प सूक्ष्म अंश है और चेष्टा स्थूल अंश है इसलिये जाग्रत में तीनों प्रकार की चेष्टा होती हैं। स्वप्न में स्थूल शरीर से चेष्टा होती दीखती है किन्तु वह चेष्टा जाग्रत के स्थूल शरीरसे नहीं होती। स्वप्न ग्रामोफोन के समान परतंत्र है जिस स्थान पर सुई घूमती है उसी की आवाज निकलती है, जाग्रत में इच्छानुसार बात चीत करना बन सकता है, स्वप्न में ऐसा नहीं हो सकता। जाग्रत में रह कर अपने स्वप्न पुरुष से अथवा अन्य के स्वप्न द्रष्टा या स्वप्न पुरुष से बात चीत नहीं होती। अपनी जाग्रत अवस्था से अपनी स्वप्न सृष्टि भिन्न और स्वतन्त्र नहीं है इसलिये बात चीत नहीं हो सकती और दूसरे की स्वप्न सृष्टि दूसरे की जाग्रत–अज्ञान की होने से उस सृष्टि में जाना नहीं होता। जाग्रत अवस्था में भी प्रत्येक मनुष्य अपनी सृष्टि में ही व्यवहार करता है। दूसरा मनुष्य उसमें व्यवहार करता दीखता है परन्तु दूसरे का व्यवहार उसी की सृष्टि में होता है। जाग्रत में हम जब दूसरे से व्यवहार करते हैं तब दूसरा हमारी सृष्टि का होता है और जब दूसरा हमसे व्यवहार करता है तब हम उसके लिये उसकी सृष्टि के होते हैं। चक्र के समान अनन्त सृष्टियाँ एक दूसरे पर पड़ी हुई है। जब एक चक्र का दूसरे चक्र से मिलान होता है तब उस स्थान पर दोनों सृष्टियाँ आपस में समान होती हैं। अवस्था, स्थिति, देश कालादिक जब समान होते हैं तब आपस में क्रिया होती है। जब एक मार्ग में हम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

दूसरे से मिलते हैं तब बात चीत आदिक व्यवहार होता है फिर भी व्यवहार अपनी सृष्टि में ही होता है। स्वर्ग नरकादिक जो लोक हैं वे भिन्न सृष्टियां नहीं हैं, जीव सृष्टि के ही उत्तरोत्तर उच्च नीच भोग स्थान हैं। हर एक की अपनी अपनी सृष्टि का ही उच्च नीच भाव में परिवर्तन होता रहता है, कोई अपनी सृष्टि से निकलकर दूसरे की सृष्टि में नहीं जाता। जब तक अज्ञान संपूर्ण रीति से निवृत्त नहीं होता तब तक जीव अपनी सृष्टि में अनेक भाव से घूमा ही करता है।

जाग्रत अवस्था में जीव का स्थान नेत्र कहा है। बाहर की तरफ देखने वाले होने से नेत्र ही जीव के अज्ञान की पूर्ण अवस्था है। इस अवस्था में किये हुए कर्मों का ही फल मिलता है। स्वप्न की अस्पष्ट अवस्था में किये हुए कर्मों का फल नहीं मिलता क्योंकि वह स्वयं सूक्ष्म फल स्वरूप है और उसमें कर्तृत्व नहीं है। देवता, दानव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जितने जीव हैं उन सबकी तीन ही अवस्थायें होती हैं। सब जीव तीनों गुणों से युक्त होते है, उनको जाग्रत अवस्था में ही जीव कह सकते हैं। जाग्रत अवस्था पूर्ण होने से और उसमें स्वप्न और सुषुप्ति की स्मृति रहने से 'यह मेरी जाग्रत अवस्था है' इस प्रकार जीव जान सकता है। जाग्रत में सहायता देने वाली स्वप्न और सुषुप्ति हैं। कोई जीव माया से रहित नहीं है इसलिये माया की अवस्थाओं से भी रहित नहीं है। सृष्टियां तीन गुण वाली हैं, कोई सृष्टि इन तीनों गुणों से रहित नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

है। तीनों गुणों से रहित परम-पद है जो जीव का शुद्ध अपरिवर्तन वाला नित्य स्वरूप है। ज्ञान, ध्यान, भक्ति, यज्ञ, तप आदि शुभ कर्मों और अशुभ कर्मों की उत्पत्ति भूमि और पूर्व किये कर्मों की भोग भूमि जाग्रत अवस्था है। स्वप्न का भोग सूक्ष्म है। स्वप्न जाग्रत की छाया है इसलिये स्वप्न का भोग भी जाग्रत का ही है। स्थूल शरीर पंचीकृत पंच महाभूतों का बना हुआ है। जब काम करते करते थक जाता है तब वह अपने और स्थूल इन्द्रियों को विश्रान्ति देने के लिये स्वप्न-सूक्ष्म में जाता है। वहाँ अंतःकरण काम करता रहता है। जब वह भी थक जाता है तब सुषुप्ति में जाकर विश्रान्ति लेता है। स्थूल और सूक्ष्म शरीर को विश्रान्ति लेने की आवश्यकता है जो विश्रान्ति न मिले तो वे दोनों ही आरोग्य न रहें। उनमें स्थूल मुख्य है क्योंकि जैसा अन्न खाया जाता है वैसीही डकार आतीहै। जाग्रत के व्यवहार का स्वप्न डकार रूप है। खाना जाग्रत में होता है। खाना या न खाना इच्छानुसार है परन्तु खाने के पीछे डकार इच्छानुसार नहीं आती, इच्छा हो या न हो डकार आवेगी ही।

एक फैले हुए वृक्ष के समान जीव की सृष्टि है। वृक्ष जड़ शाखाओं के लिये नहीं होता परन्तु फल के निमित्त होता है। फल में बीज होता है फल भोग है बीज आगे के लिये है इसी प्रकार जाग्रत अवस्था को समझो। जड़ सुषुप्ति है, शाखा स्वप्न है और जाग्रत फल है। जिस प्रकार सब की उत्पत्ति, वृद्धि और नाश तीन अवस्थाये हैं इसी प्रकार सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अवस्थायें हैं। जब तक ज्ञान हो तब तक जाग्रत ही बारंबार जन्म मरण का हेतु होती है।

जिस प्रकार एक बाक्स में कपड़े रक्खे हुए हों जब कपड़ों की तह करके बाक्स में बन्द करते हैं तब सुषुप्ति है बाक्स, खोलने पर कपड़ों की तह मालूम होना स्वप्न है और कपड़े खोल कर उपयोग में लाना जाग्रत अवस्था है।

बुद्धि के तीन प्रकार के भेद करके बुद्धि के साथ भ्रमात्मक सम्बन्ध होने से बुद्धि की अवस्थायें जीव की कहलाती हैं।

अवस्थाओं का कोष्टक

अवस्था	जाग्रत	स्वप्न	सुषुप्ति
शरीर	स्थूल	सूक्ष्म	कारण
स्थान	नेत्र	कण्ठ	हृदय
अभिमानी	विश्व	तैजस	प्राज्ञ
भोग	स्थूल	सूक्ष्म	आनन्द
कर्तव्य	संस्कार की उत्पत्ति	क्वचित् भविष्य सूचक	अभाव
दृष्टि	बाह्य	मध्य	आन्तर
स्मृति	जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति	स्वप्न, सूषुप्ति	सुषुप्ति
दोष	अविद्या काम, कर्म	अविद्या काम	अविद्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जाग्रत अवस्था में स्थूल शरीर नेत्र स्थान, अभिमानी जीव विश्व, भोग स्थूल, नये संस्कारों की उत्पत्ति रूप कर्तव्य, बाह्य दृष्टि, जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति तीनों की स्मृति और दोष अविद्या काम, कर्म है।

स्वप्नावस्था में सूक्ष्म शरीर, कंठ स्थान, अभिमानी जीव तैजस, सूक्ष्म भोग, क्वचित भविष्य सूचक कर्तव्य, मध्य दृष्टि (हिता नाड़ी में), स्वप्न और सुषुप्ति की स्मृति और अविद्या और काम दोष है।

सुषुप्ति अवस्था में कारण शरीर, स्थान हृदय, (पुरीतित नाड़ी) अभिमानी जीव प्राज्ञ, भोग आनन्द, कर्तव्य का अभाव, आंतर दृष्टि, स्मृति द्वैत की अप्रतीति और अविद्या दोष है।

कोई कोई मूर्छा को भी अवस्था कहते हैं परंतु वह स्वतंत्र और स्वभाविक अवस्था नहीं है, सुषुप्ति में ही उनका अन्तर-भाव है। मरण मूर्छा और जीवित मूर्छा दो प्रकार की मूर्छा हैं जिस मूर्छा के पीछे शरीर चेष्टा वाला होजाय वह जीवित मूर्छा है और जिसके पीछे शरीर फिर चेष्टा को प्राप्त न हो उसको मरण मूर्छा कहते हैं। मूर्छा को अर्ध सुषुप्ति तुल्य कहते हैं इस-लिये अवस्थायें तीन ही हैं।

सामान्य लोगों से योगी विशेष सामार्थ्य वाले होते हैं वह सामर्थ्य योग सिद्धि है। योगियों को इन सिद्धियों की प्राप्ति जाग्रत अवस्था में ही होती है। यदि कोई योगी अपने सूक्ष्म में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

रहने वाले पूर्व संस्कारों को जानना चाहे तो जाग्रत में टिककर, जाग्रत के अनुसंधान–स्मृति को शिथिल करके और सूक्ष्म के लक्ष से संयम करके जान सकता है। उसकी यह अवस्था स्वप्न नहीं है किंतु सूक्ष्म भाव वाली जाग्रत ही है। स्वप्न तो जाग्रत की स्मृति रहित ही होता है। योगी भी स्वप्न में स्वेच्छानुसार नहीं वर्त सकता और अन्य स्वप्न द्रष्टा या स्वप्न ज़ीव को स्वप्नावस्था में प्रेरणा भी नहीं कर सकता क्योंकि स्वप्न में योगी के चित्त के अवलंबन का विषय अन्य पुरुष का चित्त नहीं हो सकता। जो कुछ योगी कर सकता है जाग्रत के सहारे से ही कर सकता है। यदि जाग्रत में प्रेरित किये हुए संस्कार अन्य पुरुष की जाग्रत अवस्था में उसके सूक्ष्म में टिक जाँय और संयोगवश स्वप्न में उदय हो आवें तो ऐसा होना संभव है किंतु स्वप्नावस्था में किसी प्रकार की प्रेरणा नहीं हो सकती।

यदि किसी को भयंकर स्वप्न आते हों और वह उनसे घबराता हो और बन्द करना चाहे तो उन्हें स्वप्नावस्था को किसी क्रिया से बन्द नहीं कर सकता किन्तु उसका जो कुछ उपाय कर सकता है वह जाग्रत में ही कर सकता है क्योंकि स्वप्नावस्था जाग्रत की ही क्रम रहित अस्पष्ट छाया है। यदि कोई मनुष्य जाग्रत में भयङ्कर स्वप्न के विरुद्ध भाव के संस्कारों को दृढ़ीभूत करे तो उनकी प्रबलता से भयङ्कर स्वप्न का दृश्य बदल सकता है। जाग्रत में किसी औषधि का प्रयोग करने से अथवा अन्य वाह्योपचार करने से अपने भयंकर स्वप्न को मिटा कर शान्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

से सो सकते हैं। यदि ऐसा दृढ़ भाव किया जाय कि भय के समय सचेत हो जांय तो स्वप्न देखने पर सचेत हो सकते हैं। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य अमुक प्रकार का स्वप्न देखना चाहे तो उसके निमित्त भी इस भाव को जाग्रत में ही दृढ़ करना संभव है कि उस प्रकार का संपूर्ण दृश्य अथवा उसका कुछ अंश अनियमितता से स्वप्न में देखे। सारांश यह है कि संस्कारों का बदलना जाग्रत में ही हो सकता है क्योंकि जाग्रत ही पूर्णावस्था है इसलिये उसमें की हुई बदलो सूक्ष्म में होना संभव है।

मरना सबको बुरा लगता है। मरने की चोट बहुत वेग वाली होती है इसलिये मरने के संस्कार सूक्ष्म में दृढ़ता से पड़ जाते हैं। स्थूल शरीर की मृत्यु के समय मरण मूर्छा होती है उसमें से भावी कारण देह में से सूक्ष्म शरीर में भान आता है और जितने सूक्ष्म संस्कार हैं उन सबका वहाँ उद्भव होता है। उसमें पड़े हुए मरण संस्कार भी निकलते हैं और जीव को बोध होता है कि उसके शरीर की मृत्यु हुई है–स्थूल शरीर छूट गया है। यह बोध स्वप्न में होने वाले बोध से मिलता हुआ विलक्षण प्रकार का होता है। स्वप्न का बोध निद्रा दोष से होता है। यह बोध निद्रादोष से नहीं होता। जीव अपने को मरा हुआ नहीं जानता क्योंकि जीव संस्कारों से सम्मिलित भाव का है। जब तक संस्कारों की संपूर्ण निवृत्ति नहीं होती तब तक जीव जीता है, जीव की सृष्टि निवृत्त नहीं होती। शरीर से मर कर वह दूसरी सृष्टि में नहीं जाता किंतु अपनी सृष्टि में रूपान्तर को प्राप्त होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

चौथी अवस्था जो तुरीय नाम की कही जाती है वह अवस्था नहीं है, परमपद है। जब तक शरीर की प्रतीति होती है तब तक कैवल्य परम पद से भेद वाली, मायिक तीनों अवस्थाओं से परे चौथी अवस्था समझने के लिये बताई गई है। तीनों अवस्थायें मिलकर एक सृष्टि है, इन तीनों को छोड़ कर कोई सृष्टि नहीं है। तीनों अवस्थायें माया की हैं और माया की भ्रांति में हैं। तुरीय माया में दीखती है किन्तु भ्रांति में नहीं है, माया के शेष संस्कार की स्थूलता में होते हुए परमपदकीस्थितिरूप है। तुरीयवाला ही ज्ञानी और जीवन्मुक्त है। मायिकतीनों अवस्थायें एक दूसरे को हटाकर प्राप्त होती हैं किंतु तुरीय किसी को नहीं हटाती। गौण भाव के तीनों उसमें वर्तती है। तुरीय अखंडित है संसारी जीव हर एक अवस्था से दब जाता है, तुरीह वाला जीवन्मुक्त किसी अवस्था में नहीं दबता। तुरीय आत्मस्थिति रूप अलौकिक है। और तीनों से विलक्षण है। उसका किसी अवस्था से विरोध भी नहीं है। आत्मा सामान्य व्यापक रूप से किसी का विरोधी नहीं है। अन्य प्राणियों के समान ज्ञानी के दृश्य शरीर की भी तीनों अवस्थायें होती हैं। जैसे अज्ञानी तीनों अवस्थाओं में सुख दुःख का अनुभव करता है वैसे ज्ञानी विशेष आंतरिक भाव से उनको ग्रहण नहीं करता किंतु पद्मपत्र की समान निर्लेप रहता है। जैसे कमल का पत्ता जल में रहकर भी जल के ऊपर रहने से जल का स्पर्श नहीं करता इसी प्रकार ज्ञानी संसार में रहकर भी संसार से उच्च भाव में स्थित होने के कारण संसार के सुख-दुःख से भिन्न रहता है। जैसे किसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

बड़ी नदी में दो मनुष्य पड़े हों, उनमें से एक को तैरना आता है दूसरे को नहीं आता। तैरना न जानने वाला सचमुच ही डुबकी खाता और ऊपर आता है। तैरने वाला भी डूबने वाले के समान ही डुबकी लगाता है और फिर ऊपर आ जाता है। डूबने वाले को दुःख होता है क्योंकि "डूब रहा हूं" ऐसा वह मानता है। तैरने वाले को दुःख नहीं होता। "मैं तैर रहा हूं" ऐसा समझकर वह आनन्द में रहता है। इसी प्रकार संसारी अज्ञानी और तुरीय स्थित-ज्ञानी-जीवन्मुक्त का भेद समझो। दोनों ही संसार रहते हैं। दोनों प्रारब्धानुसार ऊँच नीच, रंक श्रीमान् आदिक होते हैं। दोनों की चेष्टा समान दीखती है किंतु दोनों के भाव में महान् अंतर है। एक का बन्धन का भाव है, दूसरा मुक्त है। ज्ञानी शरीर होने पर भी मुक्त ही है। शरीर जन्म मरण का हेतु नहीं है, उसके साथ रहने वाला अज्ञान ही जन्म मरण आदि दुःख का हेतु है। जब ज्ञानी उस अज्ञान से निवृत्त होता है तब शरीर होने पर भी शरीराध्यास—देहाभिमान रहित होता है इसलिये ब्रह्म स्वरूप है। कैवल्य में उसको तब तक ही विलम्ब है जब तक प्रारब्धवेग समाप्त नहीं होता। ज्ञानी की स्थिति जीवन्मुक्त और विदेह मुक्त के भाव से रहित होती है उसका कैवल्य होना भोग दृष्टि से अवशेष है। "मेरा कैवल्य होने वाला है" ज्ञानी को ऐसा भाव नहीं होता। उसके कैवल्य के लिये कुछ कर्तव्य शेष नहीं रहता। वह कृतकृत्य है।

मुमुक्षुओं के उपदेश के निमित्त वेदान्ताचार्यों ने सत्ता के तीन भेद किये हैं १ प्रातिभासिक २ व्यवहारिक और ३ पार-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

मार्थिक सत्ता। व्यवहारिक सत्ता की अपेक्षा प्रतिभासिक सत्ता भ्रम है जैसे रज्जु में सर्प, मरुथल में जल और स्वप्न सृष्टि इत्यादि। जिस वस्तु और उसके ज्ञान का व्यवहारिक शुद्ध स्थिति में बाध हो जाय वह प्रातिभासिक सत्ता है। व्यवहारिक सत्ता पारमार्थिक सत्ता में भ्रम रूप है। जिस वस्तु और उसके ज्ञान को सब संसारी एक ही प्रकार से जानते हैं और व्यवहारिक अवस्था में जिसका बाध नहीं होता वह व्यवहारिक सत्ता है जैसे जाग्रत का स्थूल जगत् और उसके पदार्थ। पारमार्थिक सत्ता ब्रह्म स्वरूप है। उसका किसी से बाध नहीं होता। प्रतिभासिक और व्यवहारिक सत्ता होते हुए भी पारमार्थिक सत्ता वस्तु रूप से कहीं नहीं जाती। अज्ञान के कारण व्यवहारिकों को और अज्ञान में भ्रम के कारण प्रातिभासिकों को पारमार्थिक सत्ता मालूम नहीं होती तो भी सबका आधार होने से वह रहती ही है। यह अंतिम सत्य सत्ता अपरिवर्तन वाली है, उसको झूठ ठहराने वाली और कोई सत्ता नहीं है। वह अनाद्यंत तत्त्व है, वह ही आत्मा है। आत्म तत्त्व सृष्टि नहीं है इसलिये उस ज्ञान स्वरूप को कोई उच्च सत्ता या अवस्था आकर झूठी नहीं कर सकती। यह सत्ता सर्व व्यापक है उसके हटने के लिये स्थान नहीं है न दूसरे में उसे हटाने की सामर्थ्य है। यह पूर्ण ज्ञान की अवस्था वस्तु स्वरूप होने से त्रिकालाबाधित है। स्वप्न और जाग्रत मायिक कल्पना स्वरूप हैं, उन दोनों का वस्तु स्वरूप आत्मा से बाध हो जाता है। स्वप्न और जाग्रत को प्रातिभासिक और व्यवहारिक सत्ता माया में होने से देश काल और वस्तु से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

परिच्छेद वाला है इसलिये प्रातिभासिक व्यवहारिक में और व्यवहारिक वस्तु स्वरूप में बाध-तुच्छ-झूठ हो जाती है। आत्म तत्त्व ही सबके टिकने का अंतिम स्थान है। यह तत्व सब देश में, सब काल में, सब मतों–मजहबों में और सब जातियों में माननीय है। यह हर एक का अविरुद्ध अपना आप है।

जगत् के बनाने वाले को जानना, उसकी प्रसन्नता के लिये उसकी भक्ति करना अथवा ईश्वर कोई नहीं है एक कुदरत ही है, इन तोन बातों में जगत् के सब मजहबों का समावेश होता है ये तीनों थोड़े अंतर सहित वेद के तीन अंश ज्ञान, उपासना और कर्म हैं। जगत् के कर्ता को जानना ज्ञान, ईश्वर की भक्ति करना उपासना और अपने हित के लिये-सुख के लिये मजहब के अनुसार आचरण करना, एक कुदरत मानना कर्म है। सुख सब चाहते है, दुःख कोई नहीं चाहता। ऐसा सुख क्या है? किस में है? यह न जानकर भी जिसमें दुःख न हो उसकी तरफ जाने की सबकी प्रवृत्ति है। स्वर्ग, मुक्ति, परमपद आदिक उस (सुख) के नाम रक्खे हैं। कोई कोई मजहब वाले शरीर के नाश के पीछे उपरोक्त दैवी सुख के होने का अनुमान करते हैं और कोई कोई कहते हैं कि वह सुख यहीं प्राप्त होता है। जिस प्रकार इन्श्योरेंस कम्पनी में से मरने के पीछे किसी किसी को दाम मिलते हैं और किसी किसी को जीते जी ही मिल जाते हैं। कैसे भी हो सुख सबको प्रिय है और सब मजहबों को मान्य है। लौकिक नीति सब मजहब मानते हैं। यद्यपि नीति में भाव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

का और संकुचित, विकसितपने का कई अंश में अन्तर है। जिस प्रकार सब नदियां भिन्न भिन्न देश से आकर, अनेक देश और वनस्पतियों का संग करती हुई अंत में समुद्र में मिल जाती हैं, समुद्र ही सब नदियों का उत्पत्ति और लय स्थान है इसी प्रकार एक वेदान्त ही अपने में सब को मिला लेता है। उसका किसी से विरोध नहीं है। वह सब की स्थिति अनुसार सबको मानता हुआ अन्तिम तत्त्व से सब को अपने में लय करता है। एक मजहब सच्चा और दूसरा झूठा इस प्रकार का भाव द्वैत में होता है। वेदान्त अद्वैत लक्ष का है। जब वह पारमार्थिक लक्ष से सब को एक ही समझता है तब वह किसी की निन्दा किसी की स्तुति किस प्रकार करे ? वेदान्त सब मजहबों को अपना अंग उपांग समझता है। अपने अंग उपाँग जैसे विशेष और न्यून महत्त्व वाले होने पर भी कोई उनकी स्तुति या निन्दा नहीं करता।इसी प्रकारउसको सबमजहब समान हैं। ज्ञानी तत्त्वमें स्थित होकर अपनी अद्वैत प्रतिपादक प्रक्रियाओं को भी अन्य मजहबों के समान द्वैत में ही समझता है। वेदान्त उस तत्त्व का बना हुआ है जो सब मजहब वालों को अन्तिम रूप में स्वीकार करना ही पड़ता है। अमुक धर्म या क्रिया से ही मुक्ति होगी ऐसा संकुचित भाव वेदान्त में नहीं है। वह सर्व व्यापक भाव वाला होने से सब धर्म और क्रियाओं को परमपद प्राप्ति का सहायक समझता है। वह किसी को अपने से भिन्न नहीं मानता, किसी का तिरस्कार भी नहीं करता। जाति, देश, काल, गृहस्थ, त्यागी, स्त्री, पुरुष, गोरा काला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

आदिक का भेद अभेद तत्त्व को जानने वाले के लिये नहीं होता। भेद की आवश्यकता भेद वालों में ही होती है। वेदान्त आत्म तत्त्व है, आत्मा सबसे समीप है, और सब का अपना आप होने से सब को अनुकूल भी है। प्रत्येक मानता है कि दुःख आँतर में होता है और शरीरादिक बाहर के पदार्थों द्वारा होता हैं, पदार्थ बाहर हैं उनका दुःख आँतर में क्यों होता है? पदार्थ में से ऐसी कौन सी वस्तु आंतर में जाती है जिससे आँतर में दुःख होता है? वह वस्तु बाहर से भीतर न जाय तो दुःख न हो इस प्रकार आंतर में दुःख रहित जो स्थिति है वह ही दैवी सुख है। पदार्थोंसे चित्त वृत्ति द्वारा हमारा सम्बंध होता है,उस सम्बंध के साथ जब आसक्ति होती है तब वह आँतर में जाकर दुःख की हेतु होती है। इससे सिद्ध होता है कि पदार्थ दुःख का हेतु नहीं है और आंतर में भी दुःख नहीं है किंतु दोनों के सम्बंध वाली आसक्ति ही दुःख का हेतु है। आसक्ति ही अज्ञान है। अज्ञान न हो तो आसक्ति न हो, अज्ञान से राग द्वेष होता है, राग द्वेष से आसक्ति होती है और आसक्ति से दुःख होता है इस प्रकार अज्ञान सब अनर्थों की जड़ है। अज्ञान हटाने की जो युक्ति बताता है वह वेदान्त है। यहाँ कहे हुए अज्ञान का सूक्ष्म रीति से स्वरूप समझना चाहिये। उलटे भाव का ज्ञान ही अज्ञान है। अज्ञान में दबे हुए का 'यह अज्ञान है' ऐसा जानना कठिन है। केवल सम्बंध दुःखका हेतु नहीं है किंतु अज्ञान की आसक्ति वाला सम्बंध ही दुःख का हेतु है। जिस योग्यता का सम्बंध है, उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

योग्यता को न समझ कर संबंध की कीमत विशेष कर देना अज्ञान है। सम्बंध को उसकी योग्यतानुसार समझने से दुःख नहीं होता। दुःख राग द्वेष विशेषता से होता है। जगत् और जगत् के पदार्थों का सम्बन्ध जगत् की पुस्तकों में रक्खो, उसको आत्मिक पुस्तक में प्रवेश मत होने दो, इस प्रकार करने से दुःख न होगा। पदार्थोंकी क्षणिकता की अपेक्षा जीवकी महत्त्वता है। क्षणिक पदार्थों में भ्रांति से अक्षणिक जीव को युक्त कर देने से क्षणिक विकार और नाश का अनुभव जीव को अवश्य करना पड़ेगा। यदि जीव को जीव की योग्यता में रक्खा जाय और पदार्थों की योग्यता में पदार्थ रक्खे जाँय तो पदार्थों द्वारा होने वाला दुःख जीव को न हो इस प्रकार के आचरण वाला ज्ञानी कहा जाता है। जिस प्रकार युद्ध में लड़ने वाले जो कवच (बखतर) पहन कर लड़ते हैं तो बाहर की चोट से बचे रहते हैं इसी प्रकार जिसने 'आत्म ज्ञान' रूप कवच (बखतर) पहना है वह संसार के दुःख से दुःखी नहीं होता। जीव अनादि है ऐसा बहुत से मजहब वाले मानते हैं। जीवको यथार्थ तत्त्व से जानना और जगत् को जगत् के भाव से जानना, इसका नाम ज्ञान है। जो जीव को उत्पत्ति नाश वाला मानते हैं उन्हें भी दुःख होने का कारण आसक्ति का सम्बन्ध ही है और जो जीव को अनादि अनंत मानते हैं, वे जीव को आत्म तत्त्व मानते हैं। जो जीव को उत्पत्ति नाश वाला मानते हैं वे उसको शरीरके साथ मानते हैं। वस्तुतः कुछ भेद नहीं है, कैसे भी मानो दुःख को छोड़ने के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

निमित्त अज्ञान को छोड़ना पड़ेगा। अद्वैत भावना बिना अज्ञान का समूल नाश नहीं होगा। जीव को अनादि मानना अज्ञान से हटाने की एक युक्ति है। अन्य मजहबों की सत्य युक्तियों से भी किसी न किसी प्रकार अज्ञान हट सकता है। वास्तविक आत्म तत्त्व अनादि और आदि दोनों भाव से विलक्षण है। सब युक्तियाँ उसी से सिद्ध होती हैं और सामान्यता से सब युक्तियाँ उसी में हैं। जैसे योग्य शास्त्र के अनुसार क्रिया करने में ऋतु की आवश्यकता है, यज्ञादि करने में जाति देश की आवश्यकता है, धर्म क्रियाओं के निमित्त संस्कार की आवश्यकता है, वैसे आत्मा प्राप्ति में किसी की आवश्यकता नहीं है, आत्म प्राप्ति में कोई प्रतिबंधक नहीं है। माया के कार्य में ही माया का विधि निषेध है परमतत्त्व में विधि निषेध नहीं है। पदार्थ के ग्रहण करने में देश काल आदिक की अपेक्षा है, अज्ञान को छोड़ने और अपने आप को जानने में किसी की आवश्यकता नहीं है। आत्म सत्ता से सब सत्ता वाले होते हैं तो भी आत्मा सब से असंग है। आत्मा अधिष्ठान है, जगत् अध्यस्त है। अध्यस्त के दोष से अधिष्ठान कभी दूषित नहीं होता। अध्यस्त की–जगत् की निवृत्ति और अधिष्ठान रूप आत्मा का ज्ञान परम पद है। जो आत्मा संग वाला होता तो संग में असंग न रह सकता किंतु संग अज्ञान से माना हुआ है इसलिये ज्ञान से निवृत्त हो सकता है।

उपरोक्त तीनों अवस्थायें रूपाँतर वाली हैं, आत्मा सब में अन्युस्यूत और अवस्थाओं के विकार से रहित है। वह हर एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

का अपना आप है। अवस्थाओं का अभिमान छोड़ने वाला और आत्म भावना करने वाला परमपद के मार्ग में जाता है। आत्म-ज्ञान प्रकाशित होने के लिये जिस शुद्धि की प्रथम आवश्यकता है उसको प्राप्त करके सद्गुरु से आत्म ज्ञान श्रवण करने के पीछे मनन और निदिध्यासन करके कृतार्थ होना चाहिए। इसके बिना मनुष्य जन्म सार्थक नहीं होता। सब मजहब वाले इस प्रकार कर सकते हैं क्योंकि मानसिक विचार और निश्चय सिद्धान्त है, कोई मुख्य क्रिया नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

तू कौन है ?

संत:—दोनों मित्र में हुए वार्तालाप को श्रवण कर:—फाल्गुन मास के गुलाबी जाड़े में प्रात:काल मुम्बई में चौपाटी पर कई मनुष्य हवा खाने को विचर रहे थे। उनमें दो मनुष्य समान वय वाले और उच्च जाति के हों ऐसे दीखते थे, दोनों मित्र थे और एक दूसरे को अच्छी तरह जानते थे। कई बातों में दोनों की समानता थी इसीलिए उनकी मित्रता थी। दोनों एक ही कालेज में पढ़े थे। एक विषय में उन दोनों की एक दूसरे से भिन्नता थी। एक तत्त्व रहस्य और शास्त्र का ज्ञाता था और दूसरा इस विषय में अज्ञ था। न तो ईश्वर सम्बन्धी वह कुछ जानता था और न उसने अपना कोई निश्चय स्थिर किया था। जैसे आज कल के बहुत से पढ़े लिखे नवयुवक होते हैं वैसे ही वह था। वह सब बातों का निर्णय तर्क अथवा बुद्धि से ही करना चाहता था। उसको आर्य शास्त्र पर पूर्ण श्रद्धा नहीं थी। वह ऐसा समझता था कि शास्त्रों में कुछ तत्व है ही नहीं। उसकी बुद्धि तीव्र थी और तर्क करने में कुशल थी, साथ ही जब वह किसी के साथ वाद विवाद करने में निरुत्तर हो जाता और उसकी बात कट जाती तो वह दूसरे की समझाई हुई निर्णीत बात को मान लेता था, दुराग्रही नहीं था, इसका नाम उमाशंकर था। दूसरा जो शास्त्र का ज्ञाता था, उसका नाम शिवशँकर था। वह भी उमाशंकर के समान युवान और पाश्चात् विद्या से पूर्ण था। उसके घर में वंश परम्परा से वेदान्ताचार्य का पद प्राप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

था। उसका पिता बहुत प्रतिष्ठित शास्त्री और आचार्य था। जैसे का तैसा ही होता है, इस न्याय के अनुसार वह भी पिता के समान छोटी उमर में ही वेदान्त का पूर्ण ज्ञाता था। वेदान्त जानने के लिए उसे विशेष परिश्रम करना नहीं पड़ा था, पूर्व संस्कार और सहवास से वह सहज ही में तत्त्व का ज्ञाता हो गया था। दोनों मित्र मार्ग में जारहे थे तब शिवशंकर ने उमाशंकर ने कहा 'मित्र ! जगत की गप सप तो रोज मारते ही रहते हैं, आज मैं तुझसे कुछ ऐसी बात करना चाहता हूं जिससे तुझे बहुत लाभ होगा। मनुष्य का स्वभाव इस प्रकार का पड़ गया है कि वह अनेक पदार्थों को जानना चाहता है, शक्ति अनुसार जानता है, विद्वान बनता है, ग्रन्थ बनाता है, जल का, जमीन का और आकाश के ग्रहों का अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय करता है, प्रत्येक के गुण, अवगुण देखता है, कोई पूछे अथवा न पूछे तो भी हर बात का न्याय करने वाला—न्यायाधीश बन जाता है और ऐसा समझता है कि मेरी बुद्धि सबसे विशेष है, मैं ही जानता हूं, मैं ही जानने वाला हूं, मैं ही ठीक जानता हूं, मेरे समान दूसरा नहीं जानता, ऐसा मानता है परन्तु उसके जानने के सब विषय नाम और रूप वाले ही होते हैं। आश्चर्य यह है कि सबको जानने का अभिमान करने वाला स्वयं अपने आपको नहीं जानता। अज्ञान में अन्ध होता है। यदि कोई पूछे कि तू कौन है, तो पूछने वाले के सवाल को ही गलत बताता है अथवा पूछने वाले से कहने लगता है 'मूढ़ ! क्या दीखता नहीं ? सामने तो खड़ा हूँ।' सामान्य मनुष्य का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

यह ही हाल है परन्तु विशेष बुद्धि वाले को यह अवश्य निर्णय करना चाहिये कि मैं कौन हूं। मेरा यह आज का कथन चाहे तुझे प्रिय हो अथवा न हो, मैं तुझसे अवश्य कहूंगा। तू जानता है कि मैं आचार्य पुत्र हूँ, शास्त्र रहस्य हमारे घर ही की वस्तु है।" उमाशंकर बोला "मित्र, आर्य फिलोसोफी पर मुझे श्रद्धा नहीं है तो भी मैं तेरे बचन को अवश्य सुनूंगा। शास्त्र के तत्त्व रहस्य के लंबे लंवे शब्दों के अर्थ को मैं समझ नहीं सकता, मैंने पाश्चात् फिलोसोफी पढ़ी है, उसमें मुझको रस आता है, पूर्व फिलोसोफी उससे विशेष क्या होगी ?" शिवशंकर बोला "भाई, तू दोनों फिलोसिफियों का मुकावला नहीं कर सकता क्योंकि तुझको पूर्व के तत्त्व ज्ञान को उन्नामासो भी मालूम नहीं है, मैंने तेरे साथ पश्चिम की फिलोसोफो पढ़ी है और पूर्व की फिलोसोफी मेरे घर की है इस प्रकार मुझे दोनों फिलोसोफियाँ मालूम हैं इसलिये मैं तटस्थ रहकर उन दोनों का निर्णय कर सकता हूं, तू निश्चय समझ कि पूर्व का तत्त्व ज्ञान पश्चिम के तत्त्व ज्ञान से बहुप उच्च कक्षा का है और अंतिम है। पश्चिम के तत्वज्ञान का विवेचन बहुत है बुद्धि बहुत दौड़ाई गई है परन्तु उसकी हद्द बुद्धि में ही है, बुद्धि से बाहर नहीं है। पूर्व का तत्वज्ञान सूत्र रूप है और बुद्धि से परे अंतिम तत्व में ले जाने वाला है। उसका भी भाष्य, वार्तिक और टीकाओं करके बहुत विस्तार हुआ है दोनों की शैली में अवश्य अंतर है। पश्चिम वाले विशेष करके तर्ककेसहारेचलते है। पूर्व का तत्व ज्ञान श्रद्धा संयुक्त तर्क से तर्क के पार लेजाने वाला है। तू मेरे साथ न्याय युक्त वाद कर, तुझे तर्क करने की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

छूट है, मेरे प्रश्नों का उत्तर देता जा, उसके सम्बन्ध में प्रश्न कर, मेरी कही हुई बात को समझ और मेरे साथ २ अत्यन्त सूक्ष्म वुद्धिमें चला आ, मेरा तुझसे प्रश्न है कि तू कौन है ?" उमाशंकर बोला "मैं तेरा मित्र हूँ, तू सब प्रकार मुझे जानता है, तब तू ऐसा क्यों पूंछता है ?" शिवशंकर बोला "मैं तुझे जानता हूँ या नहीं, इसका यहां काम नहीं है, मैं जो तुझे जानता हूं सो तो जानता ही हूँ, जब मैं तुझसे इस प्रकार का प्रश्न करता हूं तब उसमें कोई विशेष महत्व होगा, मेरा यह निश्चय है कि तू अपने को जानता हीं नहीं है जैसी तेरी बुद्धि चले वैसा इसका उत्तर दे !" उमाशंकर बोला "मैं उमाशंकर हूं, तेरा मित्र, रतिलाल व्यास का पुत्र, बोम्बे यूनोवर्सिटी का ग्रेजुयेट हूँ।" शिवशंकर बोला "नहीं, नहीं। यह मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं है उ, मा, शं, क, र, ये तो लिप के वर्ण हैं, यह तू नहीं हैं, वर्ण कोई वस्तु नहीं है, यदि तू कहे कि यह मेरा नाम है तो मैंने तुझसे तेरा नाम नहीं पूछा, मेरा प्रश्न है कि तू कौन है ? तू अपने को दिखलाये विना—सिद्ध किये बिना ही मुझे अपना मित्र बताता है, तेरा मित्र कौन है, यह मेरा प्रश्न नहीं है, और मुम्बई की यूनोवर्सिटी से भी सिद्ध नहीं होता, इन सब वाक्यों से तेरी सिद्ध नहीं होती, उमाशंकर वहुत से होंगे, तू अपने को उमाशंकर कैसे कह सकता है, यूनीवर्सिटी के ग्रेजुयेट भो वहुत हैं, इस शब्द से तू अपने को किस प्रकार सिद्ध करता है ?" उमाशॅकर बोला "यह सब मेरी पहिचान है।" शिवशंकर बोला "मैं तुझ से पूछता हूँ कि तू कौन है, मैंने तेरी पहिचान नहीं पूछी !" उमा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

शंकर बोला "क्यों सिर मारता है ? मैं उमाशंकर हूं।" शिवशंकर बोला "मित्र, नाराज मत हो। उमाशंकर तो तेरा नाम है, नाम तू नहीं हो सकता, क्योंकि नाम तेरा है, नाम अनित्य है, जब तू पैदा हुआ था तब किसी ने यह नहीं कहा था कि उमाशङ्कर पैदा हुआ है, यह नाम तो तुझे पीछे से मिला है, यह एक ही तेरा नाम नहीं है, तेरे बहुत से नाम मुझे मालूम हैं, तेरी दादी तुझसे उमा कहती है, तेरी माता तुझसे लल्ला कहती है, तेरा पिता तुझसे लाभ शङ्कर कहता है क्योंकि प्रेम के कारण तेरे जन्म को वह लाभ मानता है, तेरी बहिन तुझे भाई करके पुकारती है, तेरा पुत्र तुझसे पिता कहता है, जब तेरे इतने नाम हैं तो तू अपने को एक उमाशङ्कर ही क्यों कहता है ?" उमाशङ्कर बोला "ये जितने नाम तूने गिनाये हैं वे गुण, सम्बन्ध अथवा क्रियासे है, मेरा नाम तो उमाशङ्कर ही है।" शिवशङ्कर बोला "नहीं, तू उमाशङ्कर नहीं है। कुछ सोच, विचार, नाम और नामी भिन्न भिन्न होते हैं, जिसका नाम तू उमाशङ्कर बताता है, वह कौन है ?" उमाशङ्कर बोला "जो तेरे साथ खड़ा है, जो तुझ से बात कर रहा है, वह मैं हूँ।" शिवशङ्कर बोला "मेरे साथ अनेक हैं, मैं किसे समझूं ? मेरे साथ बात करने वाले भी बहुत से हैं, तब किसको समझूं ?" उमाशङ्कर बोला "जो तेरे सामने हाथ पैर वाला, वर्तमान काल में शरीरधारी खड़ा है, वह मैं हूं।" शिवशङ्कर बोला "मेरे सामने तो हाड़ माँस का पुतला खड़ा है, क्या वह तू है ?" उमाशङ्कर बोला "हाँ। हाड़ मांस का पुतला तो तू भी है !" शिवशङ्कर बोला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

"यह तेरा कहना अनुचित नहीं है, जब सब हाड़ मांस के पुतले हैं तब तू सिद्ध नहीं हुआ, फिर तू कहता है कि शरीरधारी खड़ा है, मैं यह ही पूछता हूं कि शरीरधारी तू कौन है ?" उमाशंकर बोला 'तब समझले कि मैं हूं।' शिवशंकर बोला "वाह ! यह भी कोई उत्तर है ? 'मैं' प्रथम पुरुष सर्व नाम है 'मैं' को सब अपने में लगाते हैं, इससे तेरी सिद्धि कैसे हुई ? मेरा प्रश्न तो यह है कि तू कौन है ?" उमाशंकर बोला "मैं समझ गया, तू सूक्ष्म भाव से पूछता है, सुन–जो बोलता है, वह मैं हूं।" शिव-शंकर बोला "झूठा है, कौन बोलता है ? मुखबोलता है। तू कहाँ बोलता है ?" उमाशंकर बोला "तब कौन बोलता है ?" शिव-शङ्कर बोला "तेरा मुख बोलता है, तू नहीं बोलता। उमाशंकर बोला " परन्तु मुख से मैं ही बोलता हूं !" शिवशंकर बोला ,,ऐसे तो कान से सुनता हूं, सो मैं हूं, पैर से हूँ चलता, सो मैं हूं, हाथ से लेता हूँ, सो मैं हूं, नेत्र से देखता हूँ, सो मैं हूँ, इत्यादि सब इन्द्रियों की क्रिया है, यह क्रिया सब में सामान्यता से एक सी है, ऐसी क्रिया और क्रिया का ज्ञान तू नहीं है, मैं तो तुझसे पूछता हूं कि तू कौन है ? क्या तू मेरा हाथ रखकर बता सकता है ?" उमाशंकर शिवशंकर का हाथ अपने शरीर पर लगा कर बोला "यह मैं हूं !" शिवशंकर बोला "यह तो तेरा पहना हुआ कोट है !" उमाशंकर बोला "कोट नहीं उसके भीतर !" शिव-शंकर कोट हटाकर बोला "यह तो तेरा पेट है।" क्या तू पेट है ? नहीं, नहीं !" उमाशंकर ने उसके हाथ को अपने हाथ पर रक्खा तब शिवशंकर ने कहा "यह तो हाथ है।" इसी प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

उमाशंकर ने शरीर के जिस २ अंग पर हाथ लगाया शिवशंकर ने उसका नाम कहा। तब उमाशंकर विचारने लगा "इसकोकैसे समझाऊँ ? जिस अंग पर हाथ रखता है उसी का नाम बता देता है।" थोड़ी देर विचार कर बोला "जिस अंग पर तूने हाथ लगाया उन सब अंगों का समुदाय मैं हूँ।" शिवशङ्कर ने कहा 'नहीं ! समुदाय कोई पदार्थ नहीं है। उनमें से एक टूट जाय तो तू रहे या नहीं ?" उमाशङ्कर ने कहा "हाथ पैर आदिक में से कोई एक न रहे तो मैं रह सकता हूं। इसलिये मैं शरीर हूं !" शिवशङ्कर ने कहा नहीं ! यह भी नहीं हो सकता। तू वारम्बार कहता है कि शरीर मेरा है, मेरा मुझसे भिन्न होता है, यदि तू पुनर्जन्म को मानता हो तो शरीर का नाश होनेपर अपना नाश नहीं मानेगा। पुनर्जन्म नहीं मानने वाले भी अपने को शरीर से पृथक् ही मानते हैं, बोल, तू कौन है ?" उमाशंकर बोला "अब क्या कहूं ? जो कहता हूँ, उसे तू काट देता है, तब मैं कहता हूं कि जो मैं अपने को नहीं जानता, सो मैं हूं।" शिवशङ्कर ने कहा "वाह ! खूब उत्तर दिया। कोई मूर्ख से मूर्ख भी ऐसा उत्तर नहीं देगा। तूने उत्तर देने में बुद्धि तो बहुत चलाई। 'नहीं जानता' 'सो' ये दोनों एक दूसरे के विरुद्ध हैं ! नहीं जानने वाला बिना जाने यह नहीं कह सकता कि मैं नहीं जानता ! क्योंकि नहीं जानने में भी जानना तो है ही ! तू नहीं जानने वाले में मैं का उपयोग करता है, सो यह उत्तर न हुआ।" उमाशङ्कर बोला "तब क्या कहूं ? जीव हूं - शरीर सहित चेतन हूँ !" शिवशङ्कर बोला "यह भी नहीं। तेरा मत-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

लब जोव से हो तो जीव शरीर सहित नहीं है, केवल चेतन तेरे देखने में आता नहीं, जीव शरीर को छोड़कर जाता है, शरीर स्वयं जड़ है, जल कर खाक हो जाता है, इससे सिद्ध हुआ कि तू शरीर तो नहीं है तब तू कौन है ?" उमाशंकर बोला "तव मैं मन हूं।" शिवशंकर ने कहा "फिर उत्तर देने में गड़ बड़ी की। तू मन है कि मन तेरा है ?" उमाशंकर बोला "मन मेरा है,ऐसा ही मैं कहता हूं।" शिवशंकर बोला "तब तू मन कैसे है ? जैसे तू स्थूल शरीर नहीं है, ऐसे ही मन रूप सूक्ष्म शरीर भी नहीं है।" उमाशंकर बोला "यह कैसे समझ में आवे ?" शिवशंकर बोला "जब तेरा मन किसी स्थान पर चला जाय और तू किसी की बात को न सुने, बात कहने वाला तुझसे कहे कि तूने सुना या नहीं तब तू कहेगा कि मेरा मन दूसरी जगह चला गया था इसलिये मैंने कुछ नहीं सुना, मन तेरा औजार है, तू उससे काम लेता है, इसलिये मन तू नहीं है, 'मेरा मन चला गया' ऐसा जानने वाला तू अपने मन से पृथक् है।" उमाशंकर बोला 'तब मन के चले जाने को जानने वाला मैं हूं।" शिवशंकर बोला "उत्तर तो खूब दिया, बता ! जीव का स्वरूप क्या है ? जीव जड़ तो है नहीं, चेतन कहे तो मन से भिन्न उसकी चेतनता तेरे अनुभव में कब आती है ?" उमाशंकर बोला "जो जीता रहे सो जीव।" शिवशंकर बोला "क्या जीव कभी मरता नहीं है ?" उमाशंकर बोला "मरता तो होगा।" शिवशंकर बोला "तबतेरी जीव व्याख्या झूठी हुई।" उमाशंकर बोला "तब जीव नहींमरता होगा। शिवशंकर बोला "जब तू जीव को नहीं मरने वाला कहता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

है और मरने से डरता है, मरता है तो तू जीव कैसे हुआ ? और भी विचार कि कभी २ तू यह भी कहता है कि मेरे जीव को चैन नहीं है, मेरा जीव व्याकुल है, इससे मालूम होता है कि तू जीव से भिन्न है।" उमाशंकर बोला "हां, ऐसा वर्ताव होता है परन्तु यह स्वभाव पड़ गया है, ऐसा कहना रूढ़ हो गया है, यह इस भाव से नहीं कहा जाता कि मैं इनसे पृथक् हूं।" शिवशंकर बोला "यह बात नहीं है, जब से बच्चा जन्मता है तब से माता पिता आदिक बड़े बूढ़ों के शब्दों को सीखता जाता है, जिस प्रकार वे लोग बोलते हैं, वैसे ही बोलने लगता है, प्राचीन ऋषि लोग यथार्थ ज्ञाता थे और मन को अपने से पृथक् जानते थे। 'मेरा मन' इस प्रकार की बोलचाल परम्परा से चली आई है। तू मन नहीं है किन्तु मन से पृथक् है।" उमाशंकर बोला "जब मैं मन से भी कोई अन्य हूं तब दीखता क्यों नहीं है ? और तू भी तो जीव शब्द का उपयोग मन के अर्थ में करता है। यदि मैं मन से कोई अन्य होता तो अवश्य दीखता इसलिये मन को छोड़ कर मैं कोई अन्य नहीं हूं।" शिवशंकर ने कहा 'ऐसा कोई नियम नहीं है कि न दीखने वाला पदार्थ हो ही नहीं, देखना नेत्र इन्द्रिय का विषय है, नेत्र इन्द्रियरूप को ही देख सकता है, आकाश और वायु नेत्र इन्द्रिय का विषय नहीं है, वह उनको नहीं देख सकता इसलिये वे हैं ही नहीं, ऐसा तू नहीं कह सकता।" उमाशंकर बोला "आकाश अथवा वायु नहीं दीखते तो न सही परन्तु अवकाश से आकाश का बोध होता है और स्पर्श से वायु का बोध होता है। मैं मन से भिन्न होऊँ तो उसका भी किसी प्रकार मुझको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

बोध होना चाहिये।" शिवशङ्कर बोला "इस प्रकार तो तुझे मन से भिन्न अपने का बोध भी होता है परन्तु तुझे इसकी खबर नहीं है।" उमाशंकर बोला "किस प्रकार?" शिवशंकर बोला "जब तू गाढ़ निद्रा में सो जाता है तब तेरा मन वहाँ नहीं है और तू तो है ही, यदि मन ही तू हो तो मन न रहने से तुझे मर जाना चाहिये। सुषुप्ति में मन नहीं होता तब भी तू अपने को मरा हुआ नहीं मानता।" उमाशंकर बोला "मन होता तो है परन्तु सोया हुआ होता है।" शिवशंकर ने कहा "सोया हुआ मन कुछ जान नहीं सकता और तुझे तो खबर है कि मैं सुख से सोया था, मैंने कुछ भी नहीं जाना, यह जानने वाला मन तो नहीं था, मन से पृथक् ही था।" उमाशंकर बोला "वहां क्या जाना? वहाँ तो कुछ भी नहीं जाना।" शिवशंकर ने कहा 'कुछ भी नहीं जाना इसमें भी तो जानना है ही, विचार, जानना और नहीं जानना दोनों जानने से ही होते हैं, वहां कुछ नहीं था, यह तू ने जाना है, वहां शांति थी, उसी को तूने जाना है।" उमाशंकर बोला "वहाँ मैंने कुछ नहीं जाना, यह तो मैं जाग्रत में आकर कहता हूं? सुषुप्ति में नहीं कहता।" शिवशंकर बोला "हां सच है, तू सुषुप्ति में नहीं कहता परन्तु यदि सुषुप्ति में वोध न किया हो तो जाग्रत में जो कहता है, वह किस प्रकार कहे? सुषुप्ति में बोध होता है परन्तु व्यक्ति भाव का मन और अहंकार वहाँ प्रत्यक्ष नहीं है। कहना, सुनना, विचारना अन्तःकरण से होता है, सुषुप्ति में अहंकार न होने से वहाँ कह नहीं सकता, उसको स्मृति रहती है, जब जाग्रत अवस्था में आता है, मन बुद्धि होते हैं तब बोध की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

स्मृति मन बुद्धि से कहता है इसलिये मन बुद्धि से परे, जो मन बुद्धि का साक्षी है, वह ही साक्षी तू है।" उमाशंकर बोला "तेरी युक्ति से कुछ कुछ समझ में तो आता है परन्तु अनुमान ही है, क्या मैं जो तत्त्व हूं, वह अनुमान का ही विषय है या उसका प्रत्यक्ष भी हो सकता है? शिवशंकर बोला "अभी तू समझा नहीं है, यदि तुझे अपने जानने की इच्छा हो तो मैं समझा दूं:- स्थूल शरीर जिसको सब मेरा कहते हुए अभिमान से जिसमें 'मैं' का बर्ताव करते हैं, वह अज्ञान से है, शरीर पतला, मोटा, काला, गोरा इत्यादि होता है और लोग अपने को पतला, मोटा इत्यादि मानते हैं, यह शरीराध्यास है। यदि तू कहे कि मैं शरीराध्यास को नहीं समझता तो मैं समझाता हूँ:—जैसे तू कपड़ा पहिन कर जारहा हो, मार्ग में भंगी जा रहा हो, किसी कारण भंगी का हाथ तेरे कपड़ों से लग जाय तो तू समझता है कि मुझे भंगी ने छू लिया और मैं अशुद्ध हो गया। थोड़ी देर के लिये समझ कि तू शरीर है, तूने कपड़े पहिनें हैं, तूने—तेरे शरीर ने भंगी को नहीं छुआ, कपड़ों ने ही छुआ है, कपड़ा तुझसे भिन्न है, तूने—शरीर ने कपड़ा पहिना है, तू—शरीर छू नहीं गया, तूने कपड़ों सहित जो अपने को मान रक्खा है, वह अध्यास है। इसी प्रकार तू शुद्ध आत्म स्वरूप है, उपाधि रूप स्थूल शरीर का कपड़ा तूने पहिना है जैसे कपड़े सहित भंगी के छूने के समय तूने अध्यास से अपने को छुआ हुआ समझा था इसी प्रकार शुद्ध आत्मा स्थूल शरीर से अध्यास—अज्ञान से एकमेक भाव वाला हुआ है। तू पतला मोटा आदि तीनों काल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

में नहीं है, शुद्ध रूप से जैसा है वैसा ही रहता है परन्तु अपने स्वरूप को भूल कर उपाधि के शरीर को अपना स्वरूप समझता है, इसका नाम शरीराध्यास है, स्थूल शरीर विकार वाला है, उसके अध्यास से तू अपने में विकार का आरोप करता है, आरोप का अर्थ भी समझ। किसी पदार्थ में किसी का भान होना आरोप है। शरीर मोटा पतला है, मोटे पतले आदि का भाव आत्मा में होना अध्यारोप कहा जाता है, आरोप मिथ्या होता है परन्तु आरोप करने वाले को जब यह बोध नहीं होता कि मैं आरोप कर रहा हूं तब आरोप से हुआ दुःख सच्चा ही प्रतीत होता है। आत्मा अक्रिय, असंग, अविकारी, अव्यक्त और विभु है परन्तु शरीराध्यास से–आत्मामें शरीर के आरोप से आत्मा का बोध नहीं रहता। अक्रिय का अर्थ यह है जो कोई भी क्रिया न करे, वह अक्रिय है। कर्म रूप कर्मेन्द्रिय की क्रिया, पदार्थ के ज्ञान रूप ज्ञानेन्द्रिय की क्रिया अथवा अंतःकरण की सूक्ष्म क्रिया इनमें से कोई भी आत्मा में नहीं है। इनमें से कोई भी क्रिया जिसमें न हो, उसे अक्रिय कहते हैं। आत्मा ऐसा होने से अक्रिय है। एक दूसरे में एक भाव से अथवा अलग रहते हुए मिलने को संग कहते हैं। आत्मा किसी में मिलता नहीं इसलिये असंग है। एक ही देश काल और अवस्था में संग होता है। आत्मा के सामने कोई अन्य पदार्थ है नहीं, देश, काल, अवस्था भी आत्मा में नहीं हैं इसलिये आत्मा असंग है। संग वाला ही विकारी होता है। आत्मा का किसी से संग नहीं है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

इसलिये आत्मा विकारी भी नहीं है। जो अपने स्वरूप से न्यूनाधिक हो, परिवर्तन वाला हो, वह ही विकारी होता है। आत्मा अपने स्वरूप में सदा ज्यों का त्यों ही रहता है इसलिये विकारी नहीं है। अब अव्यक्त का अर्थ समझ। जो व्यक्तिपने से रहित हो, वह अव्यक्त है, जो प्रकट न दीखे उसे अव्यक्त कहते हैं। व्यक्ति परिच्छिन्न होता है, जो अमुक देश में हो और अमुक देश में न हो, वह देश से परिच्छिन्न कहलाता है। जो किसी काल में हो और किसी काल में न हो, वह काल से परिच्छिन्न कहलाता है। जो किसी वस्तु में हो और किसी में न हो वह वस्तु से परिच्छिन्न होता है। जो सब स्थानों में हो, वह व्यापक विभु कहलाता है। जो आत्म तत्त्व है, वहही परमात्म तत्त्व है ऐसा शास्त्रों से जाना जाता है और अनुभव से अपरोक्ष होता है।" उमाशंकर बोला "तू आत्मा को अकर्ता, अभोक्ता और व्यापक बताता है, मैं तो ऐसा नहीं हूं।" शिवशंकर बोला "तू ऐसा ही है, परन्तु अध्यास के कारण से सूक्ष्म शरीर के कर्ता भोक्ता आदिक धर्मों को अपनेमें मानता है, इसलिये तुझको ऐसा मालूम होता है कि तू अकर्ता अभोक्ता नहीं है। जैसे स्थूल शरीर का अध्यास है ऐसे ही सूक्ष्म शरीर का अध्यास है, इसलिये अज्ञान से ऐसा भान होता है कि तू कर्ता भोक्ता है, वस्तुतः तू कर्ता भोक्ता नहीं है किंतु अखँडित सत्, चित् और आनन्द स्वरूप है। तू अज्ञान-अभिमान से अपने को व्यक्ति रूप मानता है। जब अज्ञानकी निवृत्ति हो तब तुझे अपने सच्चे स्वरूप की प्राप्ति हो। अब भी तू वही स्वरूप है, तुझमें कोई दोष नहीं है परन्तु अज्ञान से स्वरूप का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

फल न होकर अज्ञान का फल दुःख ही होता है। तू स्थूल, सूक्ष्म अथवा सुषुप्ति के कारण शरीर में ही भरा हुआ नहीं है किंतु एक रस सबमें भरा हुआ है। शरीरकी आड़के कारण अज्ञानसे ऐसा भान होताहै कि तू शरीर है अथवा शरीर में भरा हुआ है। अज्ञान में भी स्वयं प्रकाश आत्मा का लोप नहीं होता, परदे सहितउसको प्रतीति होतीहै, जगत् भरमें 'है-अस्तित्व' एकही है। अनेक भिन्न२ उपाधियों में वह एक ही है, उपाधियों के कारण अनेक होकर दीखता है। इसी प्रकार दीखना रूप चेतन भी एक ही है। 'चेतन' 'है' से भिन्न नहीं है। 'है' में ही भास होता है। जहां 'है' नहींवहां भास नहीं। 'है'से रहित कोईस्थान नहीं, 'है' ही मूलतत्त्व है। 'है' समान 'भास' भी एक ही है, उपाधियों से अनेक होता है, आनन्द इन दोनों से भिन्न नहीं है, आनन्द भी एक ही है, उपाधियों से अनेक होता है। गमनागमन क्रिया और भिन्न भिन्न ज्ञान उपाधियों में है। उपाधि मिथ्या है। उपाधि नाम रूप हैं। मिथ्या नाम रूप ने सच्चिदानन्द को ढांप दिया है इसलिये सच्चिदानंद के सत्, चित् और आनंद का नाम रूप के साथ टुकड़ा प्रतीत होता है, यह अज्ञान है। अज्ञान, माया मिथ्या ही है। देख, अज्ञान में भी तेरा शुद्ध स्वरूप अपने को विकार रहित ही दीखता है। तू शरीर से छोटा था, पढ़ा, बड़ा हुआ, विवाह हुआ, लड़का हुआ, यह सब विक्रिया व्यवहार में होती गई, तू अपने हृदय से पूछ कि तू जो छोटेपन में था, वह ही अब है, या कुछ और होगया। सूक्ष्मता से विचार करेगा तो मालूम होगा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कि तुझमें कुछ भी न्यूनता अथवा अधिकता नहीं हुई, शरीर और अंतःकरण में ही बदला बदली हुई है। इससे सिद्ध होता है कि सत् जो अस्तित्व रूप है, वह ही तेरा सच्चा स्वरूप है। यह सच्चिदानंद का सत् है, अज्ञान में भी तुझे अपनी चैतन्यता सब से विशेष प्रतीत होती है। अन्य को जो तू तुच्छ समझता है, वह चैतन्य की ही महत्त्वता है। महान् चैतन्य अज्ञान में से भी निकल कर बाहर झलकता है। यह सच्चिदानन्द का चित्त है, वह ही चित् तू है। तू परिपूर्ण है, अखण्डित आनन्द का भंडार है इसीलिये अज्ञान में भी तू सुख—आनन्द की इच्छा करता है और कितना ही सुख-आनन्द क्यों न मिल जाय तो भी अपूर्ण रहता है, क्योंकि तू स्वयं पूर्ण आनंद स्वरूप है। भला, मायिक ऐश्वर्य-आनन्द से तेरी तृप्ति किस प्रकार हो! इस प्रकार सच्चिदानन्द में का आनंद तू है। आनन्द सच्चित् से अभिन्न है। तेरा वास्तविक स्वरूप प्रत्यगात्मा ही ब्रह्म है क्योंकि आत्मा और परमात्मा के लक्षण एक ही हैं। तत्त्व अद्वैत होने से दूसरा है ही नहीं इसलिये सम्पूर्ण अनाद्यंत तत्त्व तू ही है, तू तुच्छ प्राणी नहीं है। मैंने जो तुझे समझाया है, उसका बारम्बार विचार कर। ऐसा करने से तेरी अद्वैतनिष्ठा पक्क हो जायगी।

'तू कौन है' इस प्रश्न का उत्तर ज्ञान के लक्ष से परब्रह्म है और उससे नीचे दर्जे में जीव है, जीव भी अन्य नहीं है। उपाधियुक्त आत्मा जीव कहलाता है, जीव में भी वास्तविक आत्म स्वरूप तू ही है और अन्य अज्ञान की उपाधि है, जब तक मनुष्य अपने आद्य तत्त्व को नहीं जानता तब तक सब कुछ जानते हुए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

भी कुछ नहीं जानता। अपनी सिद्धि बिना अन्य की सिद्धि मिथ्या है। अपने को पहिचाने बिना 'हम तो हैं ही' 'हमको हम क्या जानें ?' ऐसा समझकर बाहर की वृत्ति में ही प्रवर्त होना अनेक प्रकार के कष्टों से संग करना है व्यवहार को व्यवहार की कक्षा में और आत्मा को आत्मा की कक्षा में रखने वाला शरीर होते हुए भी परमसुखी होता है, ऊपर जो आरोप दिखलाया है, उसके अपवाद बिना यानी उसके भाव को हटाये बिना अपने स्वरूप का बोध नहीं होता और बोध बिना परम शांति नहीं होती। तूने सब कुछ पढ़ा है परन्तु सच पूछो तो कुछ नहीं पढ़ा। आज मैंने तुझे जो समझाया है, उसका विचार कर।"

उमाशंकर बोला "आज तूने बहुत सूक्ष्म बात समझाई है। तेरी सब युक्तियां यथार्थ समझ में आती हैं, तेरा कहना सच है। अपनें जाने बिना अन्य का जानना व्यर्थ है। झूठे माप से जितना मापा जायगा, सब झूठ ही मापा जायगा। तेरे कहे अनुसार मैं अपने स्वरूप का नित्य प्रति विचार किया करूँगा और वारम्बार पूछ कर पक्का निर्णय करूँगा। मैं तेरा बहुत ही आभार मानता हूँ। तूने मुझ पर पूरा उपकार किया।"

शिवशंकर:—तू सच्चिदानंद ब्रह्म स्वरूप है। अविद्या और अविद्या के पंच कोश का बोध करके सूक्ष्म बुद्धि से आत्मप्रकाश में स्वस्वरूप का अपरोक्ष कर ब्रह्म ही तेरा सच्चा स्वरूप है उसे जान कर ही परम शांति को प्राप्त होगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सच्चिदानन्द

ब्रह्म का कोई नाम नहीं है, कोई रूप नहीं है, कोई गुण नहीं है क्योंकि ब्रह्म अनामी, अरूप और निर्गुण कहा जाता है तोभी उपदेश के निमित्त, लक्ष पहुँचाने के लिये कुछ न कुछ कहना ही पड़ता है। इसी कारण ब्रह्म को सच्चिदानन्द कहते हैं। जैसे शास्त्रों में ब्रह्म को सच्चिदानन्द कहा है ऐसे ही सच्चिदानन्द रूप से आत्मा का वर्णन है।

गुण में और स्वरूप में कुछ अन्तर है। गुण गुणी में होता हुआ भी गुणी से कुछ पृथक् होता है और स्वरूप वस्तु ही होती है। जैसे तेज घोड़े में तेजी का गुण उससे पृथक् है क्योंकि तेजी घट और बढ़ भी सकती है इसलिये वह गुण है और घोड़ा रूप वस्तु घोड़े का स्वरूप है जो उससे पृथक् नहीं हो सकता। ऐसे ही सच्चिदानन्द ब्रह्म के गुण नहीं हैं परन्तु वे ब्रह्म स्वरूप ही हैं।

यदि घोड़ा प्रत्यक्ष में न हो—न दीखता हो और उसका बोध कराना हो तो जिन शब्दों से बोध कराया जाता है वे शब्द दो प्रकार के होते हैं एक विधि वाक्य और दूसरे निषेध वाक्य। जैसे और प्राणियों से गधे की आकृति घोड़े की आकृति से विशेष मिलती है इसलिये कहा जाता है कि गधे की आकृति से मिलता जुलता घोड़ा होता है, गधे से कुछ लम्बा होता हैं, गधे के कान जितने लम्बे होते हैं, घोड़े के इतने लम्बे नहीं होते। गधे के समान चार पैर, मुख, पूँछ होते हुए भी घोड़ा गधा नहीं है किंतु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

घोड़ा है। जैसे भैंसा, बैल आदिक के सींग होते हैं ऐसे अथवा और किसी प्रकार के सींग घोड़े के नहीं होते। इन दो प्रकार के वाक्यों में से जिनमें घोड़ा ऐसा है यह कहा है वे विधि वाक्य हैं और जिनमें घोड़ा ऐसा नहीं है ऐसा कहा है वे निषेध वाक्य हैं। आत्मा का बोध कराने के लिये ऐसे दोनों प्रकार के वाक्य कहे जाते हैं। इसी प्रकार की युक्ति से उसका बोध होना संभव है। आत्मा किसी गुण का गुणी नहीं है आत्मा का कोई गुण नहीं है, आत्मा अवाच्य है इसलिये उसके समझने के लिये सूक्ष्म बुद्धि से काम लेना चाहिये। जैसे जब कोई अंधा किसी मनुष्य से मार्ग पूछता है तो मार्ग दिखलाने वाला मार्ग से दूर खड़ा हो कर, शब्द से इस प्रकार मार्ग बताता है:-सीधा चला जा, दहने हाथ को घूम जाना, बायें हाथ को न जाना, दस कदम सीधा चल। मनुष्य के बताये अनुसार जब अंधा चलता है तब अपने इष्ट मार्ग को पहुंच जाता है। इसमें चल, सीधा चल आदिक विधि वाक्य हैं और न जाना निषेध वाक्य हैं। ऐसे ही जिनमें सीधा स्वरूप दर्शक वर्णन है व विधि वाक्य हैं, जिनमें अकार, नकार लेकर वर्णन है वे निषेध वाक्य हैं। अनादि, अनन्त, अभेद्य, अनामी, निर्गुण, निष्क्रिय, निरंजन, निर्लेप, निराश्रय, अव्यक्त, अद्वैत आदिक निषेध वाक्य हैं और सत्, चित्त, आनन्द सर्वव्यापक, ज्योति स्वरूप, बोध स्वरूप, साक्षी, सर्वाधिष्ठान, ब्रह्म शाश्वत इत्यादिक विधि वाक्य हैं।

शंका:—सत्, चित् और आनन्द ब्रह्म का स्वरूप है, ब्रह्म, को अद्वैत बताते हो तो अद्वैत में ये तीन भेद कहां से आये ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

और ऐसा भी सुना है कि ब्रह्म सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद से रहित है, जब उसमें तीन भेद हैं तब स्वगत भेद रहित किस प्रकार हो ? अपने में भेद होना स्वगत भेद है। सत्, चित् और आँनन्द तीनों का स्वरूप भिन्न २ है इसलिये वह एक नहीं है। यदि एक ही होता तो तीन शब्द करके भेद कथन नहीं किया जाता। जब तीन कहते हो तो वे तीन उसके गुण हैं इससे ब्रह्म को निर्गुण कहना नहीं बनता। यदि निर्गुण ही माना जाय तब वह सत् चित् आनन्द वाला नहीं कहा जा सकता।

समाधानः—ब्रह्म सत्, चित् आनन्द वाला नहीं है किंतु सत् चित् आनन्द स्वरूप है। वस्तु ही वस्तु का स्वरूप कहा जाता है। सत् चित् और आनन्द के कहने से जो तू अद्वैत की हानि बतलाता है, ऐसा नहीं है और अद्वैत में वे तीन भेद भी नहीं हैं। भेद न होने से स्वगतादि भेद रहितता की हानि नहीं होती सत् चित् और आनन्द ये तीन भेद एक दूसरे से भिन्न भी नहीं हैं। तीनों शब्द करके कही हुई वस्तु स्वरूप से एक ही है एक ही वस्तु के बोध के निमित्त तीन प्रकार के भाव से एक ही का कथन है। उपदेश के निमित्त अकथनीय का कथन करने में आता है इसलिए ब्रह्म के निर्गुणपने की हानि नहीं है।

सत् का अर्थ 'है' चित् का अर्थ 'प्रकाश' और आनन्द का अर्थ 'प्रिय' है। उदाहरणार्थ एक लालटेन पर इन तीनोंका प्रयोग इस प्रकार होता है:—लालटेन है, प्रकाशती है और अंधेरे में प्रिय है। यहां लालटेन में रहने वाले 'हैं' प्रकाश और प्रिय को किस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

प्रकार भिन्न कर सकते हैं क्योंकि वे तीनों एक ही का स्वरूप हैं। जो है सो प्रकाशती है, जो है और प्रकाशती है वह ही प्रिय है इन तीनों शब्दों का भाव लालटेन के सिद्ध करने में हेतु है। वे तीनों एक दूसरे से पृथक् नहीं है क्योंकि उन तीनों में से एक को भी हटा नहीं सकते। एक के हटाने से तीनों हट जाते हैं और एक रखने से तीनों रह जाते हैं। तीनों शब्द होते हुए, तीनों का अर्थ भिन्न होते हुए तीनों एक को ही सिद्ध करते हैं इसलिए वे तीनों वस्तु का गुण नहीं है किंतु स्वरूप हैं।

जैसे कोई चन्द्र का वर्णन करे कि चन्द्र शीतल प्रकाश वाला है, गरमी को शाँत करता है, आनन्द दायक है तो ये तीनों भाव एक चन्द्र को ही सिद्ध करते हैं। यदि शीतल प्रकाश वाला निकाल दिया जाय तो गरमी को शाँत करने वाला और आनन्द देने वाला न रहे। गरमी को शांत करने वाला निकाल दिया जाय तो शीतल प्रकाश वाला और आनन्द देने वाला न रहे और आनन्द देने वाला निकाल दिया जाय तो शीतल प्रकाश वाला और गरमी को शांत करने वाला न रहे। इसलिये वे तीनों चन्द्र के गुण न समझने चाहिये, किंतु चन्द्र का स्वरूप समझना चाहिए। वे तीनों हों तो चन्द्र है, वे न हों तो चन्द्र नहीं है। इसी प्रकार सत् चित् आनन्द ही ब्रह्म है।

सत्यवती नगरी में निर्मलचन्द नाम का एक पुरुष रहता था उसका एक पुत्र पुरुषोत्तमथा। जब उसकी उमर बीस वर्ष की हुई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

तब उसकी बहिन का जन्म हुआ। ज्योतिषियों ने उसका जन्म अत्यन्त अशुभ समझा और उसके माता पिता से हमेशा के लिए उसका त्याग करने को कहा और यह भी कहा कि यदि तुम इसका त्याग न करोगे तो वह पुत्री तुम्हारा घात करेगी। पुरुषोत्तम अपने पिता निर्मलचन्द और माता महादेवी के कहने से अपनीबहिन को जंगल में लेगया और वहाँ उसे छोड़ दिया। छोड़ते समय उसके दिल में दया ने प्रवेश किया और वह सोचने लगा "बहिन जंगल में अकेली है, जंगली जानवर उसे खाजायेंगे तो उसकी हत्या मेरे सिर पर पड़ेगी इसलिये उसको पास के सूर्यपुर नगर में जाकर किसी को सौंप आऊं तो अच्छा है।" ऐसा विचार कर उसने बहिन को फिर उठा लिया और सूर्यपुर में जाकर उसे एक मनुष्य के यहां रख दिया और सब प्रबन्ध कर दिया। कुछ बड़ी होने के बाद उसने उसे एक अलग मकान में रख कर दास दासियों का प्रवन्ध कर दिया। समय पाकर पुरुषोत्तम का पिता निर्मलचन्द मर गया। उसकी माता महादेवी पुरुषोत्तम को बहुत ही चाहतीथी क्योंकि पुरुषोत्तम योग्य पुत्र था, धंधे में उसने बहुत धन पैदा किया था दान, धर्म पुण्य कर्मादिक में वह बहुत ही उदार था सब लोग उसकी अत्यन्त प्रशंसा करते थे। ग्राम के लोग उसे ग्राम की नाक समझते थे। यों तो माता का प्रेम पुत्र पर होता ही है परन्तु महादेवी का प्रेम पुरुषोत्तम पर अवर्णनीय था। वह उसे केवल अपनी ही आत्मा न समझती थी परन्तु सब शहर की आत्मा और सबका कल्याण करने वाला समझती थी। वास्तविक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

रीति से पुरुषोत्तम सत्यवती नगरी का एक महा रत्न था। वह अपनी बहिन के पास भी जाया करता था किन्तु माता को बहिन की और बहिनके पासजानेकी कुछ खबर नहीं देता था, देशावरों में दूरदूर तक उसका कामकाज चलने से जाने आने में कहीं का नाम ले देता था। महादेवी को निश्चय था कि पुत्री को जङ्गली जानवर मार कर खा गये होंगे। पुरुषोत्तम ने एक युक्ति और भी कर रक्खी थी, बहिन को उसने अपना नाम प्रकाशचन्द बता रक्खा था और सूर्यपुर में वह प्रकाशचन्द के नाम से प्रसिद्ध था। उसने अपनी बहिन का नाम चेतना देवी रक्खा था। जब वह बहिन के पास रहा करता तब भी उसकी उदारता जैसी की तैसी रहती थी। जब बहिन योग्य वय की हुई तब उसने उसका विवाह रजेशचन्द नामक एक योग्य पुरुष के साथ कर दिया। रजेशचन्द के साथ भी प्रकाशचन्द का बहुत मेल रहता था। रजेशचन्द के पास जो कुछ ऐश्वर्य था वह प्रकाशचन्द का ही दिया हुआ था। सूर्यपुर में प्रकाशचन्द की कीर्ति बहुत ही फैल गई थी और वहाँ के लोगों का यह निश्चय था कि मनुष्य में जितने शुभ गुण हो सकते हैं वे सब ही प्रकाशचन्द में हैं और पृथ्वी पर कोई भी मनुष्य प्रकाशचन्द के समान न होगा। माता के पास जो पुरुषोत्तम कहलाता था वह ही बहिन के ग्राम में प्रकाशचन्द के नाम से प्रसिद्ध था। जब वह बहिन के पास आता था तब एक ग्राम में होकर आना होता था वहाँ एक युवा कन्या से उसकी मुलाकात हुई। दोनों में प्रेम ने निवास किया। वह कन्या हीन जाति की थी इसलिये उसके साथ प्रत्यक्ष रूप से उसका विवाह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

नहीं हो सकता था। कन्या के माता पिता की आज्ञा से विवाह कर लिया गया और इस स्थान पर उसने अपना नाम प्यारेलाल और व्याहीं हुई कन्या का नाम मदनमंजरी रक्खा और वह तीनों ग्रामों में चार चार महीने रहने लगा। जिस ग्राम में उसने विवाह किया था उसका नाम बिलासपुर था। प्यारेलाल की कीर्ति बिलासपुर में अत्यन्त फैल गई। वहां के लोग महामान्य की दृष्टि से उसे देखते थे। मदनमंजरी का प्रेम बहुत था, वह प्यारेलाल के सिवाय अन्य कोई सामर्थ्य वाला, सद्गुणी, ऐश्वर्य वाला हो ऐसा नहीं मानती थी किंतु मनुष्य रूप में वह ईश्वर ही है ऐसा उसका दृढ़ निश्चय था। पुरुषोत्तम माता वाले स्थान में बहिन और पत्नी के स्थान का, बहिन के स्थान में माता और पत्नी के स्थान का और पत्नी के स्थान में माता और बहिन के स्थान का कथन नहीं करता था। बहिन माता की छोड़ी हुई होने से और हीन कुल की पत्नी माता को अप्रिय होने से माता के सामने उनका जिकर न करता। बहिन भी उच्च कुल में व्याही थी इसके सामने हीन कुल की पत्नी का जिकर करना नहीं चाहता था और माता की जिकर करने से बहिन को रंज होता इसलिये माता की जिकर वहां नहीं करता था। पत्नी के सामने माता और बहिन का जिकर करने से कोई फल न था। पत्नी के सामने उच्च कुल का होकर तुझसे विवाह किया है ऐसा नीच बनना नहीं चाहता था।

कुछ दिनों तक पुरुषोत्तम का व्यवहार युक्ति पूर्वक चलता रहा। एक समय सूर्य ग्रहण पड़ा तब पत्नी ने प्यारेलाल से कुरु-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

क्षेत्र स्नान करने को आज्ञा ली और वह वहां ग्रहण में स्नान करने गई। सत्यवती नगरी से महादेवी और सूर्यपुर से चेतना देवी ये दोनों भी उसी पर्व पर कुरुक्षेत्र में स्नान करने आईं। पर्व के समय पर तीनों ही एक स्थान पर स्नान कर रही थीं। महादेवी ने किसी एक मनुष्य के सामने अपने पुत्र की प्रशंसा की। श्रीमानता का पूर्ण अभिमान उसमें भरा था वह कहने लगी "मेरा पुत्र पुरुषोत्तम ही सद्गुण की मूर्ति है। उसके समान कोई पुरुष आज तक सुनने या देखने में नहीं आया। वह पूर्ण ईश्वर का अवतार है। पुराणों में राम, कृष्ण, परशुराम आदिक को ईश्वरावतार सुना है परन्तु उन सम्पूर्ण अवतारों का एक पूर्ण रूप पुरुषोत्तम है।" यह बात पास खड़ी हुई चेतनादेवी सुन रही थी, वह भी ऐश्वर्य के मद से कम अभिमान वाली न थी, बोल उठी "अरी डोकरी, झूठ क्यों बोलती है? मेरे भाई प्रकाशचन्द के समान तेरा पुत्र कभी भी न होगा। उसकी कीर्ति के सामने किसी की कीर्ति टिक नहीं सकती।" अपने पुत्र को तुच्छ वचन कहती हुई देखकर महादेवी सिंह के समान बोली "अरी! तू मेरे पुत्र को तुच्छ वचन कहने वाली कौन? उद्धत लड़की! तू कोई पूर्ण नीच है। अपनी जीभ को बन्द कर नहीं तो मैं अपने नौकरों को आज्ञा देकर तेरी जीभ खिचवा लूंगी।" पास खड़ी हुई मदनमंजरी दोनों की लड़ाई देख रही थी उससे रहा न गया, बोल उठी 'शोक! तुम दोनों आपसमें क्यों लड़ती हो? दोनोंही झूठ बकने वाली हो। मेरे पति प्यारेलाल के समान सद्गुणी, प्रतापवान्, प्रतिष्ठित जगत् भरमें कोई नहींहै, उसके परोपकारोंसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विक्रमादित्य का मुख श्याम पड़ गया है, राजा कर्ण का दान तृण समान तुच्छ लगता है। (डोकरी की तरफ देखकर) तेरा पुरुषोत्तम और (चेतनादेवी की तरफ देख कर) तेरा प्रकाशचन्द मेरे पति प्यारेलाल के सामने रुपये में एक कौड़ी दाम का भी न होगा!" ऐसे वचन सुन कर महादेवी और चेतनादेवी क्रोधित हुईं और क्रोधित वचन बोलते २ तीनों में हाथापाई होने लगीं। बहुत लोग जमा हो गये। पुलिस भी आगई, तीनों के चोट आई हुई देखकर तीनों को बंदी करके ले गये।

प्यारेलाल बिलासपुर में था। जब अपनी पत्नी को कुरुक्षेत्र जाने को रेल में बैठाकर आया तब इच्छा हुई कि मैं भी कुरुक्षेत्र जाऊं ऐसा विचार कर वह दूसरी रेलगाड़ी में सवार होकर चला। जब पुलिस तीनों को पकड़ कर ले जा रही थी तब वह रेल से उतर कर आता हुआ मार्ग में मिला। दूर से आता हुआ देख कर महादेवी पुकार उठी "हाय पुरुषोत्तम! तू आगया! अब तू ही मुझे छुड़ा लेगा और इन दोनों को झूठी सिद्ध करेगा।" चेतनादेवी बोल उठी "भाई प्रकाशचन्द आ रहा है।" मदनमंजरी बोली "अब मेरे प्यारेलाल आगये!" पुरुषोत्तम कौतुक देखता हुआ पास पहुंचा। उसने पुलिस को समझा कर तीनों को छुड़ा लिया, उनसे सब बात सुन कर माता की तरफ देख कर बोला "माता! सत्यवती में रहने वाला तेरा पुत्र पुरुषोत्तम मैं हूं। (बहिन की तरफ देख कर) बहिन! सूर्यपुर में रहने वाला तेरा भाई प्रकाशचन्द मैं हूं। (पत्नी की तरफ देख कर) हे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

मदनमंजरी ! विलासपुर में रहने वाला तेरा पति प्यारेलाल मैं हूं। (सबसे) मेरा यथार्थ ज्ञान न होने से तुम आपस में लड़ मरीं–झगड़ा उत्पन्न हुआ, तीन ग्राम, तीन नाम और तीन संबंधों से बर्तने वाला पुरुष रूप वस्तु मैं एक ही हूं।"

इसी प्रकार सत् चित् आनन्द तीन नहीं हैं परन्तु वस्तुतः एक ही हैं।

शंका:—जब सच्चिदानन्द एक ही है तीन नहीं हैं तब तीन शब्दों की क्या आवश्यकता है ? ऊपर के दृष्टान्त में उपाधि से भेद था। ब्रह्म में उपाधि है नहीं तब तीन क्यों ? सच्चिदानन्द उसका स्वरूप बताते हो, स्वरूप में उपाधि का कुछ काम ही नहीं है।

समाधान:—सच्चिदानन्द तीन शब्द दीखते हुए एक ही है। यद्यपि ब्रह्म में उपाधि नहीं है तो भी समझने वाले उपाधि में हैं इसलिए इन तीन शब्दों की योजना है। यदि एक ही शब्द कहें तो ठीक लक्ष नहीं पहुंच सकता। प्रथम शब्द सत् है, सत् का अर्थ "झूऽ नहींहै" ऐसा नहीं है किन्तु हमेशा रहने वाला सत्य है। ऐसे सत्य प्रकृति और ब्रह्म दोनों ही हैं तब किसका लक्ष किया जाय सत्य कहने से प्रकृति का ग्रहण न किया जाय इस कारण दूसरा शब्द चित् है। चित् का अर्थ चेतन है। जो हमेशा रहने वाला और चेतन है वह ब्रह्म है। प्रकृति हमेशा रहने वाली तो है परंतु चेतन नही है जड़ है। दोनों शब्द कहने से प्रकृति का ग्रहण न होते हुये ब्रह्म का ही ग्रहण है। सूर्योपासक सूर्य को सत् और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

चेतन कहते हैं। इसका ग्रहण न हो इसलिये आनन्द शब्द है। तब ब्रह्म स्वरूप यह हुआ—जो हमेशा रहने वाला है, हमेशा चेतन रूप है और हमेशा आनन्द रूप है ऐसा जो एक तत्त्व है सो ब्रह्म है, वही ऐसा तत्त्व है जो किसी की अपेक्षा रहित अपने आप में टिका हुआ है। सत् चित् आनन्द से लेकर जितने विधेय विशेषण हैं और अव्यक्त, अनादि, अजन्म आदिक जितने निषेध विशेषणों का कथन है वह जिज्ञासु के बोध के निमित्त है—सच्चा बोध होने के लिये है, ब्रह्म के भेद निमित्त नहीं है।

अथवा ब्रह्म निवृत्ति रहित होने से सत् है, सत् एक मुख्य तत्त्व को कहते हैं। इस कारण सब का जो एक मुख्य तत्त्व है सो सत् है। जगत् के सत्य और असत्य से विलक्षण ऐसा सत् है।

जड़ से विलक्षण जो प्रकाश रूप है सो चित् है। जिसका प्रकाश कभी लुप्त न हो ऐसे प्रकाश वाला है सो चित् है। स्थूल और सूक्ष्म चैतन्य के समान प्रकाश वाला नहीं है क्योंकि वे उत्पत्ति नाश वाले हैं और चित् अलुप्त प्रकाश है। दु:ख से विलक्षण जो मुख्य प्रीति का विषय है वह आनन्द है जो कभी भी विकार को प्राप्त न हो वह आनन्द है। इस प्रकार तीनों रूप जिस एक में हो सिद्ध होते हैं वह ब्रह्म है। ऐसा ही आत्मा है ऐसा शास्त्र कहते हैं और अनुभवियों को भी ऐसा ही बोध होता है।

ऊपर के तीन पृथक् नहीं हैं यह इस प्रकार समझना चाहिये:-
जैसे एक चमकता हीरा एक स्थान पर रक्खा है तीन पुरुष उसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

देख रहे हैं। प्रथम पुरुष दस कदम, दूसरा बीस कदम और तीसरा तीस कदम दूर खड़ा है। तीनों पुरुष उस एक ही हीरे को देख रहे हैं परन्तु हर एक को दूरी भिन्न २ होने से हीरे का प्रकाश भिन्न २ मालूम होता है, अतिम पुरुष को मंद दूसरे को मध्यम और प्रथम को तेज दीखता है। जैसे एकही प्रकाश तीन रूप से दीखता है इसी प्रकार सच्चिदानन्द है। अंतिम को सत् मध्यम को चित् और प्रथम को आनन्द है। आनन्द घन आनन्द है, आनन्द में कुछ कम प्रतीति चित् है और चित् की कुछ कम प्रतीति सत् है। इस प्रकार माया की दूरी लेकर मुमुक्षुओं के समझने के निमित्त कथन किया गया है। आनन्द अद्वैतता में, चित् द्वैत में और सत् का भान अनेक में होता है। आनन्द का भान आनन्दमय कोश में, चित् का भान विज्ञानमय कोश में और सत् का भान मनोमय कोश में विशेषता से होता है। स्थूल पदार्थों को जानने वाला मन है, जब मन सत् जानता है तब आनन्द का प्रकाश चित् में होकर मन में आता है क्योंकि स्थूल में जितनी चेष्टा होती है वह सब कारण और सूक्ष्म सहित होती है परन्तु भान स्थूल में होता है, कारण और सूक्ष्म में भान नहीं होता है। इसी प्रकार चित् का भान आनन्द सहित चित् में होता है। इस प्रकार भान होने में ही भेद है, वस्तु एक ही है। जिसको सत् चित् आनन्द कहते हैं वह ही अस्ति, भाति और प्रिय है, वह ही सत् तत् ॐ है। यह सब भौतिक पदार्थों का आधार है। भौतिक पदार्थ नाम रूप से जाने जाते हैं। नाम रूप सत् चित्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

आनन्द में टिके हुए हैं सब का कारण-आधार-अधिष्ठान ब्रह्म है इसलिये ब्रह्म बिना नाम रूप नहीं रह सकते। यदि नाम रूप में से ये तीन भाव हटा लिये जांय तो नाम रूप की सिद्धि नहीं होगी। नाम रूप मायिक दर्शन है वस्तु रूप नहीं है, वस्तु रूप सत् चित् आनन्द है। सब पदार्थों में अस्तित्व सत् है, भासितत्व चित् है और प्रियत्व आनन्द है।

शंका:—पांच पदार्थों में तीन पदार्थ ब्रह्म के और दो माया के बताये और सत् चित् आनन्द निकाल लेने से पदार्थ नहीं रहेगा ऐसा कहा। तब मैं पूछता हूं कि यदि नाम रूप को निकाल लिया जाय तो सत् चित् आनन्द कहां रहेगा ? नाम रूप सत् चित् आनन्द को स्थिर रखते हैं। ब्रह्म भी नाम रूप के आधार पर ही दीखता है।

समाधान:—नाम रूप हटा देने से सत् चित् आनन्द कहाँ रहेगा, यह तेरा कहना तेरी बुद्धि के अनुसार है। यदि मैं पूछूं तू ही बता क्या रहेगा तो तू कहेगा कुछ नहीं रहेगा। अब विचार कुछ नहीं है इसमें भी तो वह है। 'है' अस्ति-सत् को सिद्ध करता है, 'कुछ नहीं' यह भास-प्रकाश बिना कैसे मालूम हो सकता है ? यह ज्ञान जिसमें होता है वह ही चित्-भाति है और 'कुछ' तूने मायिक समझा है, वह मायिक नहीं है तब क्या रहा ? तत्त्व रूप आनन्द प्रिय ही रहा। जैसे तू सुषुप्ति से जाग कर कहता है, "वहां कुछ नहीं था, आनन्द मालूम होता था" इसी प्रकार यह है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

जैसे नाव पर चढ़ा हुआ मनुष्य नाव को चलती न जानकर किनारे के वृक्षों को चलता हुआ समझता है ऐसे ही तू चलने वाले को न समझ कर न चलने वाले का चलना अंगीकार करता है, ब्रह्म सत् चित् और आनन्द स्वरूप है, वह कभी हटने वाला नहीं है। ज्ञान, अज्ञान और शरीर की तीनों अवस्थाओं में वह ज्यों का त्यों ही रहता है। उसके लिये हटने को स्थान नहीं है। माया के नाम रूप ऐसे नहीं हैं, वे काल्पनिक, उत्पत्ति नाशवाले और विकारी हैं, उनका ही हटना बन सकता है। सत् चित् आनन्द का आधार नाम रूप नहीं है। नाम रूप परिच्छिन्न हैं, सत् चित् आनन्द स्वरूप ब्रह्म अपरिच्छिन्न है। परिच्छिन्न अपरिच्छिन्न का आधार किस प्रकार हो ? तू नाम रूप की स्थिति के भाव वाला है। तुझको नाम रूप सत् चित् आनन्द को स्थिर करने वाला जो मालूम होता है वह तेरे अज्ञान का भ्रम है।

शंका:—ॐ तत् सत् ये सत् चित् आनन्दरूप किस प्रकार हैं ?

समाधान:—ॐ आनन्द स्वरूप है, तत् ईश्वर स्वरूप होने से चित् है और सत् सत् है। ब्रह्मवादी-ज्ञानी-जीवन्मुक्त का लक्ष्य-भाव- स्वरूप ॐ स्वरूप है वह ही परमानन्द है सत् का स्थूल में, चित् का सूक्ष्म में और आनन्द का कारण में बोध होता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों ॐकार स्वरूप हैं। ये ही उत्पत्ति स्थिति और लय रूप हैं। ये ही ॐकार की अकार, उकार और मकार मात्रा हैं। 'सब एक ही ब्रह्म है' ऐसा परिपूर्ण बोध ज्ञानी को होता है इसलिये वह आनन्द स्वरूप है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

दूसरा जो मुमुक्षु है, वह बोध की इच्छा वाला है परन्तु अभी बोध को प्राप्त नहीं हुआ। मुमुक्षु ऐश्वर्य स्वरूप ईश्वर समष्टि भाव वाला होता है। ईश्वर चित् रूप—ज्ञान रूप है, अन्त:करण शुद्धि के भाव वाला है, अभी विचार की पराकाष्टा को प्राप्त नहीं हुआ इसलिये सूक्ष्म है चित् है।

कर्मं का फल सत् है, वैदिक धर्मं कर्म श्रद्धा सहित किये हुये फल देने वाले हैं। फल की इच्छा हो या न हो वे अवश्य फल देते हैं इसलिये वे सत्य हैं। यदि उन्हें असत्य समझे तो कर्म—यज्ञादिक का लोप हो जाय।

इस प्रकार ये तीनों नाम ब्रह्म के हैं। अधिकारी भेद से—लक्ष्य की भिन्नता से तीन दिखलाये गये हैं ये तीनों भाव अपने २ अधिकार के अनुसार कल्याण करने वाले हैं। ॐकार में जो तीन अकार, उकार और मकार मात्रा रूप कथन किये गये हैं वे सब ही ब्रह्म स्वरूप हैं, ब्रह्म के अंग या विभाग बताने के निमित्त कथन नहीं हैं, भिन्न २ कथन किये जाने पर भी एकता का हेतु हैं।

एक ही वस्तु के काल्पनिक तीन भाग करके एक को तीन समझने वाले किस प्रकार की भूल करते हैं इसका एक लौकिक हास्यजनक दृष्टान्त इस प्रकार है :—

एक स्थान पर जहाँ रुई बहुत पैदा होती थी, वहाँ तीन साहूकार रहते थे। उन तीनों का नाम क्रम से आनन्दशंकर, चेतराम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

और सत्यगुप्त था। इन तीनों ने मिलकर रुई खरीदने का धन्धा चालू किया। तीनों ने एक २ लाख रुपये धन्धे में लगाये। तीनों का मिलकर मूल धन तीन लाख रुपये हुए। वे रुई खरीदते और कुछ भाव बढ़जाने पर बेच देते। मंदे भाव में खरीदते रहते थे। एक वार उन्होंने तीनलाख रुपये की रुई खरीद की और एक गोदाम में भरदी। गोदाम के बाहर रात्रिको एक चौकीदार रहता था। गोदाम में चूहे बहुत होगये थे। उपाय करने पर भी किसी प्रकार कम न हुए, रुई का वड़ा नुकसान करने लगे। रुई में रहा हुआ बिनौला खाने को वे रुई का नुकसान करते थे। उन्हें पकड़ने को कई चूहेदान भी रक्खे गये, उनमें कोई २ पकड़ा भी गया परन्तु कम न हुए। गोदाम वालों ने चूहों के लिये अपनी सब बुद्धि ख़र्च करदी। चूहे अपनी बुद्धि का उपयोग करते रहे चूहेदानी में फँस जाने के बाद निकलने का प्रयत्न करते और थोड़ी देर बन्द रहकर किसी न किसी युक्ति से निकल ही जाते थे। चूहा खाने के लालच से घुसते और खाकर निकल जाते थे। इस प्रकार चूहों ने गोदाम वालों को तंग कर दिया जब वे बहुत ही तंग आगये तब उन्होंने निश्चय किया कि एक बिल्ली लाकर रखदें तो चूहों का सब उपद्रव मिट जाय। ऐसा विचार कर वे एक बिल्ली के बच्चे को पकड़ लाये। प्रथम तो चूहे बिल्ली को देखकर उसकी गंध से डरते रहे। बिल्ली को बांधकर रखने से बिल्ली चिल्लाया करती परन्तु चूहों की तरफ न लपकती, तब चूहे समझ गये कि बिल्ली हमको पकड़ नहीं सकती क्योंकि वह स्वयं बँधी हुई है। फिर तो चूहे अपनी धमा चौकड़ी मचाने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

लगे। बिल्ली को बँधी रखने से चूहे भागते नहीं हैं ऐसा देख और कई दिन होगये अब बिल्लो भाग न जायगी ऐसा सोच गोदाम वालों ने बिल्ली को छोड़ दिया। बिल्ली थी छोटी, चूहे थे बड़े-बड़े इसलिये बिल्ली के पंजे में बहुत कम फँसते थे और उसे देख रुई में घुस जाते थे। यद्यपि बिल्ली का वश बहुत कम चलता था तो भी उसे कुछ न कुछ भोजन मिल ही जाता था। बहुत कूद फाँद करने से बिल्लो के बहुधा चोट लग जाती थी नौकर अथवा मालिक उसको ठीक-ठाक न देखते। भला, साझे के धन्धे वालों को बिल्ली की सार संभार कौन करता !

एक समय उसके गले में चोट लग गई। घाव सड़गया और उसमें जीव भी पड़ गये, दुर्गन्ध देने लगा। सबने मिल कर और ठीक इलाज करके उस घाव को अच्छा कर लिया। 'बिल्ली बारम्बार चोट लगा लेती है, उसकी संभाल नित्य २ कौन करे' ऐसा सोच आनन्दशंकर, चेतराम और सत्यगुप्त ने यह निर्णय किया कि बिल्ली के अंग तीन हिस्सेदारों को बाँट दिये जांय, जिसके हिस्से में चोट लगे वह ही हिस्सेदार उसकी संभाल करे। बिल्ली के तीन अंग इस प्रकार बांटे गये:—शिर और आगे के दहिने एक पैर का हिस्सा आनन्दशंकर का, आगे बांया एक पैर और पीठ का हिस्सा चेतराम का और पिछले दोनों पैर और पूँछ का हिस्सा सत्यगुप्त का। अब तीनों निश्चिन्त हुए जिसके हिस्से में आये हुए बिल्ली के अंग में चोट लगे वह उसकी संभाल किया करे। कई दिन तक बिल्ली की संभाल इस प्रकार होत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

रही। यद्यपि चूहे अब कम हो गये थे परन्तु चले नहीं गये थे और बिल्ली को कुछ समझते भी न थे। एक समय बिल्ली के आगे के पैर में चोट लगी। हिस्सेदारों के बाँट किये हुए अनुसार उस चोट की सँभाल आनन्दशंकर के जिम्मे पड़ी। उसने पैर को धोया और मल्लम का फाया बांधा। फाया पैर पर ठहरता न था इसलिये बार बार बांधना पड़ता था। एक मनुष्य ने कहा कि पैर पर फाया नहीं ठहरेगा, नीम के तेल में कपड़े को तर करके बाँध दे, वह ठहर जायगा और आराम भी जल्दी हो जायगा। आनन्दशंकर ने उस मनुष्य के कहे अनुसार तेल में कपड़ा भिगो कर बिल्ली के पैर में बाँध दिया और बचा हुआ कपड़ा पैर में लपेट दिया। रात्रि में बिल्ली चूहों की खोज में कूदने लगी। जब कोई चूहा न मिला तब वह पास के एक मकान में घुस गई और वहाँ एक चूहे को देखकर लपकी। वहाँ एक जलता हुआ दीपक रक्खा था। बंधा हुआ कपड़ा कुछ खुलसा गया था, दीपक की आग लगने से कपड़ा जलने लगा। बिल्ली घबरा कर कूदती हुई रुई के गोदाम में घुस गई और रुई पर दौड़ने लगी। जहाँ २ बिल्ली जाय वहाँ २ की रुई में आग लगती जाय। जैसे हनूमानजी ने लंका जलाई थी इसी प्रकार बिल्ली ने गोदाम की सब रुई जला दी और आप भी जल मरी। इस प्रकार तीन लाख की भरी हुई रुई का नाश हो गया। बिल्ली जलती हुई भी जब तक जान रही फड़ फड़ाती हुई बाहर आकर ठंडी हो गई। सब हिस्सेदार एकत्र हुए और आग किस प्रकार लगी इसका निर्णय करने लगे। बिल्ली के पैर में का कुछ कपड़ा देख कर सबने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

निश्चय किया कि बत्तो से कपड़े में आग लग गई, बिल्ली भाग कर गोदाम में आई और रुई का नाश किया। चेतराम बोला "आनन्दशंकर ! बिल्ली के तुम्हारे वाले पैर ने आग लगाई है, वह पैर तुम्हारा था। इसलिये हम दोनों हिस्सेदारों का रुपया तुमको देना होगा। तुम्हारे तेल के बांधे हुए कपड़े से आग लगी है।" आनन्दशंकर जी में विचारने लगा "क्या करूं ? घर का सब धन गया। दो लाख रुपये और कहाँ से लाऊं ? आग तो अवश्य मेरे वाले पैर से लगी है।" ऐसा विचारता हुआ और दुखी होता हुआ घर आया और अपने एक मित्र से गोदाम जलने का हाल कह कर बोला "मित्र ! दोनों हिस्सेदार मुझसे सब रुपया वसूल करना चाहते हैं, मैं यह रुपया कहाँ से दूं ? आग मेरे वाले पैर से ही लगी थी।" मित्र बोला "तू मुझे अपने हिस्सेदारों के पास ले चल, मैं न्याय कर दूंगा" आनन्दशंकर ने ऐसा ही किया। मित्र ने जाकर दोनों हिस्सेदारों से कहा "तुम लोग आनन्दशंकर से रुपया नहीं ले सकते किंतु तुम दोनों आनन्द शंकर का रुपया दो।" चेतराम बोला "क्यों, किस न्याय से ?" मित्र बोला "सुनो, आनन्दशंकर वाला बिल्ली का एक पैर बीमार था, जमीन पर खड़ा नहीं हो सकता था, उस हिस्से में चलने की शक्ति ही न थी, वह चला-कूदा नहीं है, (चेतराम से) बिल्ली का तुम्हारा वाला पैर और शरीर और (सत्यगुप्त से) तुम्हारा पिछला पैर ही कूदा है, तुम दोनों के हिस्से ने गोदाम जलाया है, आनन्दशंकर वाले पैर का कुछ दोष नहीं है इसलिये तुम दोनों मिल कर उसके हिस्से के रुपये भर दो ?" चेतराम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

और सत्य गुप्त सोचने लगे "है तो ठीक। पर रुपया देंगे कहां से ?" इतने में एक पाँचवाँ पुरुष आ गया और यह सब वृत्तान्त सुनकर कहने लगा "न तो चेतराम का किया हुआ न्याय ठीक है और न मिश्र का। बिल्ली के तीनों हिस्से बिल्ली का स्वरूप ही है, हिस्से कल्पित होने पर भी बिल्ली स्वरूप से एक ही है, सब की बिल्ली है इसलिये सब को ही टोटा भुगतना पड़ेगा। बिल्ली के हिस्से संभाल के लिये किये गये थे, हानि लाभ के लिये नहीं किये गये थे, यह बात सर्व सम्मत हुई। इस प्रकार सत् चित् आनन्द तीन हिस्से समझने के लिये हैं, वस्तुतः नहीं हैं। वस्तु स्वरूप ब्रह्म एक ही है।

सच्चिदानन्द और अनेक प्रकार के अन्य विशेषण परब्रह्म को समझाने के निमित्त हैं वस्तु में भेद नहीं है वह अखंड अद्वैत और सबका आद्यस्वरूप है। जो आत्मा को जानता है वह ही उसे जानने को समर्थ होता है।

जो जो लक्षण परब्रह्म के शास्त्र में वर्णन किये हैं वे सब लक्षण आत्मा के भी हैं इससे आत्मा परब्रह्म से भिन्न नहीं है—आत्मा परब्रह्म स्वरूप हो है। प्रथम पंचकोश को समझ कर उसको पृथक् करके शेष रहा आत्मा को विवेक द्वारा समझना चाहिये। आत्मा में परिच्छिन्नता आदि कोई भी विकार नहीं है। उसमें परिच्छिन्नता का भान अज्ञान से है और वास्तविक स्वरूप पंचकोश से अज्ञानिओं की दृष्टि में ढपा हुआ है इससे पंचकोश विवेक-बोध से आत्मा का स्पष्ट बोध होता है। कोशों के विवेक से परिच्छि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

न्नता को हानि होती है तब आत्मा ही परब्रह्म स्वरूप है ऐसा अनुभव होता है।

पंचकोश के विवेक से आत्मा का निरावरण बोध होता है और सद्गुरु के कथन किये हुए महा वाक्य से आत्मा ही परब्रह्म है ऐसा अपरोक्ष बोध होता है। अभेद बोध का नाम ही अपरोक्ष ज्ञान है। मैं ही सच्चिदानन्द परब्रह्म स्वरूप हूँ ऐसा अपरोक्ष अनुभव से किसी प्रकार की शंका नहीं रहती सबका आत्मा स्वरूप अद्वैत अखंड परमात्मा ही है ऐसा भान होता है। यह स्थिति ही जीवन्मुक्ति है, जिसको परम सुख, सुख स्वरूप परम शान्ति कहते हैं वह यह ही है। मनुष्य इससे ही कृतार्थ होता है।

मैंने इस प्रकार का उपदेश को ग्रहण करके वहां से बगीचे के एक कोने में जाकर पंचकोश के विवेक से अपना आत्म स्वरूप को समझ लिया और यह आत्मा ही परब्रह्म स्वरूप है ऐसे निश्चय में टिक कर कृतार्थ हुआ। जिस सुख की खोज में मैं निकला था वह सद्गुरु की कृपा से मुझे प्राप्त हुआ।

समाप्त।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

❀ श्री हरि ❀

अध्यात्म विद्या का अपूर्व भंडार !

वेदांत केसरी कार्यालय की पुस्तकें।

महावाक्य—वेद के सब मंत्र, वाक्य और अध्याय आस्तिक मनुष्यों के आचरण करने योग्य ही हैं परन्तु इन सब में भी वेद के महा वाक्य अपनी विशेषता ही रखते हैं। तत्त्वबोध को प्रत्यक्ष कराने के लिये महा वाक्यों को छोड़ कर अन्य कोई साधन नहीं हैं। ये अत्यन्त गूढ़ होते हुए भी इनकी इस पुस्तक में दृष्टान्त सहित सरल व्याख्या की गई है जो पढ़ने वाले बुद्धिमानों को समझने में अति सुगम रोचक हैं। जीवन मुक्ति विदेह मुक्ति का अनुभव भी इसमें भली प्रकार समझाया है। मूल्य रु० १-५० पैसा।

पंचकोश विवेक--पंचकोश के परदे से ढके हुए आत्मा का स्पष्ट बोध नहीं होता, इसीसे उसको विस्तार सहित समझाकर आत्मा को दर्शा दिया है। पंचकोश का विवेक ही आत्म अनात्म विवेक है। मूल्य रु० १-५० पै०

वाक्य सुधा—वेदान्त ग्रन्थों में ज्ञान समाधि का वर्णन बहुत स्थान पर है परन्तु इसमें जैसा वर्णन है वैसा सूक्ष्म वर्णन और स्थान में कहीं नहीं मिलता मुमुक्षुओं के समझने में सुभीता हो इसलिये दृष्टांत भी हैं अतएव अत्यन्त हितकर है। मूल्य रु० १-५० पै०

चर्पट पंजरिका—भज गोविन्दं भज गोविन्दं पद्य का विवेचन सहित भाषानुवाद है। दृष्टान्तों से रोचक हैं। समश्लोकी पद्य भी हैं। मूल्य रु० १-५० पै०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सदाचार—श्लोक और उसका सरल अर्थ उसका सरल विवेचन सहित है। श्रीमत् शंकराचार्य कृत छोटी पुस्तकों में इसका भी नाम है इससे मुमुक्षुओं को सत्य आचार का स्पष्ट बोध होता है। मूल्य रु० १-१२ पै०

ब्रह्मसूत्र—(वेदान्त दर्शन) शांकर भाष्य भाषानुवाद सम्पूर्ण दो भाग—उपनिषदों में आत्म ज्ञान सम्बन्धी अनेक ऐसे कथन आये हैं जो ऊपर से देखने में परस्पर विरोधी मालूम होते हैं। उनकी एकवाक्यता करके वैदिक तत्त्वज्ञान को विशुद्ध रूप से प्रकट करने के लिए भगवान व्यास ने समन्वय रूप से ये सूत्र लिखे हैं। इसके सम्पूर्ण उपलब्ध भाष्यों में शाँकर भाष्य सबसे अधिक प्रामाणिक और प्राचीन माना जाता है, परन्तु अब तक हिन्दी में इसका शब्दशः अनुवाद नहीं हुआ है इसी कमी को पूरा करने के लिये आधुनिक तथा प्रचलित भाषा में इसका अनुवाद किया गया है। दो जिल्दों में सम्पूर्ण। मूल्य प्रति जिल्द का रु० ४-५० पै०

वेदान्त दीपिका—इस ग्रन्थ में जिज्ञासु को स्वाभाविकता से होने वाली शंकाओं का अत्यन्त मार्मिकता से समाधान किया गया है। वेदान्त के महत्व के ग्रंथों को पढ़ने पर भी जिन शंकाओं का समाधान न होने से जिज्ञासु का चित्त अशांत रहता है वे शङ्कायें इस ग्रन्थ को पढ़ने से नष्ट हो जावेंगी दृष्टान्तों से जिज्ञासु गण बहुत सुगमता पूर्वक समझ जायेंगे। मूल्य रु० २-५० पै०

वेदान्त रहस्य—वेदान्त द्वारा अपने आत्मा के बोध के निमित्त अनेक प्रक्रियाओं में जो गुप्त रहस्य है उसे स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया है जिसे जानने से ही सब जानने का अन्त होता है ऐसे विस्तार सहित कहीं २ पर योग्य दृष्टान्तों से समझाया है। मूल्य रु० १-००

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

मणिरत्न माला—अथवा प्रश्नोत्तरी, यह ग्रन्थ आद्य शंकराचार्य कृत है, इसमें श्लोक, भाषा, पद्य और विवेचन है, बालक युवा, वृद्ध, जिज्ञासु धर्मात्मा सबके लिये ही हितकर है मुमुक्षुओं को अत्यन्त उपयोगी हो इस प्रकार दृष्टांत सहित विवेचन किया गया है। इसके विचार से और अनुष्ठान से अन्तःकरण शुद्ध होकर शीघ्र ज्ञान प्राप्त होता है। सजिल्द मूल्य रु० ३-०० ।

वाक्य वृत्ति—शंकराचार्य जी के छोटे ग्रन्थों में यह प्रसिद्ध है। वेदान्त का यह सुलभता से बोध होने के लिए मूल संस्कृत श्लोक उसके भाषा तथा विस्तार से योग्य स्थानों में दृष्टान्तों सहित विवेचन किया गया है। मूल्य रु० १-१२ पै०

उपासना—इसमें साकार, सगुण, निर्गुण कार्यब्रह्म तथा कारण ब्रह्म आदि कई प्रकार की उपासना को भिन्न २ प्रकार से दृष्टांत सहित समझाया है। उपासना की स्थिरता ही से मन एकाग्र होकर आत्म साक्षात्कार होता है। मू० ०-७५ पै०

कल्याण का मार्ग—वेदान्त केसरी में छपे हुए कल्याण प्रद लेखों का संग्रह है। दृष्टांतों से रोचक है। ज्ञानियों को विनोद की सामिग्री है मुमुक्षुओं को कल्याण का मार्ग है। मूल्य रु० २-२५ पै०

स्वराज सिद्धि—वेदान्त का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी सरलान्वय भाषा टीका करके आधुनिक तथा प्रचलित भाषा से सुन्दर छापा गया है। आत्मज्ञान की प्राप्ति ही स्वराज सिद्धि है। मूल्य रु० १-८७ पै०

वेदान्त स्तोत्र संग्रह—श्रीमत शंकराचार्यादि के प्रतिभाशाली वेदान्त के मुख्य २ चुने हुये हर स्तोत्रों का संग्रह किया गया है और प्रत्येक स्तोत्र का अर्थ भी सरल भाषा में दिया गया है। कई विद्वान सन्यासी तथा ब्रह्मचारियों ने बहुत पसन्द किया है : मूल्य रु० १-००

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

वेदान्त छन्दावली—पाँचों भाग, मूल्य २-२५ पै०

ज्ञान वैराग्य छन्दावली—दोनों भाग, मूल्य १-२५ पै०

कौशल्य गीतावली—भाग १—२—वेदान्त केसरी में हुई कविताओं का संग्रह। कविता रोचक सरल और ज्ञा संस्कारों को प्रदीप्त करने वाली तथा श्रवण, मनन और नि ध्यासन रूप है। प्रत्येक भाग का मूल्य ०-६२ पै०

श्रुति की टेर—यह श्री भोले बाबाजी रचित क ग्रन्थ हैं इसमें श्रुतियों की सभी शिक्षायें चित्त शुद्धि का स अष्टाङ्गयोग आदि का सुगमता पूर्वक रोचक सरल कवि में है। मू०-७५ पै०

वेदान्त रत्नावली—यह ग्रन्थ भी श्री भोले बाबा कविताओं में है इसमें वेदान्त के गूढ़ रहस्यों का सरल शब कविता द्वारा वर्णन किया गया है जो जिज्ञासु की बुद्धि को कर देती है। मूल्य ०-५० पै०

आत्म प्रबोधिनी कुन्डलियाँ—यह ग्रन्थ वेदान्त केश जो भोले बाबाजो के लेखों के अन्त में कुण्डलियाँ लेखों का रूप दीहुई हैं उनका संग्रह है। इसमें और भी अनुभवी महात्म के दोहा, कविता, सवैया, पन्द्रतिथि बारहों महिना के ब मासो आदि अनेक कविताओं का संग्रह है। मूल्य ०-५० पै०

उपनिषत् ५२—इसमें भिन्न भिन्न प्रकार की उपनि ज्ञान के अपूर्व अनुभव तथा योग की रहस्यमय क्रियाओं का भव युक्त वर्णन है। सरल भाषा में ५२ उपनिषदों का अनुव सजिल्द मूल्य रु० ३-५० पै०

काया पलट नाटक—मूल्य ५० न० पै०।

स्वानंदानुभव—मूल्य ०-६२ न० पै०

व्यवस्थापक—वेदान्त केसरी कार्यालय,

लालघाट, बेलनगंज, आगरा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection